सेठ रावतमलजी ने जैसे अपने पिता श्री को धर्म कार्य के लिए व्यापार से निवृत्त कर दिया था, उसी प्रकार आपने स्वयं भी यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि पचास वर्ष की उम्र होते ही मैं व्यापार आदि सांसारिक प्रवृत्तियों से निवृत्त हो जाऊंगा और निराकुल होकर धर्मध्यान करूंगा। कितनी सुन्दर लगन ! कैसी उत्तम भावना है ! पर दैव को यह स्वीकार नहीं था। ४८ वर्ष की उम्र में ही आप स्वर्गवासी हो गए।

माताजी के प्रति आपकी निष्ठा अपूर्व था। आप माताजी की सेवा बड़े चाव से किया करते थे और निवृत्त जीवन में आप जो कुछ करना चाहते थे उसमें माताजी की सेवा भी एक महत्वपूर्ण कार्य था। जो लोग पत्नी को पाकर माता की उपेक्षा करने लगते है उनके लिए सेठ रावतमलजी की जीवनी अत्यन्त उपयोगी है।

जिस समय सेठ रावतमलजी ने व्यापार सभाला था उस समय आर्थिक स्थिति साधारण थी। आपने अपने प्रबल पुरुषार्थ से, कुशलता और प्रामाणिकता से खूब धन उपार्जन किया। आपके फर्म की धीरे—धीरे खूब प्रतिष्ठा बढ़ती गई और आज बड़े—बड़े फर्मों में उसकी गणना होती है। वि० स० १९६० तक चतुर्भुज तोलाराम के नाम से एक ही फर्म थी। उसके बाद इन्द्रचन्द प्रेमसुख के नाम से दूसरी फर्म कायम की जो आज भी इसी नाम से चल रही है।

सेठ रावतमलजी अपनी बात के धनी थे। जिस बात को उन्होंने सत्य समझ लिया उसे ससार के किसी भी प्रलोभन मे पड़कर छोड़ना और उसके विरुद्ध कोई बात कहना उनके लिए असंभव था। कुछ वर्षों पहले बीकानेर में देशी-विलायती के झगड़े ने उग्र रूप धारण कर लिया था। उस समय दूसरे पक्ष के एक बहुत बड़े व्यक्ति ने आपको काफी प्रलोभन दिये अपने पक्ष में करना चाहा, मगर चांद सूरज टरे तो रावतमलजी अपने सच्चे पक्ष से

विचलित हों ! आखिर उन्हे निराश होना पडा और सेठजी अपने सच्चे पक्ष पर ही डटे रहे। अन्त मे आपका पक्ष विजयी हुआ ।

सेठ रावतमल जी की रग-रग में धर्मप्रेम व्याप्त था उनके जीवन में धर्म घुलमिल गया था। धर्म का संस्कार उन्हे पितृपरम्परा से उत्तराधिकार मे मिला था। स्वर्गीय महाप्रतापी पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज के प्रति आपकी उत्कट भक्ति और श्रद्धा थी।

सेठ रावतमलजी साहब के असामयिक वियोग से साधुमार्गी सम्प्रदाय मे एक अनमोल रत्न की कमी हो गई। मगर संतोष इस बात का है कि उनके सुपत्र भी उन्ही के अनुरूप धर्मप्रेमी, समाजप्रेमी और उदार हैं। रेलवे दुर्घटना के कारण सेठजी की मृत्यु होने के कारण रेलवे पर पचास हजार की क्षतिपूर्ति का दावा किया गया था। रेलवे को वह रकम देनी पडी। मगर आपके सुपुत्रो ने उसका निजी उपयोग करना उचित नहीं समझा। वह पूरी रकम धर्मादे मे जमा कर दी गई। उसे आप समय-समय पर खर्च करते रहते हैं।

इस प्रकार एक प्रचण्ड पुण्यशाली पुरुष का जीवन दूसरे पुण्यात्मा पुरुष की स्मृति मे उनके सुपुत्रों द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। श्रीजवाहरसाहित्यसमिति इसके लिए प्रकाशक के प्रति आभारी है।

श्रीहितेच्छु श्रावक मडल रतलाम द्वारा संगृहीत श्रीजवाहर-साहित्य के आधार पर प्रस्तुत किरण तैयार की गई है। अत मडल के प्रति भी समिति आभारी है।

आशा है पाठक इससे पर्याप्त लाभ उठाएँगे और हमारे श्रम को सार्थक करेंगे।

निवेदक :—

चम्पालाल बांठिया,

मन्त्री,

श्री जवाहर-साहित्य समिति, भीनासर (बीकानेर)

शालिभद्र-चारित्र

विषय-सूची

श्रीमान सेठ रावतमलजी बोथरा

१

शालिभद्र-चरित ।

——::::()::::——

आमुख

सभी जानते हैं कि बिजली का बटन दबाते ही प्रकाश जगमगा उठता है। दरअसल उस प्रकाश का सम्बन्ध बिजलीघर (पावर-हाउस) के साथ है। बिजली का बटन दबा कर बच्चा भी प्रकाश कर सकता है, लेकिन पावर-हाउस बन्द हो तो प्रकाश नहीं होता। इससे यह बात प्रकट होती है कि असली महत्त्व बटन का नहीं, पावर हाउस का है। और असली काम बटन दबाना नहीं, पावर (शक्ति) पैदा करना है।

शालिभद्र की ऋद्धि प्रसिद्ध है। प्रत्येक जैन व्यापारी वैसी ऋद्धि की कामना करता है। उसकी ऋद्धि की कल्पना करके प्रसन्नता का अनुभव करता है। मगर देखना चाहिए कि वह ऋद्धि कहाँ से आई है?

शालिभद्र की ऋद्धि का मूल स्रोत—उद्गमस्थान बतलाना ही इस कथा का उद्देश्य है।

प्रस्थान।

जाति से वह गूजरी थी। उसके गाँव का, पता नहीं, क्या नाम था। पति के नाम को भी हम नहीं जानते। सिर्फ यही मालूम है कि वह किसी छोटे-से ग्राम में रहती थी और वह गाँव मगध की राजधानी राजगृह के आसपास ही कहीं था। उसका नाम धन्ना था।

एक समय था जब उसका भरापूरा परिवार था। वह खुशहाल थी। उसके घर में दूध की नदियाँ बहती थीं और अनाज के ढेर लगे रहते थे। वह कितने ही दीन-हीनों को भोजन कराने के बाद भोजन करती थी।

लेकिन काल-गति बड़ी ही विचित्र है। न जाने कौन-सी भूखी बीमारी का आक्रमण हुआ और उसका सारा परिवार उसका शिकार बन गया। उस बीमारी में न केवल उसका मानव-परिवार ही, वरन् पशु-परिवार भी समाप्त हो गया। रह गया एक पुत्र जिसका नाम संगम था।

धन्ना धन-जनहीन हो गई। यहाँ तक कि भरपेट भोजन भी उसके लिए कठिन समस्या बन गई। कड़ी मिहनत-मजूरी करके कठिनाई से अपना पेट पालती और संगम का संरक्षण करती थी।

धन्ना की बाह्य सम्पत्ति समाप्त हो गई थी, फिर भी वह एकान्त दरिद्र न थी। सद्विचार और धर्मभावना की आंतरिक

सम्पत्ति उसके पास पर्याप्त थी। स्त्री-जाति में स्वभावत दृढ़ता और धीरज की कमी देखी जाती है, पर धन्ना इसके लिए अपवाद थी। उसमें कूट-कूटकर दृढ़ता भरी थी। इसका कारण उसकी धर्म-भावना थी। धर्मभावना मनुष्य को घबराने से रोकती है और कठोर से कठोर प्रसंग पर भी शांतचित्त रहने की प्रेरणा करती है। धर्ममय भावना का आंतरिक आदेश प्रत्येक परिस्थिति को समभाव से स्वीकार करने की क्षमता प्रदान करता है।

साधारण स्त्री होती तो ऐसे विकट प्रसंग पर कौन जाने क्या कर बैठती! पर नहीं, यह धन्ना थी, असाधारण नारी। उसने सोचा—'चिन्ता किसी भी मुसीबत का इलाज नहीं, बल्कि वह तो स्वयं एक बड़ी मुसीबत है जो सैकड़ों दूसरी मुसीबतों को घेर कर ले आती है। चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं होगा। चिन्ता मेरे प्राण ले लेगी और बालक संगम अनाथ हो जाएगा। संभव है मेरे न रहने पर संगम का भी जीवन खतरे में पड़ जाए। घर का सभी कुछ तो चला ही गया है, अब तो चिन्ता छोड़कर धर्म की रक्षा करना ही उचित है। धर्म की रक्षा करने से ही सब रहेगा।'

लोग समझते हैं—संध्या या प्रातः समय सामायिक कर लेना या धर्म का उपदेश सुन लेना ही धर्म है। लेकिन धर्म की व्याख्या इतनी संकीर्ण नहीं है। धर्म की समाप्ति इतने में ही नहीं हो जाती। वास्तव में धर्म का दायरा बहुत विशाल है

और गूजरी धन्ना के चरित्र से उसका यहाँ दिग्दर्शन होगा।

धन्ना सोचती है—'मेरा पहला धर्म यह है कि जब तक शरीर में शक्ति है तब तक माँग कर नहीं खाना चाहिए। बाहर वालों से न माँगना, यही नहीं बल्कि कुटुम्बी या सज्जन से भी याचना नहीं करनी चाहिए कि आप मुझे कुछ दीजिए। भगवान् मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा करें।

लज्जा भीख माँग कर खाने में है। मिहनत-मजूरी करके उदरपोषण करने में न लज्जा है, न कोई और बुराई है। अतएव मेरे लिए यही मार्ग हितकर है। मैं मजूरी करूँगी और जो कुछ पाऊँगी उसी से अपना और अपने बालक का पेट पाल लूँगी।'

धन्ना ने मिहनत-मजूरी करके उदरपोषण करने का निश्चय कर लिया। अब उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किस जगह रह कर मजूरी करना उचित होगा? दुष्काल के कारण यहाँ तो मजूरी मिलती नहीं है, फिर कहाँ जाना चाहिए? अन्त में उसने राजगृह जाने का निश्चय कर लिया। वह अपने लड़के संगम से कहने लगी—बेटा, चलो, राजगृह और नागरिकों के जीवन में अपना जीवन मिला कर दुख के दिन काटें।

नागरिक जीवन और ग्राम्यजीवन में क्या अन्तर है, इस संबंध में बहुत कुछ विचार हो सकता है। नागरिक लोग ग्रामीणों को गंवार कहकर उनकी अवहेलना करते हैं और

आप सुसंस्कारी, बुद्धिमान् तथा अमीर होने का दावा करते हैं। मगर सोचना होगा कि ग्रामीणों की सहायता के बिना नागरिक जीवन का निभना क्या संभव भी है? नागरिक बड़ी-बड़ी हवेलियों में निवास करते हैं, यह ठीक है। मगर यह हवेलियाँ किसके परिश्रम के प्रताप से बनी हैं? नागरिक सुन्दर और बारीक वस्त्र पहन कर मानों आसमान से बातें करते हैं, पर किसकी कड़ी मिहनत ने कपास और रुई पैदा की है? नागरिक भाँति-भाँति के व्यंजन खाते हैं और अपनी चटोरी जीभ को तृप्त करते हैं, लेकिन उनकी सामग्री कहाँ से आती है? कौन अन्न पैदा करता है? अन्न नगर की विशाल हवेलियों में या बाजार की चौपड़ में नहीं पैदा होता और न नागरिक उसके लिए पसीना बहाते हैं। यह सब चीज़ें 'गँवार' समझे जाने वाले लोग ही उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार नागरिक का जीवन गँवारों की ही मुट्ठी में है।

आज अमीरी का चिह्न यह है कि इधर का लोटा उधर न रक्खा जाय। ऐसे 'कर्त्तव्य-कायर' अमीर अपने आपको संसार की शोभा समझते हैं और दिन-रात कठोर परिश्रम करने वाले कर्त्तव्यपरायण ग्रामीणों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। मगर यह अमीर नागरिक एक दिन के लिए ही यह प्रतिज्ञा कर देखे कि वे ग्रामीणों के हाथ से बनी अथवा उनके परिश्रम से पैदा हुई किसी भी वस्तु का उपभोग न करेंगे, तो उन्हें पता लग जाएगा कि उनकी अमीरी की

नींव कितनी मजबूत है।

नगर की सड़ांद से भरी हुई गलियों में दुर्गंध पैदा होती है अरुचि पैदा होती है, नाना प्रकार की हैजा-प्लेग आदि बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं, मगर अन्न नहीं पैदा हो सकता। उन गलियों में विषाक्त वायु का संचार होता है, प्राणवायु का प्रवेश भी नहीं होता। वहाँ बनावटीपन का राज्य है, नैसर्गिक सौन्दर्य के दर्शन तक नहीं होते।

और ग्रामों में? ग्राम अन्न के अक्षय भंडार हैं। वहां प्राणों का अनवरत संचार है, प्रकृति के सौन्दर्य की अनोखी बहार है।

धन्ना अपने ग्राम को प्राणों की तरह चाहती थी। पर कभी-कभी जीवन में ऐसे प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं कि मनुष्य को विवश होकर मन को मारना पड़ता है और अपनी इच्छा के प्रतिकूल ही वर्त्ताव करना पड़ता है। धन्ना की यही स्थिति थी। वह अपने ग्राम्यजीवन की इति श्री करके नागरिक-जीवन के साथ संबंध जोड़ने जा रही है।

आज के नगरों की स्थिति जैसी निन्दनीय है, उस समय का राजगृह वैसा नहीं था। वहाँ धन तो था मगर धर्म के साथ ही था। वहाँ जो बड़े आदमी थे, वे अपने से छोटों को निभाते थे। वहां के पण्डित, मूर्खों को समझा कर अपने नगर को आदर्श नगर बनाये रखने के लिए यत्नशील रहते थे। भला जो नगर भगवान महावीर के चरणारविन्दों से अनेक बार पावन हुआ हो, कैसे संभव है कि वहाँ के नाग-

रिकों मे कोई न कोई विशेषता न हो ?

राजगृह नगर भले स्वर्ग के समान हो, फिर भी धन्ना के लिए तो अपना गाँव ही स्वर्ग था। वह उसे त्यागना नहीं चाहती थी। यही कारण है कि धन्ना जब गाँव छोड़ कर रवाना होने लगी तो अतीत काल की अनेक स्मृतियाँ उसके दिमाग में चक्कर काटने लगीं। इसके हृदय में अपने ग्राम और छोटे से मकान के प्रति, पड़ौसियों के प्रति और ग्राम की इंच-इंच भूमि के प्रति अपूर्व ममता उमड़ पड़ी, जिसका उसने पहले कभी अनुभव ही नहीं किया था। विछोह के समय ममता अतिशय घनीभूत हो जाती है।

धन्ना के हृदय मे जो विचारमंथन हुआ, वह कहा नहीं जा सकता। उसे अपना ग्रामीण घर, पवित्र पवन देने वाले हरे-हरे वृक्ष, निर्मल और पावन जल देने वाले जलाशय और सुख-दुःख में सहानुभूति दिखलाने वाले भोलेभाले ग्रामीण जन सब याद आने लगे—आज मेरी स्थिति अगर बालक को भी पालने योग्य होती तो मै इन सब को कदापि न छोड़ती।

अन्त में धन्ना ने अपना हृदय कठिन बनाया और परिचित जनों से विनम्रतापूर्वक विदा ली।

२

कर्त्तव्यनिष्ठा

———:::():::———

दो बटोही राजगृह की ओर बढ़ चले जा रहे हैं। उनकी चाल में फुर्ती नजर नहीं आती। अलस गति है। उनमें एक स्त्री है, एक बालक है। बालक अभी अबोध है। उसमें समझ नाम की चीज अभी पैदा नहीं हुई है। मां के बताये काम को कर देने के सिवाय उसे अधिक ज्ञान नहीं है।

स्त्री की चाल साफ बतला रही है कि वह अनमने भाव से चली जा रही है। मानो वह नहीं चल रही है, उसका कलेवर ही चला जा रहा है। वह बार-बार मुँह फेर फर पीछे की ओर देख लेती है. जैसे उसका कोई अपना पीछे रह गया है। कभी-कभी वह साथ के बालक पर वात्सल्य-भरी नजर डालती जाती है। फिर भी वह निरन्तर चल रही है। स्त्री धन्ना है और बालक संगम है।

धन्ना के गाँव और राजगृह में बहुत ज्यादा फासला नहीं था। लेकिन दोनों के बीच में, कुछ दूरी तक वन था।

धन्ना वन को पार कर जब कुछ आगे बढ़ी तो उसे राजगृह नगर नज़र आने लगा।

जंगली पशु जब जंगल में से पकड़ कर नगर में लाया जाता है तो उसकी दशा विक्षिप्त हो जाती है। धन्ना की भी कुछ कुछ ऐसी ही स्थिति हो गई। जब तक नगर नज़र नहीं आया था, उसका मन अपने गाँव में और अपने घर में ही भटक रहा था। नगर दिखाई देते ही वह झपट कर राजगृह जा पहुँची और अनेक कल्पनाओं की सृष्टि करने लगी।

धन्ना सीधे-सादे स्वभाव की ग्रामीण स्त्री है। वह पढ़ना-लिखना नहीं जानती। वह सोचने लगी—मैं गँवार कहलाने वाली स्त्री हूँ। इस नगर मे मेरी लाज कैसे रहेगी? मै युवती हूँ और विधवा हूँ। मेरे पति परलोक चले गये है। बालक अभी अबोध है। सिवाय दीनबन्धु भगवान् के और किसी का मुझे सहारा नहीं है। प्रभो! मेरी आत्मा में ऐसा बल प्रकट हो कि मै अपने सतीत्व की भली-भाँति रक्षा कर सकूँ। हे दीनबन्धु! बिना काम किये हराम का खाने का विचार तक मेरे मन में न आवे। अधिक काम करके थोड़ा लेने की ही मेरी भावना बनी रहे। सब लोग मुझे प्रामाणिक मानेंगे तभी मेरे ग्राम की लाज रहेगी।

एक मनुष्य के कृत्य से भी सारे गांव को, यहाँ तक कि देश को भी भलाई और बुराई मिल सकती है।

धन्ना के पास एक जून खाने को भी नहीं था। उसके

शरीर पर जो कपड़े थे, बस वही साथ में कपड़े थे। हंडे-कुंडे अगर उसके घर में रहे होंगे तो चाहे वह टोकरे में भर कर साथ लाई होगी।

धन्ना राजगृह में दाखिल हुई। उसने सोचा—बाजार की ओर जाने से कोई लाभ नहीं है। पास में एक पैसा भी नहीं है कि कुछ खरीद कर बच्चे को दिया जा सके! भूखा बालक खाने की कोई चीज देखकर मचल गया तो क्या होगा? बाजार तो पैसे वालों के लिए है।

यह सोच कर उसने धनिकों की गलियों का रास्ता पकड़ा। इस विचार से कि वहाँ जल्दी कोई मजदूरी मिल जाय तो बच्चे के खाने-पीने का प्रबन्ध कर सकूँ।

पुण्य करुणा में है। जो पुण्यवान् होगा वह करुणावान् होगा और जो करुणावान् होगा वह दीन-दुखियों से प्रेम करेगा। दरिद्री को देख कर वह नफरत नहीं करेगा।

धन्ना एक गली में घुसी। वहाँ की पुण्यवती स्त्रियों ने धन्ना को देख कर सोचा—यह कोई दुखिया स्त्री है। जान पड़ता है, इसका घर-द्वार छूट गया है।

उनमें से एक ने पूछ लिया—'कहो बाई, तुम कौन हो? कहाँ जा रही हो?'

धन्ना ने विनम्र स्वर में कहा—'मैं एक विपद्ग्रस्त ग्रामीण स्त्री हूं और मुसीबतों की मारी आपके नगर में आश्रय लेने आई हूँ।'

एक तो धन्ना के कहने का ढंग ही कुछ ऐसा था, फिर वह स्त्रियाँ भी दयावती थीं। अतएव धन्ना की बात सुन कर उनका हृदय पसीज उठा। उन्होंने उसे प्रेम के साथ बिठला-कर कहा—तुम भूखी होओगी। दूर से आ रही हो। पहले कुछ खा-पी लो।

धन्ना—आप दया की मूर्ति हैं और आपके यहाँ का भोजन भी अच्छा ही होगा। मुझे भूख भी लग रही है फिर भी मै आपके यहाँ का भोजन नहीं कर सकती।

एक स्त्री—क्यों ?

धन्ना—आज मैं विना मिहनत का खा लूँगी तो मेरी जिन्दगी विगड़ जायगी। फिर मुझसे काम न होगा और मैं सीधा भोजन मिलने की ही इच्छा करने लगूँगी।

धन्ना के इस उत्तर से नागरिक स्त्रियों को अपने कर्त्तव्य का भान हुआ और इस बात से वह कांप उठीं।

उन्होंने कहा—हम तुम्हें काम बताएँगी। पहले भोजन तो कर लो।

धन्ना—कृपा करके पहले मुझे काम बता दीजिए। आप जितनी जल्दी मुझे काम बताएँगी, उतनी ही जल्दी मानो भोजन देंगी।

स्त्रियाँ—तुम्हारे साथ यह बालक भी तो भूखा होगा। तुम भोजन नहीं करती तो इसे करा दो।

धन्ना—यह बालक भी मेरे ही जैसा है। यह मेरे उद्यम

द्वारा लाये हुए सामान में से ही भोजन करता है। किसी का दिया हुआ भोजन नहीं करता।

धन्ना की इस बात ने स्त्रियों को और ज्यादा प्रभावित किया। वह कहने लगीं—ठीक है। जिसके माता-पिता निष्ठा वाले होते हैं, वह बालक भी वैसे ही निष्ठावान् होते है।

नागरिक स्त्रियों मे से एक ने कहा—अब बातें करना छोड़ो। बेचारी खुद भूखी है और बालक तो भूख से कुम्हला रहा है। इसे जल्दी कोई काम बता दो।

तब दूसरी ने पूछा—अच्छा बहिन, तुम क्या काम करना जानती हो?

धन्ना—मैं पीसना, कूटना, पानी लाना, पशुओं की सार-संभाल करना, दुहना, दूध-दही की व्यवस्था करना और ग्रामीण भोजन बनाना आदि जानती हूँ।

एक स्त्री ने कहा—तो ठीक है। मैं तुम्हें भोजन-कपड़ा दूँगी। ऊपरी खर्च के लिए भी कुछ दे दिया करूँगी। तुम हमारे यहां रहकर काम किया करो। किसी प्रकार तकलीफ नहीं पाओगी।

धन्ना—धन्यवाद। मगर मैं इस प्रकार नहीं रह सकूँगी। मुझे एक अलग कोठरी मिलनी चाहिए, जहाँ घर बनाकर रह सकूँ और अपना भोजन आप बना-खा सकूँ। आपके यहाँ का भोजन करने से मेरा काम नहीं चलेगा। आपका भोजन दूसरी तरह का होगा, मेरा दूसरी तरह का। मुझे गरीबी में

गुजर करनी है। रईसी भोजन मै नहीं कर सकूँगी। अपनी मजूरी में ही मुझे निर्वाह करना पड़ेगा।

आखिर धन्ना को एक कोठरी मिल गई। उसने लड़के को वहाँ बिठलाया और आप काम में लग गई। काम समाप्त करके, उसे जो मजदूरी मिली उससे वह बाजार जाकर भोजन-सामग्री खरीद लाई। भोजन बनाकर पहले बालक को खिलाया और फिर खुद ने खाया। इसके बाद रास्ते की थकावट मिटाने के लिए वह विश्राम करने लगी।

धन्ना के पास न धन है, न ओढ़ने-बिछाने के लिए वस्त्र ही हैं। केवल मिट्टी के ही कुछ वर्तन हैं। शृङ्गार की वस्तुओं का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उसे अपने दो हाथों का ही बल है। संसार में उसका कोई नहीं है, जो उसके सुख-दुख का साथी हो, उसे सान्त्वना के दो शब्द कहे। बस, वह है और उसका धर्म है। एक नन्हा सा वालक अवश्य है, जिसे देख-कर वह जी रही है। वह सब तरह से असहाय है, अनाथ है।

धन्ना इस हालत में भाग्यशालिनी है या अभागिनी?

प्रश्न अटपटा है। कौन धन्ना को भाग्यशालिनी कह सकता है? इस दुनिया मे सौभाग्य जिस गज से नापा जाता है, उसे देखते तो उपर्युक्त प्रश्न ही असंगत है। लेकिन इस दुनिया से परे भी एक और दुनिया है, जहाँ के नाप वही नहीं हैं जो इस दुनिया के है। उसी दूर की दुनिया के नाप से अगर धन्ना के सौभाग्य को नापा जाय तो निस्सन्देह कहना

पड़ेगा कि धन्ना वास्तव में भाग्यशालिनी है।

धन्ना गरीब है, इसलिए पुण्यशालिनी है, गरीब ही पुण्य-शालिनी हो सकता है और धनी नहीं हो सकता यह बात नही है। असल में पुण्यवान कौन है और कैसे है; यह बात धन्ना के चरित से प्रकट होगी। जिसके दिल मे दया का वास है, वही पुण्यवान् है। जो आपा-पोषी हैं, आप बढ़िया खाते-पीते, पहनते-ओढ़ते हैं; लेकिन पास-पड़ौस के दुखियों की ओर दृष्टि भी नही करते, उन्हें पुण्यवान् कैसे कहा जा सकता है?

धन्ना असहाय है फिर भी उसमें दीनता नहीं है। धन्ना दरिद्र है फिर भी बिना मिहनत किये किसी से कुछ नहीं चाहती। वह दूसरे के घर में रहती है फिर भी स्वावलम्बन को नहीं त्यागती। वह युवती है फिर भी उसने पुरुषमात्र को पिता और भाई के समान समझने का संकल्प किया है और उसे निभाने के लिए दृढ़चित्त है। वह अपने कार्य में व्यस्त रहती है फिर भी जब विश्राम करती है तो यही सोचती है कि मैंने जो व्रत ले लिया है वह जाने न पावे। ग्राम में रहते हुए जिस शील-धन की अब तक रक्षा की है, वह कहीं लुट न जावे। मेरे जीवन रूपी स्वच्छ चादर पर कलंक का धब्बा न लगने पावे। वह अपनी हालत को भलीभाँति समझती है परन्तु असंतोष की ज्वालाओं में कभी दग्ध नहीं होती। जब जितना पानी है, उसी में संतोष मान लेती है।

अब आप सोचिए कि धन्ना पुण्यवती है या नहीं?

आज लोग फैशन में डूबे है। वम्बई अ
नये-नये फैशनों से भी उन्हें संतोष नहीं ह
फैशनों का अनुकरण कर रहे हैं। लोगों को आधुनिक नगरों की हवा लग गई है। लेकिन धन्य है वह धन्ना, जो नगर में निवास करती हुई भी नागरिक रहन-सहन से अछूती ही रही। इस प्रकार जिसे अपनी कुलमर्यादाओं का ध्यान है, जिसके दिल में दया है, जो अपने धर्म का विचार रखती है, उस धन्ना को अगर पुण्यशालिनी न कहा जाय तो क्या कहा जाय ?

धन्ना जिन सेठानियों के घर मजूरी करने जाती थी, उनके यहाँ प्रायः नये-नये पक्वान्न बनते रहते थे। मगर धन्ना कभी किसी चीज़ के लिए 'दे' कहना तो जानती ही नही थी। कभी कोई सेठानी कोई नई चीज देती हुई उसे कहती—'धन्ना, लो, यह ले जाओ। बहुत स्वादिष्ट चीज़ है। तुम भी खाना और बच्चे को भी खिलाना।' तो धन्ना सेठानी की दयालुता और उदारता के लिए उसे धन्यवाद देती हुई कहती—'सेठानीजी ! यह भोजन आपके ही योग्य है। हमारे योग्य नहीं है। एक बार इसका स्वाद ले लूँगी तो दोबारा खाने की इच्छा होगी और चाह बनी रहेगी कि कोई फिर दे दे। यह चाह धीरे-धीरे इतनी बढ़ जाएगी कि मै माँगते भी लगूँगी। इसके अतिरिक्त मेरा बालक भी कभी मचल जाएगा तो मै कहाँ से लाऊँगी ?'

इस प्रकार धन्ना उत्तम भोजन पर कभी न ललचायी। वह अपनी मिहनत-मजूरी से कमाई हुई रूखी-सूखी रोटियों पर ही अपना निर्वाह करती थी। और संतुष्ट रहती थी। सेठानियों के पकवानों को वह परतन्त्रता के जाल में फँसाने वाला प्रलोभन समझती थी। वह जानती थी कि अगर मैं जीभ की गुलामी में फँस गई तो मेरी सारी जिंदगी गुलामी के बंधनों में जकड़ जाएगी। इस समय तो मैं सिर्फ काम-काज की गुलामी कर रही हूँ किन्तु फिर भोजन की भी गुलामी करनी पड़ेगी। भोजन की गुलामी से निस्तार होना कठिन हो जाएगा।'

पुण्य की रक्षा इस प्रकार की जाती है! बढ़िया खाना और पहनना एवं जीभ का गुलाम बन जाना पुण्यशाली का लक्षण नहीं है। पुण्यवान् बनने के लिए जीभ पर अंकुश रखना पड़ता है।

आज की भारतीय प्रजा अगर धन्ना के आदर्श का अनुसरण करती और विदेशी वस्त्रों आदि के प्रलोभन में न पड़ती तथा तथा स्वावलम्बी बनी रहती तो उसे सदियों तक गुलामी न सहन करनी पड़ती। लेकिन विदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं ने भारतीय जनता को गुलाम बना रक्खा।

राजगृह नगर की उदारहृदया सेठानियाँ धन्ना को मुफ्त में और अच्छी नीयत से भोजन देती थीं, फिर भी धन्ना उसे स्वीकार नहीं करती थी। पर आपको चौगुना, अठगुना मूल्य

लेकर ऐसी चीज़ें दी जाती हैं, जिनका सेवन करके आप आर्थिक गुलामी के बन्धनों से छूट ही न सके। फिर भी आप विचार नहीं करते !

जो वस्तु आपके देश की उन्नति में बाधा पहुँचाती हो, अथवा जिसके सेवन से आपके धर्म को आघात लगता हो, आपकी कुल मर्यादा भङ्ग होती हो, वह वस्तु अगर मुफ्त में भी मिल रही हो तो भी अगर आप विवेकवान् हैं तो उसे स्वीकार नहीं करेंगे। कौन बुद्धिमान् पुरुष बिना पैसे मिलने के कारण विष खाने को तैयार होगा ?

लेकिन ऐसी बातों पर विचार करने वाले आज बहुत कम हैं। लोग तात्कालिक सुख और सुविधा का ही विचार करते हैं। उससे निकलने वाले अंतिम परिणामों की ओर ध्यान नहीं देते। कॉड-लीवर-ऑइल, जो मछलियों के कलेजे का तेल है, कई-एक दूध में मिलाकर पी जाते हैं। ऐसे लोगों में दया कहाँ रहेगी ? कपड़ों में, दवाइयों में तथा अन्य वस्तुओं में चर्बी मिला-मिला कर आपका धर्म नष्ट किया जाता है। आप इन बातों को जानते भी हैं। लेकिन कितने हैं जो इनका त्याग करते हैं ?

अमुक वस्तु का सेवन मेरे धर्म के अनुकूल है या नहीं ? इस वस्तु का व्यवहार करने से मेरे कुल की मर्यादा भङ्ग होती है या नहीं ? इत्यादि प्रश्न किस के हृदय में उठते हैं ? अधिकांश लोग मज़ा मौज में पड़े हैं। उन्हें इन बातों से जैसे

कोई मतलब ही नहीं है!

मगर धन्यवाद है उस धन्ना को, जिसने मुफ्त में मिलने वाली वस्तुओं का उपयोग नहीं किया जो उसके धर्म में तथा व्रत में बाधक हो सकती थीं। धन्ना ऐसी विवेकवती थी तभी तो उसका पुत्र शालिभद्र हुआ!

धन्ना मोटा और सादा वस्त्र ही पहनती थी। उदारता-पूर्वक अपना उतारा हुआ या नया वस्त्र उसे कभी देने लगती थीं। पर—

धन्ना तो वस्त्र नहीं लेवे,
जामें काम जरा नहिं होवे।
ज्यों से व्रत म्हारा नष्ट होवे,
नहिं लेऊँ धन्ना इम केवे॥

धन्ना वस्त्रों को स्वीकार नहीं करती थी। वह नम्रता-पूर्वक उत्तर देती—यह वस्त्र मेरे योग्य नहीं हैं। मैं पहना हुआ वस्त्र लेती ही नहीं हूँ। कदाचित् आप बिन पहना वस्त्र दें तो भी मैं नहीं ले सकती। मुझे आपकी उदारता और सद्भावना का दुरुपयोग करने का क्या अधिकार है? मैं तो अपनी आय में से ही अपने योग्य वस्त्र खरीद लूँगी।'

धन्ना का उत्तर सुन कर सेठानियाँ कहतीं—'तू हमारे यहाँ काम करती है और दरिद्रा-सी दिखाई देती है। यह हमारे लिए लज्जा की बात है। कोई क्या कहेगा कि इनकी नौकरानी ऐसे फटे हाल रहती है! जरा अच्छे कपड़े पहना

कर। इसमें तेरी भी इज्ज़त है और हमारी भी।'

धन्ना उत्तर देती—'मै किसी की नौकरानी नहीं हूँ; केवल काम-काज की नौकरानी हूँ। आपने बढ़िया कपड़े पहने हैं, मैंने साड़े और मोटे। मगर इसमें अन्तर क्या हुआ? जैसे आप संतुष्ट हैं वैसे मै भी संतुष्ट हूँ। आपके सुदिन सदा बने रहें, फिर भी कल्पना कीजिए कि कदाचित् आपके ऊपर मेरी जैसी मुसीबत आपड़ी तो आप क्या करेंगी? आप उस मुसीबत को शांति के साथ सहन करेंगी या हाय-हाय करके विकल हो जाएँगी? संसार में सब के दिन सदा समान नहीं बीतते। अतएव मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। यह बढ़िया समझे जाने वाले वस्त्र गुलामी के बन्धन मे बाँधने वाले हैं। अतएव आप अनुग्रह करके इन्हें पहनने का आग्रह न कीजिए। मेरे लिए वही कपड़े अच्छे हैं जिन्हें पहन कर मै अपना काम भलीभाँति कर सकूँ, अपना पेट पाल सकूं और विलासिता की दुर्गन्ध से बच सकूँ। मेरे लिए वही कपड़े अच्छे हैं, जिन्हें पहन लेने पर मेरी नियत न बिगड़े और मुझ पर किसी दूसरे की नियत न बिगड़े। जिन कपड़ों से मेरा व्रत टूटता हो, आगे चलकर जिनके लिए भीख माँगने की संभावना होती हो, वे कपड़े मेरे काम के नहीं हैं। सेठानीजी! आपकी उदारता के लिए मै कृतज्ञ हूँ। आपने मेरे प्रति जैसी उदारता प्रदर्शित की है वैसी ही दया भी दिखाइए। मेरी दया इसी में है कि आप मुझे किसी

ऐसी चीज़ का प्रलोभन न दें, जिससे आगे चलकर मैं खराब हो जाऊँ।'

धन्ना की ऐसी-ऐसी ज्ञानभरी बातें सुन कर सेठानियाँ आश्चर्य में डूब जाती थीं। वह सोचने लगतीं—'धन्ना को कौन ऐसा गुरू मिला है, जिसने इसे यह उपदेश दिया है! यह गाँवड़े की रहने वाली भोली औरत ज्ञान की बातें कहाँ से सीख सकी होगी?'

नैसर्गिक गुण के सामने उपदेश की कोई बिसात नहीं है। नैसर्गिक गुण के होने पर मनुष्य की भावना जितनी ऊँची होती है, उपदेश से उतनी ऊँची नहीं हो सकती। वास्तव में धन्ना बड़ी पुण्यवती है। अगर भारतवर्ष की प्रजा धन्ना के कार्यों को पहचान ले और उनका महत्व भलीभाँति समझ ले तो थोड़े ही दिनों में अनेक बड़े-बड़े पाप धुल जाएँ!

धन्ना काम-काज से निबट कर आराम करने लगती तो सोचा करती थी—'संसार की विलासवर्धक वस्तुएँ ही विषय-वासना को उत्पन्न करती हैं। यह सब जीवन को अपवित्र बनाने वाली हैं। प्रभो! मुझे इन वस्तुओं से बचाना। मेरा जीवन तेरे ही चरणों में समर्पित है।'

धन्ना न जाने किस गहरे विचार में डूबी है कि देने वाले तो खुशी खुशी उसे देते हैं मगर वह नहीं लेना चाहती। वह विवेकवती है, इसी कारण नहीं लेती है। सचमुच ऐसे विवेकवान् व्यक्ति ही अपने जीवन में दाग नहीं लगने देते। धन्ना अपने पुण्य के कारण सदैव विकारजनक वस्तुओं से बचती रही।

३

संगम का शिक्षण संस्कार।

——:::():::——

धन्ना बड़े विचार और विवेक के साथ अपना और अपने बालक का निर्वाह कर रही थी। उसकी आकांक्षाओं का दायरा बहुत छोटा था। यही कारण है कि उसे असंतोष और तृष्णा ने कभी पराजित नहीं किया। वह थोड़े में ही सुखी थी।

धीरे-धीरे धन्ना का नन्हा बालक बड़ा हो गया। अब उसे बालक के सम्बन्ध में विचार करना पड़ा। एक दिन उसने सोचा—'यह ग्रामीण लड़का है। यह अमीरों के लड़कों के साथ खेलता रहता है। इसके भी संस्कार अमीरों जैसे हो जाना स्वाभाविक है। इधर मै गरीबिनी और ग्राम्य-जीवन बिताने वाली असहाय स्त्री हूँ। लड़का बिगड़ जाएगा तो मेरे सारे मंसूबे मिट्टी में मिल जाएँगे। लोग कहेंगे—इसने लड़के को बिगाड़ा है। मिहनत-मजूरी करके इसका पेट मैं पाल सकती हूँ मगर इसका बिगड़ना नहीं देख

सकती।'

'तो उपाय क्या है? यही कि अमीर लड़कों की संगति से इसे बचाया जाय। जिस प्रकार भी मै स्वतन्त्र और सादा ग्राम्य-जीवन बिता रही हूँ, उसी प्रकार का जीवन बिताने के लिए इसे प्रेरित किया जाय।'

बिना कुछ कराये लाड़ लड़ाते रहने से लड़के का सुधार नही होता। बहुत से लोग समझते हैं कि लड़के से कुछ काम न लेना और उसे बेकार भटकने देना ही उससे प्यार करना है। मगर यह विचार बड़ा घातक है। ऐसा करने से बालक के जीवन में तरह-तरह के अवगुण प्रवेश कर जाते हैं। आगे चल कर बालक कभी समझदार हो गया और ठीक रास्ते पर आ गया तो वह अपने माता-पिता की लापरवाही का विचार करके उनके प्रति कृतज्ञ नहीं रहता।

धन्ना रात भर इसी विचार में डूबी रही। उसने बालकके विषय में अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। प्रातःकाल बालक से कहा—'बेटा! तू दिन भर गंदी हवा वाली गलियों में घूमता-फिरता है! इस हवा में घूमने से तेरा स्वास्थ्य खराब हो जाएगा।'

बालक—गलियों में न जाया करूँ तो कहाँ जाऊँ? कोठरी में ही बैठा रहूँ? मगर वहाँ भी तो वही गलियों की हवा पहुँचती है!

धन्ना—नहीं बेटा, मै कोठरी में बैठे रहने को नहीं कहती

हूँ तुझे नगर से बाहर की साफ़-सुथरी ताज़ी हवा लेना चाहिए।

बालक—लेकिन बिना काम जङ्गल में कैसे फिरता रहूँगा?

धन्ना—काम की क्या कमी है बेटा! तेरी इच्छा हो तो सेठों के ५-७ बछड़े तेरे सिपुर्द करा दूँ। तू उन्हें जङ्गल में—खेतों में चरा लाया कर। बछड़ों के साथ जङ्गल में जाने से काम भी होगा और स्वच्छ हवा भी मिलेगी। शाम को बछड़े लेकर लौट आया करना। तुझे मालूम ही है कि अपन गरीब आदमी हैं। अगर तू सेठों के बछड़े चरा लाएगा तो अपनी मजूरी की आमदनी भी बढ़ जाएगी।

धन्ना का प्रस्ताव सुन कर बालक, जिसका नाम संगम था, प्रसन्न हुआ। उसने कहा—तुमने अच्छा सोचा माँ! मेरा मन भी ऐसा ही कहता है। मै अपने गाँव में रहता था तो आनन्द में रहता था। वहाँ के लड़के मुझे प्रेम करते थे। यहाँ के गहने पहनने वाले लड़के मेरी अवज्ञा करते रहते हैं। मैं बछड़ों के साथ अपना समय व्यतीत करना अच्छा समझता हूँ, इन घृणा करने वाले लड़कों के साथ खेलना पसंद नहीं करता। बछड़े मुझे प्रेम करेंगे और मेरी अवज्ञा नहीं करेंगे। इन लड़कों की अपेक्षा मेरे लिए बछड़े बड़े अच्छे रहेंगे।

संगम की स्वीकृति पाकर धन्ना प्रसन्न हुई। वह तब सेठानियों के पास पहुँची। उनसे उसने कहा—'आपके बछड़े

स्वच्छ जङ्गल की हवा न मिलने के कारण कितने दुर्बल और निर्जीव-से हो रहे हैं! इन्हें साफ़ हवा मिले तो इनमें चेतना फूट पड़ेगी। आप इन्हें मुझे सौंप दीजिए। मेरा बालक इन्हें जङ्गल में चरा लाएगा और शाम को घर लौटा लाएगा। बाँधने और खोलने की जिम्मेदारी मुझ पर रही। मै इन्हें खोल दिया करूँगी, बाँध जाया करूँगी और समय-समय पर जङ्गल में भी संभाल लिया करूँगी। इसके लिए आपकी जो इच्छा हो, मजदूरी दे दिया कीजिए। आप इतनी कृपा करेंगी तो मेरे लड़के के लिए भी काम हो जाएगा और आपके बछड़े भी बढ़िया हो जाएँगे।'

धन्ना के कथन में पसंद न आने लायक कोई बात ही नहीं थी। सेठानियों ने प्रसन्नतापूर्वक उसकी बात स्वीकार कर ली।

धन्ना ने इस प्रकार कुछ बछड़े इकट्ठे किये और संगम को सौंप दिये। संगम उन्हें चराने ले गया। धन्ना ने पहले-पहल स्वयं बछड़ों की संभाल की। थोड़े ही दिनों में संगम जङ्गल से परिचित हो गया और बछड़े चराने में अभ्यस्त हो गया।

अमीरों के लड़के मदरसे में जाकर शिक्षा लेते हैं, मगर गरीबिनी धन्ना का बालक जङ्गल में भी शिक्षा पा रहा है। वह वहाँ क्या सीखता है और उसके हृदय में उस सीख का असर कितना गहरा होता है, यह समय पर ही मालूम होगा!

बालक संगम वन के शांतिदायक प्राकृतिक दृश्य देख कर आनंदित हो उठा। न मालूम उसके हृदय के किस अतर-तम प्रदेश से यह अव्यक्त ध्वनि गूँजने लगी कि मेरी माँ धन्य है जिसने शहर की गन्दी और विषैली हवा से निकाल कर इस पवित्र और आनन्ददायिनी हवा में मुझे भेज दिया! संगम मन ही मन अपने साथी अमीरों के लड़कों को संबो-धन करके कहने लगा—ओ मेरे साथियो! तुम लोग तो पाठशालाओं में पुस्तकों से शिक्षा प्राप्त कर रहे होओगे, तुम्हें क्या पता है कि यहाँ कैसी शिक्षा मिलती है।

एक समय की बात है। सूर्य तेजी से चमक रहा था। मध्याह्न का समय था। कड़ी धूप पड़ रही थी। संगम कड़ी धूप से घबरा कर एक वृक्ष के नीचे आकर खड़ा हो गया। उसे शांति मिली। वह आँखें घुमाकर पेड़ की ओर बड़े ध्यान से देखने लगा। पेड़ के प्रति उसे एक विचित्र प्रकार का आक-र्षण हुआ, मानों पेड़ उसका कोई आत्मीय हो! मन ही मन वह कहने लगा—तरुवर! तुमने कितने पवित्र और उदार हो! तुम्हें 'अजातशत्रु' का महत्वपूर्ण नाम दिया गया है। अजातशत्रु की उपाधि या तो धर्मराज को है या तुम्हें है। चाहे कोई पत्थर मारे या काटे, तुम उसे भी वही फल देते हो जो पूजने वाले को देते हो! मै मनुष्य हूँ और यह मेरे साथी पशु हैं। परन्तु तुम बिना किसी भेदभाव के जैसी छाया मुझ पर रखते हो वैसी ही इन पर भी। किसी के आने पर और बैठने

पर जैसी छाया रखते हो, उसके चले जाने पर भी वैसी ही रखते हो। दिखावट की भावना तुम्हें छू भी नहीं सकी। तुम्हारे भीतर जैसा समभाव है, वैसा समभाव अगर हम मनुष्यों में भी उत्पन्न हो जाए, हम भी अगर सत्कार और तिरस्कार करने वालों पर समान भाव रखना सीख ले तो मनुष्य-समाज कितना उन्नत हो जाए ! सचमुच अपने उच्च गुणों के कारण ही तुम ऊँचे हो। साधारण मनुष्य तुम्हारी ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता और इसी कारण वह 'सुमन' वाला भी नहीं बनता और 'सफल' भी नहीं हो पाता। हे शाखिन् ! तुम्हारी सब क्रियाएँ मनुष्यों को अद्वितीय बोध देने वाली हैं।'

संगम इस प्रकार सोच ही रहा था कि उस वृक्ष की डालियों पर बैठे हुए पक्षियों का संगीत उसके कानों में पड़ा। संगम का ध्यान उस संगीत की ओर खिंच गया। संगीत सुन कर वह पुलकित हो उठा। उसने सोचा—'पक्षियों का यह गान, वीणा आदि वाद्यों को लज्जित करने वाला है। इन पक्षियों के स्वर के सामने अच्छे से अच्छे गवैये का स्वर भी नाचीज़ है। गवैया लोभ से या किसी को रिझाने के लिए गाता है परन्तु पक्षीगण स्वाभाविक सरलता से, अपने अन्तःकरण की सहज प्रेरणा गाते से हैं। कोकिला ! तेरे पञ्चम स्वर को सुन कर मुझे अपनी माता की याद आ जाती है। तू भी मेरी माता की तरह मधुर स्वर सुना रही है।'

भगवान् के वचन में शास्त्र को कोयल के पंचम स्वर की उपमा दी गई है। जिस प्रकार कोयल बिल्कुल निस्वार्थ भाव से अपना स्वर सुनाती है, उसी तरह भगवान ने भी निस्वार्थ-भाव से अपने वचन सुनाये हैं।

धूप कुछ ढल गई तो संगम अपने साथी बछड़ों को चराने के लिए चल दिया। बछड़े अब प्यासे हो गये थे। संगम उन्हें झरने के पास ले गया। बछड़े अपनी-अपनी पूँछ उठा कर पानी पीने लगे। संगम ने भी पानी पिया। पानी पीकर और मुँह पर ठंडा पानी फेर कर वह झरने की ओर भावभरी निगाह से देखने लगा। झरने के कलकल नाद ने उसे मुग्ध बना दिया। वह मानों झरने से बोलने लगा—झरना! तेरा नाद कितना मधुर है! तू एक ही धारा से प्रवाहित हो रहा है। मेरे आने से पहले भी तू इसी प्रकार नाद करता हुआ एक धारा से बह रहा था और मेरे आने के बाद भी तू वही कलकल नाद करता हुआ उसी प्रकार बह रहा है। अगर मानव-जीवन सुख-दुःख में, अनुकूल-प्रतिकूल अव-स्थाओं में, सदा एक ही धारा से—समान रूप से बहता रहे तो कितना उत्तम हो।

अगर मनुष्य के जीवन की धारा निर्झर की 'जीवन-धारा' के समान सदा शांत, निरंतर अग्रगामी, मार्ग में आने वाली चट्टानों से भी टकरा कर कभी न रुकने वाली, विश्व को संगीत के माधुर्य से पूरित कर देने वाली और निरपेक्षता

से वहने वाली बन जाय तो क्या कहना है !

झरना मनुष्य को अनोखा पाठ सिखाता है। वह अनवरत गति से अनन्त सागर में मिल जाने के लिए वहता रहता है, इसी प्रकार मनुष्य भी अगर अनन्त परमात्मा में मिलने के लिए निरंतर गतिशील रहे तो कृतकृत्य हो जाए! झरना हमें सिखलाता है कि निरंतर प्रगति करना ही जीवन का चिह्न है और जड़ना मृत्यु की निशानी है।

बालक संगम को धीरे-धीरे वन-जीवन बहुत प्रिय लगने लगा। वन के वृक्ष और लताएँ, उसे अपने परिचित साथियों जैसे ज्ञात पड़ते थे। उसने उनके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। वह वन में पहुँच कर खूब प्रसन्न रहता।

संगम को नगर-जीवन से घबराहट होती थी। जब वह नगर में आता तो ऊब जाता और सोचता—कब सुबह हो और मैं अपने साथियों के साथ वन में विहार करने रवाना होऊँ।

वन का जीवन वास्तव में प्रशंसनीय है। भगवान महावीर को महलों की अपेक्षा वन ही प्रिय लगा था। बुद्ध ने जिस समय बुद्ध गया में प्रवेश किया तब, वहाँ के जंगल को देखकर उन्होंने कहा—योगियों के भाग्य अच्छे हैं जो यह जङ्गल नहीं कटा है। भारतवर्ष के महान् साधकों ने वन के सजीव, शांत, स्वच्छ एवं पवित्र वातावरण में ही अपनी

महान् साधनाएँ सम्पन्न की थीं।

वन के साथ योगियों का क्या सम्बन्ध है, यह बात तो योगी ही जानते हैं। दूसरों को इसका क्या पता!

इस प्रकार वन में आनन्दपूर्वक रह कर संगम मुनि को अपने घर लाने की आकर्षण शक्ति प्राप्त कर रहा है। वे मुनि जो मासखमण के पारणे के निमित्त आने वाले हैं, उन्हें लखपतियों के घर के वदले संगम जैसे गरीव के घर लाने में कैसी शक्ति की आवश्यकता है, इस पर जरा विचार कीजिए! आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव के विना ऐसे मुनि संगम के घर नहीं पहुँच सकते थे।

वालक संगम में कैसी आत्मिक शक्ति होगी, यह विचारणीय है। एक गरीबिनी मजूरिन का बालक होकर भी संगम ऐसी शक्ति कैसे पा सका? और आपके वालकों में यह शक्ति क्यों नहीं है? आप अपने वालकों को खूब खिलाते हैं, पिलाते हैं, वढ़िया मन चाहा कपड़ा पहनाते हैं और गहनों से सजाते हैं। फिर भी उनमें संगम जैसी शक्ति नहीं उत्पन्न होती? कहीं यह सब बातें ही तो शक्ति नष्ट नहीं कर देतीं? यह आपके सामने विचारणीय प्रश्न है।

वालक संगम में अच्छे गुण होंगे, तभी तो वह तपस्वी मुनि को अपनी ओर आकर्षित कर सका था। शरीर पर फोड़ा या घाव होने पर मक्खियाँ भिनभिनाती आती हैं, लेकिन सुगंधित द्रव्य का लेप करने पर मक्खियाँ नहीं आतीं;

भ्रमर भले ही आजाते हैं। मक्खियाँ दुर्गन्ध पर ही आती हैं और भ्रमर सुगंध पर ही आते हैं। अगर आप सद्‌गुण रूपी सुगंध पैदा करेंगे तो कभी ऐसे मुनि भी आपके पास चले आएँगे। उनके आने पर उनका आदर-सत्कार करोगे तो अपना कल्याण कर लोगे।

४

खीर।

——::::()::::——

वन में जाते और बछड़े चराते-चराते संगम को काफी अर्सा हो गया। साधारणतया मनुष्य एक ही प्रकार का जीवन बिताते-बिताते ऊब जाता है। उसके हृदय में किसी प्रकार की नवीनता की चाह उत्पन्न होती है। कहावत भी है—'लोको हि अभिनवप्रियः' अर्थात् प्रत्येक मनुष्य नूतनता चाहता है। मनुष्य की यह स्वभावसिद्ध प्रकृति है। ऐसी स्थिति में संगम को भी अगर वन-जीवन से विरक्ति हो गई होती तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, बल्कि ऐसा होना ही स्वाभाविक था। मगर नहीं, उसे अपने नियमबद्ध जीवन के प्रति कोई विराग नहीं है, असंतोष नहीं है। वह पहले की ही तरह अब भी नियत समय पर अपने साथी बछड़ों को लेकर वन चल देता है और वहाँ प्रसन्न भी रहता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि उसने वन्य प्रकृति के साथ गहरी आत्मीयता स्थापित कर ली है। वन के पेड़, पौधे,

बेलें, झरने और टीले उसके सुहृद् बन गये हैं और उनका नित्य नया संदेश उसका जी नहीं ऊबने देता।

एक दिन न मालूम कौन-सा त्यौहार था। उस दिन घर-घर खीर बनाई गई थी। बालक संगम को अन्य बालकों से इस बात का पता चला। संगम में इतना धैर्य तो था कि वह किसी से खीर नहीं ले सकता था और न किसी के घर भोजन ही कर सकता था, लेकिन आखिर बालक ही ठहरा। घर-घर खीर बनने का समाचार सुनकर उसने सोचा—जब सभी के घर खीर बनी है तो मेरे घर भी बनी होगी। मै भी आज खीर खाऊँगा।

खीर की आशा लिए संगम अपने घर आया। उसे आया देख धन्ना ने कहा—बेटा, आ, राबड़ी-रोटी खाले। फिर बछड़े ले जाने का समय हुआ जाता है।

संगम ने कहा—माँ, क्या आज तुमने राबड़ी-रोटी ही बनाई है? जिसे खीर कहते है, वह नहीं बनाई?

संगम ने अपनी समझ में कभी खीर नहीं खाई। उसे खीर का अनुभव नहीं है। धन्ना चाहती तो किसी और वस्तु को खीर बताकर संगम को धोखा दे सकती थी। मगर उसने ऐसा नहीं किया। वह जाति की गूजरी है। उसने खीर खाई है। आज मुसीबत के दिन हैं तो क्या हुआ, वह अपने पुत्र को खीर जैसी चीज़ के लिए धोखा नहीं दे सकती। जिसकी माता मायाविनी नहीं होती उसकी संतान भी मायाचार से

मुक्त होती है। इसके विपरीत जो माता अपनी संतान के साथ कपट करती है झूठ बोलती है, वह अपनी संतान को कपट और झूठ की शिक्षा देती है।

धन्ना को संगम की बात सुनकर कितनी गहरी वेदना हुई होगी, यह तो माता का हृदय ही ठीक तरह अनुभव कर सकता है। लेकिन धन्ना धीरज वाली स्त्री थी। उसने अपनी वेदना प्रकट नहीं होने दी। उसके हृदय में जो ज्वाला भड़क उठी थी, उसकी लपटों से वह कोमलहृदय बालक को नहीं झुलसाना चाहती थी, उसने शान्त और प्यारभरे स्वर में कहा—बेटा, तू खीर की बात कहाँ सुन आया है? अपने घर तो छाछ भी नहीं है। छाछ माँगने से मिलती है और मैं माँगना सीखी ही नहीं! खीर तो दूध आदि से बनती है। खीर का सामान तो अपने यहाँ नहीं हैं। फिर खीर कहाँ से आएगी?

धन्ना प्रायः प्रतिदिन मजदूरी करती है। फिर उसने अपने पास क्या इतने पैसे भी न संग्रह किये होंगे कि एक बार खीर खिला सके? कहा जा सकता है कि पैसे तो होंगे, लेकिन कृपणता के कारण उसने ऐसा कहा होगा। यह समाधान सही नहीं मालूम होता। धन्ना कपट करना नहीं जानती। वह सीधी और सच्ची स्त्री है। जो सच होता है, वह निखालिस भाव से साफ कह देती है। इसके अतिरिक्त वह कपट करती तो किससे? और किसके लिए?

संगम ही उसका एकलौता बेटा है। संसार में अपना कहने लायक दूसरा कोई नहीं है। भला, धन्ना जैसी स्त्री उससे क्या कपट करती !

धन्ना संग्रह करना नहीं सीखी। धन का संग्रह करना उसे पाप मालूम होता है। संग्रहपरायणता दूसरे सब पापों का मूल है। वह जानती है कि जहाँ मैंने चार पैसे जोड़े नहीं कि मैं निन्यानवे के फेर में पड़ जाऊँगी। फिर पैसों के लोभ में पड़कर मैं दूसरों का काम बिगाड़ने लगूँगी और न्याय-अन्याय का विचार भी न करूँगी। वास्तव में संसार के अधिकांश पाप परिग्रह-संग्रह के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। कहा भी है—

अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।

अर्थात्—सदा ध्यान रक्खो कि अर्थ वास्तव में अनर्थ है।

धन्ना कहती है—बेटा, न मेरे पास खीर की सामग्री है और न पैसे ही हैं, जो तुझे खीर बना कर खिला सकूँ। इसलिए जो घर में है सो खा ले और काम में लग जा।

संगम—माँ, आज तक तो मैंने तुमसे कोई चीज़ माँगी नहीं है। आज एक खाने की चीज़ माँगी और उसके लिए भी तुमने मना कर दिया। आज सब लड़के खीर खा रहे हैं। सब की माताओं ने उनके लिए खीर बना दी है। और तू कैसी माता है जो अपने बेटे को एक दिन खीर भी नहीं बना सकती? मैं आज या तो खीर खाऊँगा या फिर भूखा

ही चला जाऊँगा।

अपने पुत्र का यह हठ देखकर धन्ना को अपना अतीत काल स्मरण हो आया। एक-एक करके बहुत-सी तसवीरें उसके मस्तिष्क में खिंची और विलीन हो गईं। एक समय था जब उसके यहाँ गायें थीं, भैंसें थीं। दूध-दही की कमी नहीं थी। उस समय माँगने वाला कोई बालक नहीं था। और आज खीर के लिए हठ करने वाला बालक है तो एक बार खीर बनाने के लिए दूध ही नहीं है! सरल बालक संगम का विचार कर उसका हृदय भर आया। बेचारा कभी कुछ माँगता नहीं है। आज ही उसने खीर माँगी है। अब इसे क्या दूँ?

बालक संगम का उदास मुख देख कर धैर्यवती धन्ना स्थिर नहीं रह सकी। अपनी विवशता का विचार कर उसकी आँखें सजल हो गईं।

माँ की आँखों में आँसू देखना संगम के लिए नवीन बात थी। इससे पहले धन्ना न कभी घबराई थी, न रोई थी। गाढ़े से गाढ़े समय में भी उसने अपना कलेजा चट्टान बना कर रक्खा था। इसी कारण संगम अपनी माँ की आँखें गीली देख कर घबरा उठा। उसने सोचा—मेरे खीर माँगने से ही माँ रो रही है! संगम भी रो पड़ा। रोते-रोते उसने कहा—माँ, तू मत रो। मैं खीर अब कभी नहीं माँगूँगा। जो तू देगी वही खाकर बछड़े चराने चला जाऊँगा।

संगम की इस सान्त्वना से धन्ना का हृदय मानों फट गया। उसे अपनी स्थिति असह्य हो उठी। मन ही मन उसने कहा—ओ धन्ना, अगर तुझमें इतनी भी शक्ति नहीं थी कि एक वार तू अपने लाल को खीर खिला सके तो तू ने बेटे को जन्म ही क्यों दिया ?

धन्ना अपनी हीनता और विवशता पर रो रही थी और संगम अपनी माता की व्याकुलता देख कर रो रहा था। दोनों का रोना सुन कर पास-पड़ौस की स्त्रियाँ धन्ना की कोठरी की ओर झपट आई। धन्ना और संगम की सज्जनता और ईमानदारी सभी पर प्रकट थी। उनके प्रति सभी की हार्दिक सहानुभूति थी। अतएव माँ-बेटे को रोते देख उनमें से एक ने पूंछा—धन्ना, क्यों रो रही हो ? और इस बालक को क्यों रुला रही हो ? क्या कारण है ? बताओ तो सही !

धन्ना अपनी व्यथा किसी पर प्रकट नहीं होने देती थी। स्त्रियाँ इकट्ठी हुई कि उसने अपने आँसू पोंछने की चेष्टा की, इस विचार से कि मेरी दीन दशा इन पर प्रकट न होने पावे। मगर आज उसकी चेष्टा सफल नहीं हुई। वह पकड़ ली गई। तथापि उसने कहा—कोई खास बात नहीं है बहिन, चिन्ता मत करो।

धन्ना वास्तव कितनी धैर्यवती है। तुलसीदास ने कहा है—

तुलसी पर घर जायके, दुःख न कहिये रोय।
भरम गमावे आपनो, बाँटि सके नहिं कोय।

धन्ना की बात सुनकर एक ने कहा—नहीं, कुछ तो अवश्य है। तुम बात छिपा रही हो, किन्तु विना कहे काम न चलेगा। हम मानने वाली नहीं। निस्संकोच होकर कहो, असल बात क्या है? तुम और संगम क्यों दुःखी दिखाई देती हो।

धन्ना ने कहा—मैं झूठ बोलना तो जानती नहीं इसलिए आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप कुछ न पूछिए।

झुंड में से आवाज आई—'नहीं, कहना पड़ेगा, कहना पड़ेगा।'

धन्ना ने यह आग्रह देखकर कहा—तो सुन लीजिए। आज यह बालक एक ऐसी वस्तु माँगता है जो मेरे घर में नहीं है। मैं इसे वह चीज कैसे दूँ, इस दुःख से मुझे रोना आ गया और मुझे रोती देख संगम भी रो उठा।

एक सेठानी—तुम्हारा बालक किसी वस्तु के लिए रोवे और हम पड़ौसी देखा करें तो फिर हम पड़ौसी किस काम के? बेचारा बालक अधिक से अधिक खाने को माँगता होगा, और क्या माँगेगा?

धन्ना—कुछ भी माँगे, परन्तु वही वस्तु तो दी जा सकती है जो घर में हो। जो वस्तु घर में है ही नहीं, वह कहाँ से दी जाय?

सेठानी—आखिर बताओ तो सही, संगम क्या माँगता है?

बहुत कहने-सुनने पर धन्ना कहने लगी—यह आज आप लोगों के घर पर बालकों को खीर खाते देख आया है। सो यहाँ आकर मुझसे खीर माँगने लगा है। मेरे घर छाछ भी नहीं है तो खीर कहाँ से दूँ?

सेठानी—बस, इतनी सी ही बात है! जरा सी बात के लिए तुमने बालक को रुलाया और आप रोई! मेरे घर अब भी बहुत-सी खीर रक्खी है। चलो, मैं खीर देती हूँ।

धन्ना—आप सब की दया तो मुझ पर खूब है, लेकिन मैं पहले ही आपसे प्रार्थना कर चुकी हूँ कि मैं या मेरा बालक पराये घर का अन्न नहीं खाते। घर में जो कुछ होता है वही खाकर संतोष कर लेते हैं। इसलिए मैं आपकी सहानुभूति के लिए तो आभारी हूँ, मगर खीर नहीं ले सकती। संगम भी अब समझ गया है और कहता है कि अब मैं खीर नहीं माँगूगा। मुझे अपने पहले समय का स्मरण हो आया, इसी कारण दुःख हुआ।

धन्ना का उत्तर सुन कर दूसरी सेठानी कहने लगी—धन्ना ठीक कहती है। एक दिन दूसरे के यहाँ का अन्न खाने में भला नहीं होता। चलो धन्ना, मैं तुम्हें दूध, चावल आदि आदि सामग्री देती हूँ, सो अपने ही घर में खीर बना लो।

धन्ना—आप मुझ पर यह बोझ मत डालिये। माँगना ही होता तो मैं खीर ही नहीं ले लेती?

तब तीसरी सेठानी ने कहा—धन्ना ठीक ही तो कह रही है। वास्तव में आपका देना, देना नहीं; दूसरे की इज्जत लेना है। धन्ना जाकर तुम्हारे घर पर खड़ी रहे और तुम इसे दो! लोग देखें कि सेठानी ने दिया! यह तो देना नहीं, आबरू लेना है! धन्ना गरीबिनी है तो क्या हुआ। आखिर वह अपनी इज्जत समझती है और उसकी रक्षा करने का पूरा ध्यान रखती है। यदि आपको देना ही है तो घर से लाकर यहीं क्यों नहीं दे जातीं!

'ठीक है, ठीक है' कहती हुई सेठानियाँ दौड़ी गई और अपने-अपने घर में से कोई दूध कोई चावल और कोई शक्कर लेकर धन्ना के घर आ गई। इस प्रकार खीर की सामग्री इकट्ठी हो गई।

आजकल अधिकांश दानी, दानी बनने के साथ मानी भी बनते हैं। मान, दान की पवित्रता को भङ्ग कर देता है। किसी की इज्जत भी रह जाय और दुःख भी दूर हो जाय, इस प्रकार देने वाले विरले ही मिलेंगे। वास्तव में सच्चा दाता वह है जो लेने वाले की आबरू नहीं लेता और फिर भी उसे दे देता है।

सेठानियों ने खीर की सामग्री धन्ना के सामने रख दी। धन्ना उनसे कहने लगी—आपने मेरे सिर पर बड़ा बोझा लाद दिया है।

मित्रो! बारहवाँ अतिथिसंविभाग व्रत किस प्रकार पालन

किया जाता है, यह देखो। बाजार के दौने चाटने वाले लोग बारहवें व्रत का पालन नहीं कर सकते। कई लोग समझते हैं कि बाजार से सीधा लेकर खाने में आरंभ नहीं होता, मगर उन्हें पता नहीं है कि बाजारू चीजें किस प्रकार भ्रष्ट करने वाली होती है! स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वे त्याज्य हैं और धर्म की दृष्टि से भी। उन धर्मभ्रष्ट करने वाली वस्तुओं को खाकर कोई अपनी क्रिया कैसे शुद्ध रख सकता है!

खीर की आई हुई सामग्री को स्वीकार करने के सिवाय धन्ना के पास और कोई मार्ग नहीं था। उसने कृतज्ञता के साथ वह सामग्री स्वीकार कर ली। फिर उसने खीर बनाई। संगम के लिए परोस कर उसे देती हुई कहने लगी—आज तेरे कारण मैंने अपने जीवन की एक कठोर मर्यादा का त्याग किया है। आज सेठानियों के उपकार का बोझ मेरे सिर पर आ गया। ले, अब तू खा। मुझे एक अत्यन्त आवश्यक काम से बाहर जाना! जब तक तू खाता है, मैं काम निपटा कर जल्दी आती हूँ।

संगम खाने के लिए बैठा। खीर का स्वभाव कुछ देर तक गर्म रहने का होता है। संगम खीर के ठंडा होने की प्रतीक्षा कर रहा था और साथ ही अपनी माता के धीरज की तथा सेठानियों की सहृदयता की मन ही मन बड़ाई कर रहा था। खीर की थाली उसके सामने रक्खी थी।

—

४

अपूर्व दान ।

———:::():::———

संगम के लिए खीर अपूर्व वस्तु है। उसे खीर के लिए रोना पड़ा है, माँ को रुलाना पड़ा है। माता ने अपनी टेक रख कर सेठानियों की कृपा से प्राप्त हुई सामग्री द्वारा खीर तैयार की है।

धन्ना और संगम ने खीर के लिए आपा नहीं गँवाया है। सम्मानपूर्वक सामग्री घर पर आई है, तब उसने स्वीकार की है। टेक पर अड़े रहने वाले की टेक पूरी होती ही है, लेकिन संतोष रखना आवश्यक है। धर्म और परमात्मा पर जिसे विश्वास हो वही अपनी टेक पर टिका रह सकता है।

संगम को क्या पता है कि आज उसका भाग्य खुलने वाला है। वह सोच रहा है कि कब खीर ठंडी हो और कब इसे पेट में सँभाल कर रख लूँ। वह लालचभरी निगाह से खीर की तरफ देख रहा है और देख-देखकर प्रसन्न हो रहा

है ! उसे आज अपूर्व वस्तु जो मिली है।

संगम ने खीर की ओर से दृष्टि हटा कर सामने की ओर देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने देखा—एक महापुरुष मुनिराज उसके घर की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए चले आ रहे हैं। मुनिराज की दृष्टि नीचे की ओर है—ईर्यासमिति का पालन करते हुए वह चल रहे हैं। काया उनकी क्षीण है पर तप के अद्भुत तेज से उनके चेहरे पर एक अनोखी आभा विराजमान है। विस्तीर्ण ललाट है। सौम्य वदन है। उनके नेत्रों में संयम की शांति है। धीमी चाल से मुनिराज संगम की ओर ही बढ़ चले आ रहे हैं।

मन मरा माया मरी, मर मर जाय शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर।

तृष्णा को जीत लेना आसान काम नहीं है, बहुत कठिन है। परन्तु इन मुनि ने तृष्णा को जीत लिया है। इनकी पहली शूरवीरता तो यही है। राजगृह जैसे विशाल नगर और प्रतापशाली मगध की राजधानी में धनवानों की कमी नहीं है। और ऐसे मुनिराज का अपने प्रांगण में पदार्पण देख कर कौन कृतार्थ न हो जाता ? ऐसे-ऐसे सम्पन्न और भावनाशील धनवानों के घर को छोड़ कर इस संगम के घर आना, जिसके यहाँ एक बार खीर बनाने की भी सामग्री नहीं है, यह मुनि की दूसरी शूरवीरता है।

संगम वन में रह कर जो भावना भाता था, वह भावना

कितनी शक्तिशाली होगी, उसमें कितना तीव्र आकर्षण होगा, इस बात पर ज़रा विचार कीजिए। संगम जङ्गल में बछड़े चराता था। उसने नगर का झूट-कपट नहीं सीखा और न पराये घर के अन्न पर अपना गुज़र किया है। वास्तव में धर्म स्वतन्त्र के लिए ही है, परतन्त्र के लिए नहीं। जो जितनी मात्रा में स्वतन्त्र है वह उतनी ही मात्रा में धर्म का पालन कर सकता है। जो शक्ति स्वतन्त्र होने में है, परतंत्र होने में नहीं। संगम की पवित्र भावना और स्वतन्त्रता की शक्ति ही मुनि को अपनी ओर खींच कर लिये आ रही है।

संगम बैठा-बैठा खीर ठंडी कर रहा था। उसे दान का अपूर्व अवसर अनायास ही मिल गया। उसने मुनि को आते देखा। देख कर वह खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—महाराज, भले पधारे। आपने अनुग्रह करके, मेरे यहाँ पधार कर मुझे मनवांछित फल दिया! आज का दिन धन्य है कि चलता-फिरता कल्पवृक्ष मेरे घर आया! आज मेरी भाग्यदशा अनुकूल हुई है, जो मेरे घर पारस प्रकट हुआ।

मुनि को देख कर ,संगम का हृदय प्रसन्नता से पूर्ण हो गया। उसका धर्मस्नेह जाग उठा। मुनि पर उसकी प्रीति उमड़ पड़ी।

संगम नगर के गन्दे वातावरण में नहीं पला है। उसने वन के स्वच्छ वातावरण में सांसें ली है। पराये घर से आई

हुई सामग्री से खीर बनी है, आज पहली बार ही उसे खीर मिल रही है; फिर भी मुनि के आने पर उसे हर्ष हो रहा है। यह औरों के लिए आश्चर्य की बात हो सकती है, क्योंकि साधारण तौर पर यह समझा जाता है कि दरिद्र के लिए दान देना दुष्कर है। लेकिन गरीब की आत्मा में शुद्ध भावना की जो समृद्धि होती है वह अमीर की आत्मा में शायद ही कहीं पाई जाती है। प्रायः अमीर की आत्मा दरिद्र होती है और दरिद्र की आत्मा अमीर होती है।

जब कोई सुपात्र घर पर आता है तो भक्त या दातार की भावना यह नहीं होती कि यह रोटियों के लिए मेरे यहाँ आये हैं। वह समझता है कि ये मेरा भाग्य जगाने के लिए आये हैं। यही कारण है कि सुपात्र को पाकर वह उसी प्रकार हर्षित होता है जैसे किसी अद्भुत वस्तु को देख कर बालक।

प्रश्न हो सकता है कि जङ्गल में अपना अधिक समय बिताने वाले और पशुओं की संगति में रहने वाले संगम में यह सभ्यता कहाँ से आई? इस प्रश्न का उत्तर एक कथा द्वारा समझाना चाहिए।

अहमदाबाद में एक बादशाह राज्य करता था। उसके सेनापति ने बहुत-सी लड़ाइयाँ जीती थीं। अतएव बादशाह उस पर बहुत प्रसन्न रहता था।

एक बार यही सेनापति लड़ाई के लिए कच्छ की ओर

गया। उसने मोरवी के आसपास कहीं से आगे कूच किया और रेतीला प्रदेश पार किया। वह किसी हरे-भरे स्थान पर पहुँचा। सेनापति का घोड़ा बाँध दिया गया। सेनापति अपने खेमे में सो गया। सेना का पड़ाव वहीं था। सैनिकों ने जब देखा कि सेनापति सो गया है तो उन्होंने अपने घोड़े पास के ज्वार के खेत में छोड़ दिये। भूखे घोड़े ज्वार के खेत में पिल पड़े। अचानक सेनापति की नींद खुल गई। उसने घोड़ों को खेत में चरते देखकर सैनिकों से कहा—क्यों इस प्रकार गरीबों को सताते हो? क्या तुम नहीं जानते कि एक ही रात में बेचारे गरीबों की साल भर की रोटी बर्बाद हो जाती है? तुम्हें उस परवरदिगार का जरा भी खौफ़ नहीं है?

सैनिकों ने कहा—हुजूर! हम तो परवरदिगार को समझते हैं पर ये तीन दिन के भूखे घोड़े नहीं समझते।

सेनापति—झूठ बोलते हो। पहले तुम्हारे दिल में बेईमानी आई होगी, तभी घोड़ों के दिल में आई है। अगर ऐसा नहीं है तो देखो मेरा घोड़ा क्यों नहीं जाता है?

यह कहकर सेनापति ने अपना घोड़ा खोल दिया। सैनिकों ने उस घोड़े को हरा खेत दिखलाकर बहुत ललचाया, परन्तु घोड़ा वहाँ से नहीं हटा। यह देखकर सैनिक समझ गये कि वास्तव में हमारा ही ईमान बिगड़ा है। उसके बाद ही घोड़ों का ईमान बिगड़ा।

मतलब यह है कि जब तक असाधारण बने हुए व्यक्ति की नीयत अच्छी है तब तक उसके आश्रित रहने वालों की नीयत भी अच्छी रहती है। जिसकी माता धन्ना ऐसी है कि पराये खाने-पीने को हेय समझती है, उसका पुत्र वन में रहता हुआ भी अगर ऐसी ऊँची सभ्यता सीख सका और उत्कृष्ट भावना वाला बन सका तो आश्चर्य की बात ही क्या है!

मुनिराज को अपने घर की ओर आते देख कर संगम खड़ा हो गया। वह सोचने लगा—किसी दूसरे दिन मुनि मेरे यहाँ पधारते तो ऐसी सामग्री कहाँ थी जो इनको बेहराता! आज कौन जाने किस प्रकार के अदृष्ट की प्रेरणा से मुझे खीर खाने की बलवती इच्छा हुई और सेठानियों ने खीर की सामग्री लाकर दे दी! मेरा बड़ा भाग्य है कि मैंने अभी तक खीर नहीं खाई है। ऐसी सामग्री का होना और मुनि का आना एक अपूर्व संयोग है। वास्तव में मेरा भाग्य बहुत सराहनीय है।

संगम को दिल में क्षण भर के लिए भी यह विचार उत्पन्न नहीं हुआ कि यह अपूर्व खीर मुनि को ही दूँगा तो मैं क्या खाऊँगा? उसने यह भी नहीं सोचा कि कहीं माता खीर दे देने से नाराज तो नहीं होगी?

इसी समय मुनि उसके द्वार पर पधार गये। संगम का हृदय हर्ष से उछलने लगा। भक्तिभाव से भरा हुआ संगम

थाल हाथ में लिये मुनि के समीप आया और विनीतभाव से कहने लगा—महाराज, लीजिए। कृपा कीजिए।

संगम का उत्साह और भक्तिभाव देख कर मुनि को संतोष हुआ। वह सोचने लगे—मै सादे भोजन के लिए यहाँ आया था। सोचा था कि गरीब के घर सादा आहार मिल जाएगा। लेकिन यहाँ भी वही खीर है! पर इस गरीब बालक की भावना इतनी ऊँची है कि शायद ही किसी सेठ की भी ऐसी हो! मै अगर खीर नहीं लेता हूँ तो बालक को घोर निराशा होगी और बेचारा दान के फल से भी प्रायः वंचित रह जाएगा। इसे इस दान का जो फल मिलने वाला है उसमें अन्तराय पड़ जाएगा।

मुनि को किसी प्रकार का लालच नहीं था। लालच होता तो साहूकारों के घर को छोड़ कर वे इस गरीब के घर आते ही क्यों? लेकिन दान के फल में अन्तराय न पड़े, इस उद्देश्य से मुनि ने आहार लेना अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपना पात्र बालक के सामने रख दिया।

खीर नाम की चीज़ बालक संगम ने, अपनी जिन्दगी में, पहले कभी नहीं चखी थी। आज वही खीर उसे प्राप्त हुई है, बड़ी कठिनाई से: माँ-बेटे के रोने के बाद और सेठानियों की दयालुता से! फिर भी संगम को खीर खाने का लोभ नहीं है। वह यही सोचता है—आज सौभाग्य से इतने अच्छे पात्र मिले हैं तो देने से चूकना नहीं चाहिए।

मुनि का स्वभाव और आचार होता है कि वे दातार से कहते हैं कि थोड़ा दे।

देता भावे भावना, लेता करे सन्तोष।
कहे वीर सुण गोयमा ! दोनों जासी मोक्ष।

मुनि 'थोड़ी दो, थोड़ी दो' कहते रहे, लेकिन संगम ने थाली की सारी खीर उनके पात्र में उँडेल दी। संगम के हाथ में खाली थाली ही शेष रह गई। उस समय संगम का हृदय हर्ष से विभोर हो गया। उसके चेहरे पर आनन्द का स्मित खेल रहा था। मानो उसे अचानक तीन लोक की सम्पदा प्राप्त हो गई है !

खीर लेकर मुनि चलने लगे। संगम गुणगान करता हुआ सात-आठ कदम उन्हें पहुँचाने गया। अंत में मुनि को भावभरी वन्दना करके वह लौट आया और मुनि जिस ओर से आये थे, उसी ओर मन्द गति से रवाना हुए।

संगम ने किस अपूर्व आह्लाद के साथ मुनि को आहार दिया ! किस प्रसन्नता के साथ उन्हें पहुँचाने गया ! लौटने के बाद भी उसके हृदय में अपूर्व प्रीति है ! फिर भी खेद है कि कई लोग उसे मिथ्यात्वी कहने से नहीं चूकते !

संगम लौट कर भोजन करने की जगह बैठ गया और थाली में लगी हुई खीर चाटने लगा।

इतने में धन्ना अपना काम समाप्त करके लौट आई। संगम को थाली चाटते देख कर उसने सोचा कि इसने

खीर खा ली है। माता के स्वभाव के अनुसार धन्ना ने और खीर लेने के लिए कहा। संगम तो भूखा बैठा ही था। उसने खीर ले ली और खाकर तृप्त हुआ।

यों तो संगम छोटा बालक ही था, फिर भी उसमें बड़ी गंभीरता थी। अपनी थाली की तमाम खीर मुनि को दान करके उसने अपनी माता से भी इस घटना का जिक्र न किया! गुलिश्तां में कहा है—अगर तू दाहिने हाथ दे तो बाएँ हाथ को भी मालूम न होने दे। तात्पर्य यह है कि दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं वे दान के असली फल से वंचित हो जाते हैं। अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो।

संगम की यह गम्भीरता और उत्कृष्टता प्रत्येक दाता के लिए अनुकरणीय है। उसके यही गुण मुनि को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हो सके थे। जिनमें यह गुण आ जाएँगे उन्हें कभी न कभी महापुरुष की भेंट हो जाएगी और उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

संगम के पड़ौस में जो सेठानियाँ रहती थीं वे सभी सम्पन्न और समझदार थीं। भक्ति वाली थीं। उस समय के प्रायः सभी लोग अतिथि-सत्कार को बहुत अच्छा समझते थे और जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो बुरा नहीं मानते थे, वरन् अपना सौभाग्य समझते थे। उस समय

अतिथि किसी के द्वार से खाली हाथ नहीं लौटता था। संगम की पड़ोस वाली सेठानियाँ भी मुनि को आहार दान देना चाहती थीं।

संगम के घर पर मुनि का आना और संगम का उन्हें खीर दान देना सेठानियों ने देखा था। संगम को यह सुयोग मिला और हमें न मिला, इस विचार से उन्हें ईर्षा न हुई। जिन सेठानियों ने धन्ना को खीर की सामग्री दी थी वे सब एकत्र होकर आपस में कहने लगीं—

पहली सेठानी—'आज धन्ना का भाग्य धन्य हुआ कि इसके घर मुनि आये! और मुनि भी मासखमण के पारणे वाले! ऐसे मुनि के चरण मिलना कठिन है। वे मुनि दया के भंडार थे जो बड़ी-बड़ी हवेलियो और बड़े-बड़े दातारों को छोड़ कर इस गरीबिनी के घर आये!'

दूसरी सेठानी—'धन्ना भाग्यशालिनी है, मगर मैं तो उसके बालक को धन्य कहती हूँ। वह जङ्गल में बछड़े चराने जाता है। वहाँ की पवित्र वायु से उसकी भावनाएँ भी न जाने कितनी पवित्र हो गई हैं! वह मुनि को आते देख उसी प्रकार उनके सामने लपका, जैसे अपने बालक किसी अच्छी वस्तु को देख कर उसके लिए दौड़ते हैं! उसने भक्ति के साथ मुनि की वन्दना की, नमस्कार किया और अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक खीर बहराई।

तीसरी सेठानी—'संगम की भावना वास्तव में बहुत

ऊँची है। मै कई वार वड़ी मनुहार करके उसे कोई चीज़ देना चाहती हूँ, लेकिन वह कभी नहीं लेता। वह हाथ फैलाने में ही शरमाता है। उससे कारण पूछती हूँ तो कहने लगता है—मेरी माँ की यही शिक्षा है कि कभी किसी के आगे हाथ न फैलाना! एक वार मैने उससे कहा—तू ले ले और यहाँ खा ले। माँ से कहने कौन जाता है! उसे पता ही नहीं चलने पाएगा। तब उसने कहा—मैं अपनी माँ से कपट नहीं करता। मै माँ से कोई वात नहीं छिपाता। सभी वातें माँ से कह देता हूँ।'

वालक को किस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए, यह वात संगम को देखकर विदित हो जाती है। आज के वालकों को अनेक विषयों का गम्भीर और वारीक ज्ञान भले ही दिया जाता हो मगर जीवन को उन्नत वनाने वाली वातें कौन सिखाता है? जो वातें मामूली और छोटी समझी जाती है, उनका जीवन-विकास में वहुत महत्व होता है। उनकी ओर उपेक्षाभाव रखने से शिक्षा का महत्व घट जाता है या मारा जाता है। वास्तव में छोटी-छोटी वातों पर भी ध्यान दिये विना जीवन ऊँचा नहीं होता।

मगनलाल नामक एक सज्जन ने लिखा है—

मेरा घर ऊँचा अमीराना है। मेरे घर के समीप ही एक पुराना टूटा-फूटा मकान है। यह मकान वहुत अंश में तो गिर गया है और कुछ अंश में वना हुआ है। परन्तु है वह

भी टूटा फूटा। उस टूटे मकान में एक विधवा अपने छह बालकों सहित आकर रही। उसके चार लड़के और दो लड़कियाँ थीं। इन बालकों में से दस वर्ष से अधिक की उम्र किसी की न थी।

उस विधवा से मैंने उसका वृत्तान्त पूछा तो वह कहने लगी—'मेरे पति १०) रु मासिक के नौकर थे। इन दस रुपयों में मेरा घर का गुजर न होता था, इसलिए मैं भी उद्योग द्वारा कुछ कमा कर इन्हीं रुपयों में मिलाती, तब काम चलता। कुछ दिन हुए, मेरे पति मर गये। वे दस रुपये भी अब नहीं मिलते। अब अपना और इन बालकों के भरणपोषण का भार मुझी पर ही पड़ा। पहले १) रु. मासिक किराये के मकान में रहती थी, परन्तु वह किराया कहाँ से दूँ ? इसलिए अब ≡) मासिक किराये पर इस मकान में रहने आई हूँ।'

इस विधवा के विषय में मगनलाल लिखते हैं कि वह बड़ी उद्योगिनी थी। उसने इस टूटे-फूटे मकान को भी साफ़-सुथरा कर दिया। वह मेरे तथा पड़ौस के और घरों में काम करने आया करती और उस मजूरी से ही अपना निर्वाह करती। वह कभी विश्राम भी लेती थी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। वह प्रामाणिक ऐसी थी कि मेरे यहाँ से जो पीसना ले जाती, उसमें एक चुटकी आटा भी कम न होता। इसके सिवाय मेरी स्त्री उससे जिस काम को जैसा

करने के लिए कहती, वह वैसा ही कर देती थी। बोलने में वह बड़ी मीठी थी। बातें भी बड़ी अच्छी तरह किया करती थी।

एक दिन मेरी स्त्री ने उससे कुछ देर तक बैठ कर बातें करने को कहा। उस विधवा ने—जिसका नाम गङ्गा गोदावरी था—उत्तर दिया—यदि आपका कोई काम हो, तब तो मै सहर्ष बैठने को तैयार हूँ। लेकिन बिना काम बैठ कर बातें करने का मुझे अवकाश नहीं है। कृपा करके अब आप बिना काम बैठने के लिए मुझे न कहा कीजिए।

गङ्गा गोदावरी के इस उत्तर से व उसके न बैठने से मेरी स्त्री का मुँह चढ़ गया। अर्थात् वह क्रुद्ध हो गई। मैंने अपनी स्त्री के मुँह चढ़े होने का कारण पूछा, तब उसने गङ्गा गोदावरी का घमंड बतलाते हुए उसके न बैठने का हाल मुझसे कहा। मैंने अपनी स्त्री को समझाया कि उसके सिर छह बालकों के पालन-पोषण का भार है। यदि वह इसी प्रकार घर-घर बिना काम बैठती फिरे तो उसके बालक कैसे पलें?

मेरे समझाने पर मेरी स्त्री का क्रोध शांत हुआ और वह गङ्गा गोदावरी पर कृपा रखने लगी।

गङ्गा गोदावरी को हम या दूसरे जो मजूरी देते, वह उतनी ही ले लेती। इस विषय में उसने कभी झगड़ा नहीं किया। वह किसी के सामने न देख कर अपना ध्यान काम में ही

रखती। घर का सब काम वह हाथ से करती। बच्चों के कपड़े हाथ से धोकर साफ़ कर देती। उसके बालक सदा साफ़ कपड़े पहिने रहते। लड़कों और लड़कियों से भी वह कुछ न कुछ काम लेती।

एक दिन लगभग १० बजे रात को यकायक मेरी स्त्री का पेट दुखने लगा। मेरी स्त्री गर्भवती थी, प्रसव का समय अभी दूर था, इससे मैं घबराया। मैं चिन्तित हुआ कि दाई का घर दूर है। अब इस समय मैं किसे बुलाऊँ? अमीर घर के पड़ौसी इस समय क्यों आने लगे थे? इतने में मुझे गङ्गा गोदावरी की याद आई। मैं दौड़ा हुआ उसके घर गया। उसे मैंने बाहर से ही आवाज़ दी। गङ्गा गोदावरी सोई न थी। इसलिए उसने मुझे घर में चले आने को कहा। मैंने घर में जाकर देखा कि घर में चिराग टिमटिमा रहा है और उसी के प्रकाश में पुस्तक लिये, गङ्गा गोदावरी अपने बालकों को शिक्षा दे रही है। उसका घर मैंने बड़ा स्वच्छ देखा।

मैंने इस समय आने का कारण गंगा गोदावरी को कह सुनाया। गंगागोदावरी उसी समय अपने बालकों को सुला कर मेरे घर आई। उसने आकर तेल आदि गर्म करके मेरी स्त्री के सेंक की, जिससे वह उसी समय ठीक हो गई। मेरी स्त्री के अच्छी होते ही गंगागोदावरी अपने घर चल दी। वह मेरे घर में सोई किन्तु अपने ही घर जाकर सोई।

मैं उसके बालकों से प्रेम करने लगा और अपने बालकों

के साथ उनके भी पढ़ने का इन्तजाम कर दिया। उसके बालक मेरे बालकों के साथ पढते, परन्तु मेरे बालकों के पास कोई अच्छी चीज़ देख कर वे कभी न ललचाते। एक दिन मेरी स्त्री ने कुछ मिठाई बालकों को बाँटने के लिए दी। मै गंगागोदावरी के लड़कों को देने लगा, परन्तु उन्होंने न ली। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कि हमारी माँ ने कहा है कि पराये घर जाओ तो कोई चीज न लेना। मैने कहा—तुम्हारी माँ से कहने कौन जाता है? उत्तर मिला—हमारी माँ हम से दिन भर का काम पूछती है, तब हमीं सब बतलाते है। यह कहते-कहते वे सब लड़के चल दिये। मैने अपने हृदय में कहा कि मै इन्हें क्या कहूँ, देवपुत्र या मनुष्यपुत्र? गंगागोदावरी की बड़ी लड़की ने भी यही उत्तर दिया। छोटी लड़की, जो २-३ वर्ष की ही थी, मै उसे मिठाई देने लगा। वह मिठाई की तरफ देखे परन्तु हाथ न फैलावे। मैंने उससे पूछा—तू क्यों नहीं लेती है? तब उसने उत्तर दिया कि माँ लड़े! मैंने पूछा—क्या वह मारती है? उसने कहा—मारती तो कभी नहीं, परन्तु जब और जिससे नाराज़ होती है, तब उससे बोलती नहीं है। यह न बोलना हमें बहुत दुःखदायी मालूम होता है। यह कहते-कहते वे लड़कियाँ भी भाग गई।

उन बालकों का संतोष देख कर मेरा प्रेम उन पर बहुत बढ़ गया। धीरे-धीरे इस गंगागोदावरी ने अपने दुःख के

दिन बिता दिये। बड़ा लड़का चतुर निकला। उसे पहले ही पहल ३०) रु. की नौकरी लगी। परन्तु उसने नहीं की। थोड़े दिन में वह १२५) रु मासिक पर नौकर हो गया। उसने अपने दूसरे भाई को भी काम पर लगा लिया और शेष दो भाइयों को भी काम सिखाने लगा।

यह चिन्ता मिट ही पाई थी कि उन पर एक चिन्ता और आ खड़ी हुई। बड़ी बहिन ब्याहने लायक हो गई थी। पास पैसा न था, जो ब्याह करे। मैंने उस लड़की से अपने लड़के का विवाह करना विचारा। मेरे विचारों को सुन कर मेरी स्त्री इस बात का विरोध करने लगी और कहने लगी कि क्या दूसरे के घर का आटा पीसने वाली की लड़की लाओगे? मेरी स्त्री समझदार थी। मैंने उसे समझाया तो वह समझ गई और उसने विरोध करना छोड़ दिया। वह जान गई कि देखना रत्न चाहिए, न कि अँगूठी।

गंगागोदावरी को मेरी बात जँच गई। मैंने सादगी के साथ अपने लड़के का विवाह उसकी लड़की से कर लिया। वह जब ब्याह कर मेरे घर आई, तब थोड़े दिन तो उसे सासू तथा अड़ोसी-पड़ोसी की बातें सुननी पड़ीं, परन्तु थोड़े ही दिनों में वे बन्द हो गईं। ग्राम में इस विवाह से मेरी भी निन्दा होने लगी थी, परन्तु उन निन्दा करने वालों का मुख भी थोड़े ही दिनों में बंद हो गया। उसकी कार्य-दक्षता और पारस्परिक प्रेम से सब चकित हो गये। थोड़े

ही दिनों में उस बहू ने मेरे घर को स्वर्ग-सा बना दिया।

मैं जब गंगागोदावरी को, उसके दुःख की बात सुनकर उन्हें सहन करने के लिए धन्यवाद देता, तो वह मुझे धन्यवाद देकर कहती मुझ गरीबिनी की लड़की आपने लेकर मुझे दुःख मुक्त किया।

अब वह विधवा मेरी सगी बहिन बन गई है। यदि भारत में घर-घर ऐसी स्त्रियाँ निकलें, अपने दुःख के दिन इस तरह पार करें, बालकों को ऐसी शिक्षा दें और इतनी उद्योगिनी हों तो भारत का कल्याण होने में देर न लगे।

आज के लोग अपने बालकों को खाने-पहिनने का ढोंग तो खूब सिखाते है, परन्तु सादगी नहीं सिखाते।

मगनलाल की लिखी हुई बात ऐतिहासिक रूप लिये हुए है मै संगम की जो कथा कह रहा हूँ वह प्राचीन है। लेकिन दोनों की घटनाओं को मिलाओ तो मालूम हो कि धन्ना की शिक्षा कैसी अच्छी थी।

धन्ना की पड़ौसिने संगम की प्रशंसा करती हुई कहती हैं कि यह संगम बालक नहीं अपना शिक्षक है। इसे देखकर हमें समझना चाहिए कि हम भी अपने बालकों को ऐसा बनावे।

वास्तव में पुण्यात्मापन का लक्षण सादगी में है, लालच में नहीं। जिसकी रग रग में सादगी का वास होगा उसी के दिल मे दया का वास होगा। सादगी सीखकर दया का

पालन करते हुए पवित्र जीवन विताने में ही वास्तविक कल्याण रहा हुआ है।

बालक संगम को उसकी माता ने ऐसी सुशिक्षा दी थी कि वह संतोषी, सादा और गंभीर था। अगर कोई कभी उसे कुछ देने लगता वह कभी स्वीकार नही करता था।

. दुःख में दिन निकलते हुए सादे भोजन पर संतोष करना और पराये मीठे भोजन पर न ललचाना कोई साधारण वात नही है।

इधर बालक संगम खीर खा रहा है, धन्ना पास ही वैठी हुई है और उधर सेठानियाँ वालक की चर्चा कर रही हैं। धन्ना को नहीं मालूम कि मेरे घर क्या घटना घटी है?

संगम को खीर खाते देखकर धन्ना सोचने लगी–मेरा वालक रोज भूखा रहता जान पड़ता है। अगर इसे आज के समान प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन मिले तो यह आज के बराबर ही खाया करे। मगर रुचिकर भोजन न मिलने से यह नित्य भूखा रह जाता है और इसीसे दुवला दिखाई देता है। हाय अभागिनी धन्ना! तू अपने एकलौते बेटे को पेट भर भोजन देने मे भी समर्थ नहीं है!

५

देह-त्याग।

——:::():.:——

कई लोग कहते हैं—संगम को अपनी माता की नज़र लग गई थी। वास्तव में जिन लोगों को नज़र और भूत का वहम होता है उन्हें अपनी छाया में भी भूत नजर आता है। मेरी जिन्दगी में, मेरा बालकपन इसी वहम मे बीता। बाल्यावस्था के वह संस्कार बारीक-बारीक रूप में आज भी मुझमें विद्यमान है। बालकों मे इसी प्रकार के संस्कार हमारे यहाँ डाले जाते हैं।

एक बार मै जब अहमदनगर में था तब मुझे बुखार आने लगा। उस समय मेरी आध्यात्मिक वृत्ति आज से कुछ अच्छी थी। यकायक मेरे शरीर में व्याधि हो गई, इस कारण आध्यात्मिक क्रिया की साधना में कुछ कमी हो गई। अहमदनगर से मै घोड़नदी गया। ज्वर ने वहाँ भी पीछा न छोड़ा। वहाँ एक वृद्धा कहने लगी—महाराज व्याख्यान अच्छा देते हैं, इससे अहमदनगर की स्त्रियों की नज़र लग

गई है। मतलब यह है कि वहम के भूत बहुत चला करते हैं। ऐसे वहमी लोगों ने इस कथा में भी नजर लगने की बात घुसेड़ दी है।

मेस्मरेजिम में दृष्टि का साधन है। पॉवर डालने वाले की पॉवर (शक्ति) जिस पर असर कर जाती है, वह उससे जैसा चाहे वैसा काम करा सकता है। लेकिन अगर कोई दृढ़ता धारण कर ले और कहे कि तुम्हारी शक्ति मुझ पर नहीं चल सकती तो वास्तव में ही उस पर शक्ति असर नहीं करेगी।

अब विचार कीजिए कि अपने ऊपर मेस्मरेजिम की शक्ति का असर होने देना अच्छा है या न होने देना अच्छा है ?

'न होने देना !

आप यदि दृढ़ बन जावें कि हमारे सामने भय नहीं आ सकता, मैं निर्भय हूँ, कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, तो वास्तव में ही कोई भूत-पिशाच आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। खास कर श्रावक को तो अरिहन्त के वचन पर विश्वास करके ऐसे भयों को पास भी नहीं फटकने देना चाहिए।

राक्षस भूत पिशाच डाकिनी,
शाकिनि भय न आवे नेरो।
दृष्टि मुष्टि छल छिद्र न लागे,
जो प्रभु ! नाम भजे तेरो।

राक्षस, भूत, डाकिनी और शाकिनी अगर हैं भी तो क्या भगवान् का नाम सत्य नहीं है? भगवान् के नाम में कोई शक्ति है या नहीं? आप इस स्तुति को सच्ची समझ कर गाते हैं या झूठी समझ कर? अगर सच्ची समझ कर गाते हैं तो फिर भय क्यों खाते हैं? महावीर के पहले के भक्त साक्षात् यक्ष से भी नहीं डरे और आजकल के लोग यक्ष के नाम से ही डरते हैं!

संगम को नजर लग गई थी, इस कथन का आधार यही है कि उसे विशूचिका की बीमारी हो गई थी। मगर ऐसा कहने वालों ने आयुर्वेद का तनिक भी अध्ययन नहीं किया, जान पड़ता है। आयुर्वेद का थोड़ा-सा ज्ञान रखने वाला भी ऐसा नहीं कहेगा। संगम की विशूचिका बीमारी का कारण नजर लगना नहीं किन्तु और ही था। संगम हमेशा खाने वाला था और इस बार उसने खीर खाई थी। कहाँ हल्की राबड़ी और कहाँ बड़ी-बड़ी सेठानियों के घर से आये हुए सामान की—मेवा-मिष्टान्न पड़ी हुई—खीर! वेदनीय कर्म का उदय तो उसके हुआ ही। इस कारण वह खीर संगम को हजम न हो सकी। यह तो निर्विवाद बात है कि रूखा-सूखा खाने वाले को गरिष्ठ भोजन नहीं पचता है।

अब एक तर्क यह किया जा सकता है कि यदि वह दान अच्छा था तो और अवसरों की तरह उस अवसर पर सोनैयों की वर्षा क्यों न हुई? और मुनि के चरण मङ्गल-

कारी कैसे हुए, जब तक कि मुनि को दान देने के पश्चात् संगम को मारणांतिक व्याधि हो गई !

जो लोग माता पर नज़र लगाने का दोषारोपण करते हैं वे मुनि पर भी दोषारोपण कर सकते है कि मुनि के आने से ही संगम को विशूचिका की व्याधि हुई और परिणाम यह हुआ कि उसे प्राण त्यागने पड़े ! जो लोग माता के लिए नहीं चूकते थे मुनि के लिए क्यो चूकेंगे ?

दान का महत्व सुवर्ण-मोहरों की वर्षा में नहीं है। देवता तीन ज्ञान के धनी होते हैं। संगम के भाग्य का हाल उनसे छिपा नहीं रह सकता था। इसके अतिरिक्त देव किसी काम को किसी जगह करते हैं और किसी जगह नहीं भी करते। उदाहरणार्थ—भगवान महावीर के उपसर्ग कहीं देवों ने मिटाये हैं और कहीं नहीं भी मिटाये हैं। चन्दनबाला पर वेश्या ने हाथ डाला तब तो देवों ने सहायता की, परन्तु जब उसकी माँ जीभ खींच कर मरी थी तब उन्होंने सहायता नहीं की। इन सब बातों पर विचार करने से विवेकशील पुरुष इसी परिणाम पर पहुँचता है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जैसा अवसर देखा, देवों ने वैसा ही किया होगा। दोनो हाथ से ताली बजती है, एक हाथ से नहीं। देवों के और दाता पुरुष के उपादान-निमित्त अनुकूल रूप से मिलते हैं तो सुवर्ण-मोहरों की वर्षा होती है, अनुकुल कारणकलाप अगर न मिलें और मोहरों की वर्षा न हो तो इसी कारण से दान में

कमी नहीं हो जाती।

दान का फल संगम के लिए आगामी भव में परिवर्तित हो रहा है। इस गरीबी के भव में देवता अगर सुवर्ण-मोहरों की वर्षा संगम के घर कर देते तो वही मोहरें सुख के बदले दुःख का कारण बन जातीं। वह इस भव के संस्कारों में मोहरें नहीं सँभाल सकता था और न उनसे यथोचित काम ही ले सकता था। संगम को पूर्ण रूप से सुखी होना था और शरीर बदले बिना उसे पूरा आनन्द नहीं मिल सकता था। इस प्रकार सुवर्ण-मोहरों की वर्षा न होने के अनेक कारण हो सकते हैं।

धर्म का आचरण करते हुए तत्काल फल न पाने के कारण निराश होना उचित नहीं है। गीता में कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अर्थात्—तुम्हें अपना कर्त्तव्य बजाने का अधिकार है, फल माँगने का अधिकार नहीं है। फल की कामना सत्यके पाये को डिगाने वाली है।

लोग सवेरे दान करके शाम को दान फल प्राप्त करना चाहते है। मगर फल के लिए अधीर हो उठना उचित नहीं है। फल की कामना से प्रेरित होकर किया हुआ कार्य वास्तविक फल दायी नहीं होता। धर्म का तात्कलिक फल शान्ति, मैत्रीभावना, आत्मा की पवित्रता आदि है और वह तत्काल प्राप्त होता ही है। रहा परम्पराफल, सो वह यथा समय मिले

बिना नहीं रहता। फिर अधीरता की आवश्यकता ही क्या है?

सारांश यह है कि संगम ने सरस और गरिष्ठ भोजन पहले कभी किया नहीं था, इस कारण खीर को वह पचा नहीं सकता और उसे विशूचिका हो गई। इस दशा में भी वह मुनि का ही ध्यान करता रहा। उसने सोचा-आज ही मेरी मृत्यु का दिन है और आज ही मेरे यहाँ मुनिराज का पदार्पण हुआ! मृत्यु के समय मुझे परलोक यात्रा के लिए पाथेय मिल गया। इस प्रकार विचार कर संगम बहुत प्रसन्न हुआ।

संगम को सब प्रकार की ऋद्धि प्राप्त होती थी। ऋद्धि के लिए योग्यता की भी आवश्यकता होती है। बालक कितने ही बड़े श्रीमंत का हो, उसे बड़े घोड़े पर नहीं बिठलाया जाता है। इसी प्रकार देवों ने समझ लिया कि संगम को जो ऋद्धि मिलती है, उसके योग्य इस भव में वह नहीं है। देवता निष्काम वृत्ति वाले की सेवा करते है, सकाम वृत्ति वाले की नहीं। संगम यद्यपि निष्काम है फिर भी वह इस भव में सुवर्ण मोहरों से सुखी नहीं बन सकता।

बालक संगम के लिए धन्ना ने बहुत दौड़ धूप की पड़ोस वालों ने भी कुछ उठा न रक्खा। मगर अन्त में वह शरीर त्याग कर चल बसा।

६

पुनर्जन्म ।

——:::():::——

उसी राजगृह नगर में एक सेठ रहते थे। वह श्रीमन्त तो थे ही, मगर ऐसे श्रीमन्त थे कि अनेक लखपति उनकी छत्र-छाया में रहते थे। सेठ के लक्ष्मी का भण्डार अखूट था। उनकी सम्पदा का अन्दाज़ा लगाना भी कठिन था।

हाँ, वह सेठ वास्तव में लक्ष्मीपति थे। अक्षय भण्डार होने पर भी वह लक्ष्मी के दास नहीं, स्वामी थे। रात-दिन लक्ष्मी की बेगार करने वाले, उसकी पूजा करने वाले और जीवन की सुख समृद्धि को लक्ष्मी के चरणों में ही समर्पित कर देने वाले, लक्ष्मी के पीछे आत्मविस्मरण कर देने वाले धनाढ्य लक्ष्मी के स्वामी नहीं, दास होते हैं। जो अपने जीवन के वास्तविक कल्याण के लिए धन का उपयोग नहीं करते बल्कि लक्ष्मी के लिए जीवन समर्पित कर देते हैं, उन्हें लक्ष्मी का स्वामी नहीं कहा जा सकता। वे लक्ष्मी के दास

हैं। राजगृही के वह सेठ ऐसे नहीं थे। उन्होंने लक्ष्मी के लिए कभी आत्मा को नहीं बेचा। झूठ-कपट या चिन्ता-कृपणता कभी नहीं की।

गृहस्थ कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में तुकाराम कहते हैं—

आला उपकारा साठी आवे घर जावे कुंठी,
लटी के वचन नहि देइ उदासीन।
मिष्ठ वचन ओठी,
तुका मन भावे पोटी।

वे गृहस्थ वास्तव में धन्य हैं जिनके हृदय में दया का वास रहता है और दुःखी को देख कर अनुकम्पा उत्पन्न होती है। ऐसे मनुष्य समझते हैं कि मैं इस संसार में केवल उपकार करने के लिए ही आया हूँ, मेरा घर तो स्वर्ग में है। मुझे उस घर के लिए पुण्य का संचय करना चाहिए। वे गृहस्थ धन्य हैं जो अपने यहाँ आये हुए को निराश नहीं करते और फिर भी अभिमान से दूर रहते हैं। वे गृहस्थ धन्य हैं जो मधुरभाषी हों।

भक्त तुकाराम ने गृहस्थ के जो लक्षण बतलाये हैं, राजगृह के गोभद्र सेठ में वह सब लक्षण मौजूद थे।

गोभद्र सेठ की पत्नी का नाम भद्रा था। भद्रा भी अपने नाम के अनुसार बहुत भद्र स्वभाव वाली थी।

एक दिन न मालूम किस अप्रकट कारण से भद्रा के दिल

में उदासीनता छा गई। सेठानी कभी उदास नहीं होती थी। अतएव आज उसे उदास देख कर सेठ गोभद्र को चिन्ता हुई। सेठ ने सेठानी की उदासीनता मिटाने के लिए अनेक उपाय किये। उसे सुन्दर बाग-बगीचों में घुमाया, चित्त प्रसन्न करने वाले खेल-तमाशे दिखलाये, सखी-सहेलियों से कह कर और मनोविनोद की बातें करके उसकी उदासीनता दूर करनी चाही, फिर भी सेठानी की चिन्ता दूर न हुई। सेठानी को चिन्तित देख कर सेठजी को बहुत चिन्ता सताने लगी। वह मन ही मन सोचने लगे—सेठानी के चिन्तित और उदास रहने से मेरा आधा अंग ही बेकार हो गया है। आखिर इसकी चिन्ता का क्या कारण हो सकता है?

पत्नी की चिन्ता दूर करने के अनेक उपाय करके भी जब सेठ गोभद्र सफल न हुए तो उन्होंने सेठानी से कहा—तुम्हें क्या मानसिक पीड़ा है, जो इतनी उदास हो? क्या अपनी उदासी का कारण मुझे नहीं बतला सकतीं? संभव है, मैं उस कारण को जानने के अयोग्य होऊँ और इसीलिए मुझे न बतलाती होओ! अगर ऐसी बात हो तो जाने दो, मत कहो। अगर बतलाने में कोई खास बाधा न हो तो बतला दो।

सेठ की अंतिम बात सुन कर सेठानी धैर्य न रख सकी। उसने कहा—आपका और मेरा जीवन इतना संकलित है कि दोनों के बीच में कोई व्यवधान नहीं आ सकता। हम दोनों

दो नहीं, एक ही हैं। मेरे लिए आपसे बढ़कर और कौन है जिसे अपने मन की बात कह सकूँ और आपसे न कह सकूँ। मै अपनी चिन्ता की बात सिर्फ इसलिए नहीं कहती कि उससे आपकी भी चिन्ता बढ़ जायगी। जिस रोग की दवा आपके हाथ में नहीं है, उस रोग को सुना कर क्यों वृथा आपको चिन्तित करूँ ? मगर ऐसा करने से आप अधिक चिंतित होते हैं तो कहे देती हूँ। आपसे छिपाने योग्य मेरे पास क्या रक्खा ? पति-पत्नी में दुराव-छिपाव क्या !

सेठानी ने उदासभाव से कहा—'कल्पना कीजिए, किसी घर में सब प्रकार की सुख सामग्री की पूर्णता है। इन्द्रियों को लुभाने वाली और चित्त को प्रसन्न करने वाली चीजें मौजूद हों, लेकिन घर में घोर अन्धकार फैला हुआ हो। कोई वस्तु दिखाई न देती हो। ऐसी स्थिति मे उन सब वस्तुओं में उन सब वस्तुओं का होना न होना समान है। इसी प्रकार इस सम्पन्न कुल में कुलदीपक न होने के कारण, कुल का कोई भविष्यकालीन संरक्षक और आश्रय न होने से इस कुल में अँधेरा है। मै जिस ऋण से दबी हुई हूँ, वह ऋण चूकते न देखकर अपने प्रति धिक्कार की भावना उत्पन्न होती है और ऐसा लगता है कि मेरा जन्म निरर्थक है !

मै आपका दिया हुआ अन्न-वस्त्र खाती और पहनती हूँ और मौज में रहती हूँ। मगर स्त्री का काम केवल खा-पहन कर मौज करना ही नहीं है। आपके इस ऋण के बदले में मुझे

एक ऐसा कुलदीपक उत्पन्न करना चाहिए था, जो कुल को प्रकाशमान कर देता और जो आपकी कीर्त्ति का आधार होता, आपका नाम उज्ज्वल कर देता। लेकिन मैंने आपका ऋण ही अपने माथे चढ़ाया है। ऋण को उतारने का कोई उपाय नहीं किया। स्त्रियों को या तो अविवाहित रह कर परमात्मा की भावना में रहना चाहिए या फिर ऐसे कुल-दीपक को जन्म देना चाहिए जो कुल को यशस्वी और प्रशंसा का पात्र बना दे। केवल भोग करना स्त्री का कर्त्तव्य नहीं है।

मै अपने जीवन में अपने कर्त्तव्य का पालन करने में समर्थ नहीं हुई हूँ। यही विचार मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है। इसी कारण मुझमें उदासी आ गई है। मै अपने आपको वृथा और भारभूत समझने लगी हूँ। सोचती हूँ—आपके इस समृद्ध गृह में मैं न आती और मेरे बदले कोई दूसरी स्त्री आई होती तो वह घर को प्रकाशित कर देती। यह घर अन्धकारपूर्ण और सुनसान न रहता। मै आपके लिए पूरी तरह उपयोगी नहीं हो सकी। अतएव मै प्रार्थना करती हूँ कि आप दूसरा विवाह कर लीजिए, जिससे कुल की परम्परा चालू रहे, आप की कीर्त्ति स्थिर रहे और जीवन आनन्दमय हो सके।

सेठ गोभद्र अपनी पत्नी की आंतरिक व्यथा को समझ गये। उन्होंने उसकी निस्पृहता को भी समझ लिया और

सेठ—जब सिद्ध कर दोगी तो मान लूंगा, मगर तुम ऐसा सिद्ध कर ही नहीं सकती।

सेठानी अपना पक्ष सिद्ध करने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन सेठजी अपनी मित्र मंडली के साथ बैठक में बैठे थे। सेठानी ने इस अवसर से लाभ उठाना उचित समझा उसने अपने एक विश्वस्त नौकर को सेठ के पास भेजकर कहलाया—सेठानीजी स्नान कर चुकी हैं। चावी दे दीजिए तो वे कुछ नाश्ता करले। सेठानी ने नौकर को समझा दिया कि यह बात तू धीमे से मत कहना। ऐसे ऊँचे स्वर से कहना जिससे बैठक में बैठे सभी लोग सुनले।

नौकर गया और उसने वही कह दिया जो सेठानी ने उसे सिखाया था। नौकर की बात सुनकर सेठ के सभी मित्र आश्चर्य के साथ सोचने लगे—यह सेठ कितना कृपण है? और इसके मन में कितना मैल है कि रसोईघर की चावी भी स्त्री को नहीं सौंपता और अपने कब्जे में रखता है!

सेठ नौकर की बात सुनकर जल भुन गया लेकिन बोला कुछ नहीं। उसने नौकर की बात सुनी-अन सुनी कर दी। लेकिन नौकर मानने वाला था? उसने दोबारा चिल्लाकर वही बात दोहराई। सेठ के पास रसोईघर की चावी तो थी नहीं, परन्तु बात टालने के लिए उसने अपने पास का चावीयों का गुच्छा नौकर की ओर फेंक दिया और डरावनी आँखें

निकाल कर उसकी और देखा नौकर गुच्छा लेकर सेठानी के पास लौट आया !

उधर सेठानी ने एक अच्छे थाल मे मेवा भरा। उसी थाल मे एक कटोरी में रत्न आदि भर दिये। थाल को एक मैले कुचैले कपड़े से ढँक दिया। वह थाल नौकर को देकर सेठानी ने कहा—यह थाल ले जाकर सेठजी से कहना—सेठानीजी ने यह चने भेजे हैं। आप भी खा लीजिए और मित्रों को भी खिला दीजिए।

नौकर अदब के साथ मैले कपड़े, से सजा हुआ थाल बैठक में ले गया। सेठजी के सामने रख कर उसने वही कह दिया जो सेठानी ने कहलाया था।

मित्र लोग सेठ की कृपणता को धिक्कारने लगे उधर सेठ पहले ही जला-भुना बैठा था। वह नौकर को भला-बुरा कहने लगा, परन्तु नौकर चुपचाप लौट आया।

मित्रों में कुछ मसखरे भी थे। उनमें से एक ने कहा—नाश्ते का समय हो चुका है और सेठानीजी ने चने भी भेज दिये हैं वड़े घर के चने भी अच्छे ही होंगे। सेठजी, दीजिए न, चने चबावें।

सेठजी टालना चाहते थे। इतने में दूसरे ने कहा—भाई इसमें सेठजी से क्या पूछना है ! भूख हो तो ले लो। अपने लिए तो आये ही हैं ?

सेठजी बेचारे सिकुड़ते ही जाते थे। सोचते थे—अब तो

इज्जत धूल में मिली !

इतने ही में उनके मित्रों ने थाल का कपड़ा हटा दिया। कपड़ा हटते ही थाल में रक्खे मेवा और कटोरी में रक्खे रत्न आदि दिखाई दिये। थाल की यह सामग्री देखकर सेठजी की जान में जान आई। सेठजी ने सब को मेवा और जवाहिरात दिये।

मित्रों के चले जाने पर सेठजी भीतर गये और सेठानी से कहने लगा—आज यह क्या तमाशा किया था तुमने ?

सेठानी—कैसा तमाशा ?

सेठ—खाने-पीने की चीजें मैं कब ताले में रखता हूँ कि तुमने चाबी लेने नौकर को मेरे पास भेजा ?

सेठानी—यह तो उस दिन की बात का प्रमाण दिया है कि पुरुष की इज्ज़त स्त्री के हाथ में है। स्त्री चाहे तो पुरुष की आबरू बिगाड़ दे, चाहे तो बचा ले।

सेठ—यह तो मैं समझ गया, परन्तु तुम-सी स्त्री हो तो बिगड़ी बात बना भी सकती है। अगर कोई मूर्खा होगी तो बनी-बनाई बात भी बिगाड़ देगी।

सेठानी—मैं सब स्त्रियों के लिए नहीं कहती। मैं तो सिर्फ यही चाहती हूँ कि आप यह अभिमान छोड़ दें कि दुनिया में जो कुछ हैं, हम ही हैं। आपके इस अभिमान को मुझ-सी साधारण स्त्री भी खण्डित कर सकती है।

सेठानी की बात सेठजी को जँच गई।

तो गोभद्र सेठ अपनी सेठानी से कह रहे हैं—तुम मेरे ऋण से नहीं दबी हो किन्तु तुमने जो ऋण दिया है, उसी के प्रताप से मेरा यश और वैभव है। यह तुम्हारी ही शक्ति है। रही पुत्र न होने की बात, सो पुत्र के न होने में तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। फिर चिन्ता करने का क्या कारण है? मुझसे आज तक जो सत्कार हुए हैं, उन सब में तुम्हारा हाथ रहा है।

स्त्री की शक्ति साधारण नहीं होती। लोग 'सीता-राम' कहते हैं, राम-सीता नहीं कहते। पहले सीता का नाम फिर राम का नाम लिया जाता है। इसी प्रकार 'राधाकृष्ण' कहने में पहले राधा और फिर कृष्ण का नाम लिया जाता है। सीता और राधा स्त्रियाँ ही थीं। तारा जैसी रानी की बदौलत ही आज भी हरिश्चन्द्र का नाम घर-घर में प्रसिद्ध है। इन शक्तियों की सहायता से ही उन लोगों ने अलौकिक कार्य कर दिखलाए हैं। जैसे शरीर का आधा भाग बेकार हो जाने पर सारा ही शरीर बेकार हो जाता है, वैसे ही नारी की शक्ति के अभाव में नर की शक्ति काम नहीं करती।'

गोभद्र सेठ फिर कहते हैं—'राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र आदि नारीशक्ति की सहायता से ही धर्म और व्यवहार के ऐसे काम कर सके थे कि संसार उन्हें आज भी आदर के साथ स्मरण करता है। प्रिये! तुमने आज तक अपने लिए मुझसे कुछ भी नहीं कहा। अन्य साधारण स्त्रियों की भाँति कभी

धिकारी न देती जो आपकी कीर्त्ति को कायम रखता और आपका नाम प्रसिद्ध करता ? मगर मुझ में बड़ी कमी है। इसी कारण यह सब नहीं हो सका है।'

इतना कह कर सेठानी फिर चिन्ताग्रस्त हो गई। यह देख कर गोभद्र भी चिन्तित हुए। उन्होंने कहा—तुम्हें मेरे वचन पर श्रद्धा तो है न ?

सेठानी—आप मेरे सर्वस्व हैं। आपके वचन पर मैं अश्रद्धा कैसे कर सकती हूँ ?

सेठ—तुम्हें आज तक कभी चिंता नहीं हुई और आज हुई तो ऐसी कि अनेक उपाय करने पर भी नहीं मिटती। तुम्हारी चिन्ता दूर होने का और कोई उपाय तो है नहीं, अलबत्ता एक उपाय मुझे सूझता है। तुम पूरी तरह धर्म-कार्य में लग जाओ। ऐसा करने से शायद तुम्हारी चिन्ता मिट जाय। यह चिन्ता, जो आज अचानक ही तुम्हारे अन्तःकरण में आविर्भूत हुई है सो शायद मिटने के लिए। अतएव धर्म की आराधना में लग जाओ। मैं भी आज से परमात्मा की आराधना में लगता हूँ। दीन-दुखिया दिखाई दे तो उसका दुःख दूर करना, सहधर्मी के प्रति वत्सलता बढ़ाना और किसी पर द्वेष का भाव न आने देना चाहिए। धर्म की आराधना करने से आत्मशांति तो प्राप्त होगी ही और यदि पुत्र होना होगा तो वह भी हो जाएगा। धर्म का फल तो कहीं जाएगा नहीं। मुझे आशा होती है कि तुम्हारी चिन्ता शीघ्र ही दूर

हो जाएगी।

पति के इस आश्वासन से सेठानी भद्रा को कुछ संतोष हुआ। वह सोचने लगी—कभी मैं सचमुच ऐसी भाग्यवती होऊँगी कि इस घर को प्रकाशमान करने वाला लाल देख सकूँगी?

पति और पत्नी दोनों सच्चे अन्तःकरण से धर्म-कार्य में लग गये। धर्म-कार्य तो वे पहले भी करते ही थे, अब विशिष्ट रूप से धर्म की आराधना करने लगे। कब तक वे धर्माराधन में लगे रहे, इसका उल्लेख कथाकार ने कहीं नहीं किया है।

प्रत्येक मनुष्य अपने समान शील वाले को ही आकर्षित करता है। बालक से बालक, बूढ़े से बूढ़ा, श्रीमंत से श्रीमंत और ज्ञानी से ज्ञानी जिस प्रकार मिल जाते हैं, इसी प्रकार धर्मात्मा से धर्मात्मा मिल जाता है। इधर गोभद्र सेठ और उनकी पत्नी भी दातार थे और उधर संगम भी दातार था। बल्कि संगम ने जैसा उत्कृष्ट दान दिया है वैसा शायद यह श्रीमंत दम्पती भी न दे सके होंगे। यही कारण है कि भद्रा-सिंहनी के उदर रूपी कंदरा में संगम जैसा बालक पुत्र के रूप में आया। 'योग्य योग्येन योजयेत' अर्थात् जो जिसके योग्य हो, उसके साथ ही उसका सम्बन्ध होना चाहिए, यह उक्ति यहाँ चरितार्थ हुई।

सेठ और सेठानी सोये हुए थे। सेठानी को स्वप्न में एक फल-फूलों से समृद्धशाली क्षेत्र दिखाई दिया। स्वप्न देखते

ही सेठानी की निद्रा भंग हो गई। वह विस्तर से उठकर सेठ के पास पहुँची। सेठको उसने अपने स्वप्न का विवरण सुनाया। सेठ ने कहा—यह स्वप्न उत्तम है। अब दुष्काल रहने वाला नहीं है। इस स्वप्न से प्रगट होता है कि तुम्हारी चिरकालीन मनोकामना पूरी होगी। तुम पुत्र रत्न की माता बनोगी।

बालक संगम सीधा साधा और सरल हृदय का था। झूठ कपट उसके पास नहीं फटकता था। इन सब गुणों के तथा उत्तम दान के प्रताप से संगम गोभद्र सेठ के यहाँ, भद्रा सेठानी के उदर में आया।

साधारण लोगों की बुद्धि स्थूल और दृष्टि संकीर्ण होती हैं। वे मोटी बात को तो किसी प्रकार समझ भी लेते है पर उसमें जो भीतरी रहस्य होता है उसे नहीं समझ पाते। धर्म पर अश्रद्धा होने का भी यही कारण है। संगम का मर जाना तो दृष्टि मे आ जाता हैं, मगर यह बात दृष्टि में नही आती कि मृत्यु के पश्चात् उसकी क्या स्थिति हुई? मृत्यु होने के फलस्वरूप उसकी स्थिति में सुधार हुआ, विकास हुआ या नहीं हुआ. इन सब बातों की जानकारी न होने के कारण लोग अंधकार में रहते है और कभी-कभी धर्म पर अविश्वास कर बैठते हैं ऐसे ही अज्ञान पुरुषों को यह शंका हो सकती है कि मुनि को दान देने के बाद संगम को मृत्यु के मुख मे जाना पड़ा तो दान देना मंगलमय कैसे हुआ! लोगों ने

धर्म को भी एक प्रकार का व्यापार-सा बना रक्खा है। 'इस हाथ दे उस हाथ ले' की कहावत के अनुसार वे तत्काल ही धर्म का फल चाहते हैं। भविष्य में फल मिलने पर उन्हें भरोसा नही है। मगर उन्हें समझना चाहिए कि संगम ने अगर दान-धर्म का पालन न किया होता तो वह भद्रा सेठानी के उदर में कैसे पहुँच सका होता? भद्रा सेठानी के घर आनन्द-मंगल कैसे होता?

संगम की आत्मा ने सेठानी भद्रा के गर्भ में प्रवेश किया। सेठजी सेठानी के स्वप्न से समझ गये कि अब हमारी दरिद्रता दूर होने वाली है।

उन्होंने उत्साह और उदारता के साथ स्वप्नोत्सव मनाया। स्वप्नोत्सव के अवसर पर इतना दान किया कि याचक अयाचक बन गये और बहुतेरे दुखिया सुखी हो गये।

आज कल के अधिकांश नर-नारियों को गर्भ संबंधी ज्ञान नहीं होता परन्तु भगवतीसूत्र में इस विषय की चर्चा की गई है। वहाँ यह बतलाया गया है कि—हे गौतम! माता के आहार पर ही गर्भ के बालक का आहार निर्भर है। माता के उदर में रसहरणी नालिका होती है। उसके द्वारा माता के आहार से बना रस बालक को पहुँचता है और उसी से बालक के शरीर का निर्माण होता है।

बहुत सी गर्भवती स्त्रियाँ भाग्य के भरोसे रहती है और गर्भ के विषय की जानकारी नहीं करती। इस अज्ञान के

कारण कभी-कभी गर्भस्थ बालक और गर्भवती स्त्री दोनों को हानि उठानी पड़ती है। बालक को आँखों देखते काटना या मारना तो कोई सहन नहीं करता पर अज्ञान के कारण बालक की मौत हो जाती है और माता के प्राण संकट में पड़ जाते हैं यह सहन कर लिया जाता है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है—गर्भ का बालक मल-मूत्र का त्याग भी करता है? भगवान् ने उत्तर दिया है—गर्भ का बालक माता के भोजन में से रसभाग को ही ग्रहण करता है। उस सार रूप रसभाग को भी वह इतनी ही मात्रा में ग्रहण करता है कि उसके शरीर के निर्माण में ही सारा लग जाता है। गर्भस्थ बालक आहार के खलभाग को लेता ही नहीं है। अतएव उसे मल मूत्र नहीं आता।

भगवान् के कथन का सार यह है कि गर्भ के बालक का आहार माता के आहार पर ही निर्भर है। माता यदि अत्यधिक खट्टा मीठा या चरपरा खाएगी तो उससे बालक को हानि पहुँचे बिना नहीं रहेगी। जैसे कैदी का भोजन जेलर के जिम्मे होता है, जेलर के देने पर ही कैदी भोजन पा सकता है, अन्यथा नहीं, इसी प्रकार पेट रूपी कारागार में रहे हुए बालक रूपी कैदी के भोजन की जिम्मेवरी माता पर है। गर्भस्थ बालक की दया न करने वाले माँ बाप घोर निर्दय हैं, बालक घातक हैं। अनुकम्पा के द्वेषी कहते हैं कि श्रेणिक की रानी धारिणी ने अपने गर्भ की रक्षा की सो वह मोह अनुकम्पा

का पाप हुआ। लेकिन धारिणी के विषय में शास्त्र का पाठ है कि धारिणी रानी गर्भ की अनुकम्पा के लिए भय, चिन्ता और मोह नहीं करती है। क्योंकि क्रोध करने से बालक क्रोधी होता है, भय करने से बालक डरपोक बन जाता है और मोह करने से लोभी होता है। इसी लिए धारिणी ने इन सब दुर्गुणों का त्याग कर दिया था। आश्चर्य तो यह है कि अनुकम्पा के विरोधी इन दुर्गुणों के त्याग को भी दुर्गुण कहते हैं। मोह के त्याग को भी मोह—अनुकम्पा कहने वाले समझदार (!) लोगों को कौन समझा सकता है!

जो स्त्रियाँ गर्भवती होकर भी भोग का त्याग नहीं करती हैं वे अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मारती हैं। इस नीचता से बढ़कर और कोई नीचता नहीं हो सकती। नैतिक दृष्टि से ऐसा करना घोर पाप है और वैद्यक की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर है। पतिव्रता का अर्थ यह नहीं है कि वह पति की ऐसी आज्ञा का पालन करके गर्भस्थ बालक की रक्षा न करे। माता को ऐसे अवसर पर सिंहनी बनना चाहिए, शक्ति बनना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करके बालक की रक्षा करनी चाहिए।

भद्रा सेठानी भी भय, लोभ मोह एवं चिन्ता से दूर रहकर अपने गर्भ की रक्षा करने लगी।

गर्भवती स्त्री को भूखा रहने का धर्म नहीं बतलाया गया है। किसी शास्त्र में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि किसी गर्भ-

वती स्त्री ने अनशन तप किया था ! जब तक बालक का आहार माता के आहार पर निर्भर है तब तक माता को यह अधिकार नहीं कि वह उपवास करे। दया मूल गुण है और उपवास उत्तर गुण है। मूल गुण का घात करके उत्तर गुण की क्रिया करना ठीक नहीं।

भद्रा का गर्भ ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों उसके मनोरथ अच्छे अच्छे होते रहे। पेट में जब कोई धर्मी जीव आता है तो माता की भावना भी धर्ममयी हो जाती है।

आखिर एक दिन, शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में भद्रा की कूँख से पुत्ररत्न का जन्म हुआ। दासी दौड़ी हुई गोभद्र सेठ के पास पहुँची। उसने सेठजी को पुत्र होने की बधाई दी। उसने कहा—लोग जिस शुभ मुहूर्त की राह देख रहे थे, वह आ गया है। कुल का सूर्य उदित हो गया है।

यह हर्ष समाचार सुनकर गोभद्र सेठ को रोमांच हो आया। उन्होंने अपने हाथ से दासी का सिर धोया· उसे दासीपन से मुक्त किया और अपने पहनने के सब आभूषण उसे पुरस्कार मे दे दिये।

७

शालिभद्र की बाल्यावस्था

——:::():::——

बेचारी धन्ना सहायविहीन थी। कौन था उसका जिसे वह अपना कह सके? ले-दे के एक संगम ही उसका आधार था। उसी के सहारे धन्ना जी रही थी। धन्ना ने न जाने कितनी वार संगम को आधार मान कर भविष्य के सुनहरे सपने देखे थे। उसने कल्पना के कई-एक महल बाँध लिये थे। मगर यकायक एक तूफान आया और उसके कल्पना—महल धूल में मिल गये। उसके सुनहरे सपने विकराल वास्त-विकता का रूप धारण करके उसके भोलेपन पर हँसने लगे। मानो वास्तविकता कह रही थी-अरे क्षुद्र शक्ति वाले मानव कीट! तुझे भविष्य की वात सोचने का अधिकार ही क्या है? जल के बुलबुले की तरह अपने कभी भी समाप्त हो जाने वाले जीवन को लेकर तू मंसूबों के ढेर लगा लेता है! जानता नहीं तेरी शक्ति अदृष्ट के इशारों पर नाचती है?

संगम के वियोग से धन्ना को कैसी मार्मिक चोट लगी

होगी, यह तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। धन्ना का हृदय आहत हो गया। उसकी चेतना सोगई। स्फूर्ति जाती रही। धैर्य छूट गया। साहस बिखर गया। उत्साह विलीन हो गया।

किसी कवि ने संसार का स्वरूप चित्रित करते हुए कितना सुन्दर कहा है—

काहू घर पुत्र जायो, काहू के वियोग आयो,
काहू राग रंग काहू रोआ रोई परी है।

राजगृह में इसी प्रकार की घटना घट रही है। एक ओर धन्ना शोक मना रही है और दूसरी ओर गोभद्र सेठ के घर नौबत बज रही है।

धन्ना की पड़ोसिनें उसे समझाती हुई कहने लगी—गोभद्र सेठ के घर बालक का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है; तुम भी उस उत्साह में सम्मिलित हो जाओ।

धन्ना व्यथित-हृदय से कहने लगी—पुत्र-शोक की आग में मेरा कलेजा जला जा रहा है। मैं आनन्द कैसे मनाऊँ? बहिनो, तुम क्या मेरा उपहास कर रही हो? इतना निर्दय उपहास तो कोई किसी का न करता होगा!

पड़ोसिनों ने कहा—ना धन्ना, भला तुम्हारे साथ उपहास! और सो भी इस अवस्था में? उपहास करने का यह अवसर नहीं है। मगर हमने ठीक ही कहा है। धर्मात्मा के घर बेटा होने पर सभी को खुशी मनाना चाहिए। इसके

अतिरिक्त एक वात और है। जिस दिन संगम ने शरीर त्याग किया उसके ठीक नौ महीना और साढ़े सात दिन बीतने पर सेठ के घर वालक जन्मा है। वहुत संभव है कि संगम ने ही नया शरीर धारण करके जन्म लिया हो। अतएव उस वालक को तुम अपना ही वालक समझा करो। धर्मपुत्र तो होते हैं न ? तुम उसे अपना धर्मपुत्र समझ लो। इससे तुम्हें शांति मिलेगी। शोक मनाने से और आँसू वहाने से तो कोई लाभ होता नहीं। संसार मे संयोग-वियोग तो अवश्यम्भावी हैं। फिर शोक करने से क्या वह रुक जाएँगे ?

पड़ोसिनों की बात धन्ना के दिल मे जम गई। उस दिन से शालिभद्र को वह अपना बेटा ही समझने लगी। वह सोचने लगी—चलो मेरा संगम मेरे यहाँ कष्ट पाता था, अव सुख में पहुँच गया। मै उसे देख कर ही संतोष कर लिया करूँगी। वह तो मुझे नहीं पहचानेगा, पर मै किसी वहाने जाकर, विना वदले की भावना के, केवल अपने हृदय के आश्वासन के लिए उसकी सेवा कर आया करूँगी। मै उसकी धर्म-माता हूँ। मुझे अपनी सेवा के प्रतिफल की आशा ही नहीं रखनी चाहिए।

धन्ना गोभद्र सेठ के घर जा पहुँचती। वह शालिभद्र को देखकर प्रसन्न रहने लगी। शालिभद्र दिन-दिन वड़ा होने लगा और उसकी कान्ति चन्द्रिका की तरह वढ़ने लगी। उसकी सुन्दरता और कोमलता वैरी का भी मन हरण करने

वाली थी।

धीरे-धीरे शालिभद्र कुछ बड़ा हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि शालिभद्र ने कभी पैर नीचे नहीं रक्खा था और न चन्द्रमा एवं सूर्य की किरणे देखी थीं। लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। पहले के लोग ऐसे नहीं थे कि अपने बालक को गुड़िया बना रक्खे और कलाओं का शिक्षण न दें।

मकराने के पत्थर को आप कितना ही धोवे, वह मूर्ति नही बन सकता, पत्थर ही बना रहेगा। मूर्ति तो वह तभी बन सकता है जब टाँची सहन करेगा। क्या आप यह समझते हैं कि शालिभद्र को उसके पिता ने अनघड़ा पाषाण ही बनाए रक्खा था? मगर बिना गुण प्राप्त किये विवाह कर देने की प्रथा इस पाँचवे आरे में ही है। शालिभद्र के उस स्वर्णमय युग में ऐसी प्रथा नहीं थी।

शालिभद्र समस्त कलाओं में कुशल हो गया। माता ने उसे जो-जो आशीर्वाद दिये थे, वे सब जब सफल हो गये और शालिभद्र जब गृहस्थी का भार उठाने योग्य हो गया, तब गोभद्र सेठ ने उसके विवाह का विचार किया।

माँ-बाप के लिए पुत्र वैसा ही होता है, जैसे कृषक के लिए खेत का कपास। कृषक अगर खेत के कपास को खेत में ही रक्खे, उसे ओटावे और धुनकावे नहीं तो वह कपास किसी काम का न होगा। इसी प्रकार जो माता-पिता अपने बालक को अपने घर में घुसेड़ रखते हैं, उन्हें ऊँची क्रिया नहीं

सीखने देते, वे माता-पिता उस बालक के लिए वैसे ही हैं जैसे कपास को खेत मे रख छोड़ने वाला कृषक ! जब तक शरीर श्रम करने में समर्थ नहीं बनता तब तक जीवन निकम्मा ही रहता है ! शास्त्र के वर्णन से ज्ञात होता है कि पहले का कोई राजकुमार या श्रेष्ठिकुमार बहत्तर कला सीखे बिना नहीं रहता था।

जब शालिभद्र समस्त कलाओं में पारंगत हो गया तो उसका विवाह कर देने का विचार किया गया।

८

विवाह

——:::():::——

शालिभद्र कुमार नीति, व्यवहार और विज्ञान में कुशल हो गये। यह देखकर उनके माता—पिता ने उन्हें विवाह के योग्य समझा और किसी सुयोग्य कन्या के साथ विवाह कर देने का विचार किया।

समझदार और नासमझ के विवाह मे बड़ा अन्तर होता है। इसी प्रकार उचित उम्र में होने वाले और अनुचित उम्र में होने वाले विवाह में भी बहुत भेद है। जो बच्चे अभी व्यवहार को समझ भी नहीं पाये हैं, जिनके शरीर की कली अभी तक खिल भी नहीं पाई है, जिन्होंने अभी धर्म को नहीं समझ पाया है, उनके सिर पर विवाह का उत्तरदायित्व लाद देना कहाँ तक योग्य है? ऐसा करना समयोचित कार्य है या असामयिक, यह कहने की आवश्यकता नहीं। ऐसा करने वाले बहुत बार धोखा भी खाते है। फिर भी आश्चर्य है कि उन्हें देखकर दूसरों की और यहां तक

कि खुद धोखा खाने वालों की भी अक्ल ठिकाने नहीं आती।

शालिभद्र की सगाई बत्तीस जगह से आई। शालिभद्र के पिता विचार में पड़ गये कि किसे हाँ कहें किसे नहीं?

विवाह में पहले का संस्कार बड़ा काम करता है। जब पहले का संस्कार जोर मारता है तभी विवाह होता है।

शालिभद्र का कुल प्रतिष्ठित था, सम्पन्न था। उनके माता पिता धर्मशील और सुसंस्कारी थे। उनकी सज्जनता की नगर में ख्याति थी। तिस पर शालिभद्र के सौन्दर्य और सत्स्वभाव एवं बुद्धिमत्ता का क्या कहना है! सोने में सुगंध की कहावत वहाँ चरितार्थ होती थी। ऐसी स्थिति में प्रत्येक कन्या का पिता यही चाहता था कि मेरी कन्या के साथ शालिभद्र का विवाह होना चाहिए। संयोगवश सभी कन्याओं के पिता एक ही साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर आये थे। सेठ गोभद्र बड़े असमंजस में पड़े। वह सोचने लगे—किसी एक का प्रस्ताव स्वीकार करके शेष सब को मनाई करते हैं तो अच्छा नहीं मालूम होता! ये लोग आगे-पीछे आये होते तो इतनी परेशानी न होती।

इस प्रकार सोच-विचार करते करते सेठ गोभद्र को एक तरकीब सूझ गई। उन्होंने सब से कहा—आप सब सज्जनों की कन्याएँ सुशील, कुलीन और सुसंस्कारी हैं, लेकिन शालिभद्र के लिए सिर्फ एक कन्या की आवश्यकता है। आप बत्तीस सज्जन एक साथ यहाँ पधारे हैं। अब आप ही निर्णय कर दें कि

मैं किसकी कन्या के साथ शालिभद्र का विवाह करना स्वीकार करूँ और किसे नाहीं करूँ? आप सभी बुद्धिमान् हैं। मेरी कठिनाई समझ सकते हैं। कृपा करके मेरी कठिनाई दूर करने के लिए आप लोग ही मिलकर निर्णय कर लीजिए। मैं आपका निर्णय शिरोधार्य कर लूँगा।

गोभद्र का यह विनम्रता और शिष्टता से पूर्ण उत्तर सुन कर बत्तीसों सेठ विचार में पड़ गये। उन्होंने सोचा—सेठजी ने तो बाजी ही पलट दी। अब क्या करना चाहिए?

तब उनमें से एक ने कहा—बहुविवाह कहाँ ठीक नहीं होते हैं और कैसी स्थिति में बहुविवाह से कलह हुआ करता है, यह हम सब को मालूम है। सेठ गोभद्र के घर में आकर हम लोगों की कन्याओं में आपस में कलह होना असंभव है। इसके अतिरिक्त शालिभद्र जैसे अद्वितीय वर को कौन अपनी कन्या न ब्याहना स्वीकार करेगा? ऐसी स्थिति में हम सब अपनी-अपनी कन्याओं से परामर्श कर लें। अगर कोई कन्या सौतों के साथ न रहना चाहे तब तो कोई प्रश्न ही नहीं है। उसके लिए दूसरा वर तलाश किया जाय। अगर कन्याओं को आपत्ति न हो तो फिर चिन्ता करने की कोई बात ही नहीं है। शालिभद्र के साथ सभी का संबंध निश्चित कर दिया जाय।

यह विचार सभी को पसंद आया। सब ने अपनी-अपनी कन्याओं और परिवार के साथ एक स्थान पर मिलने और निर्णय कर लेने का फैसला कर लिया। वे सब वहाँ से

रवाना हुए और एक स्थान पर इकट्ठे हुए। सब अपनी-अपनी कन्याओं को ले आये और परिजनों को भी। वहाँ कन्याओं से प्रश्न किया गया-शालिभद्र कुमार का संबंध किस कन्या के साथ किया जाय, यह निर्णय करने का उत्तरदायित्व हमारे उपर आ पड़ा है और हमारा निर्णय तुम्हारी इच्छा पर आश्रित है। तुम सब को मिलकर यह विचार करना है कि तुम अलग—अलग वर पसंद करती हो या सभी एक शालिभद्र को पसंद करके साथ-साथ रहना चाहती हो?

शालिभद्र का नाम सुनते ही सब कन्याएँ प्रसन्न हो उठीं। उसका हृदय उसी की ओर आकर्षित हुआ। शालिभद्र में न मालूम क्या आकर्षण था कि सौतों की जोखिम स्वीकार करके भी कोई कन्या दूसरा वर पसंद नहीं कर सकती थी। कन्याएँ सब समझदार थीं। सभी ने ६४ कलाओं में कुशलता प्राप्त की थी। पूर्व संस्कार भी उन्हें प्रेरित कर रहे थे। अंतः सबने मिलकर निर्णय किया—चाहे एक घड़ी का सुख हो परन्तु सुख तो शालिभद्र के साथ रहने में ही है।

चन्दन की टुकड़ी भली गाड़ा भरा न काठ।
सज्जन तो एकी भला मूर्ख भला न साठ॥

शालिभद्र के साथ ब्रह्मचर्यपूर्वक अथवा मर्यादित रहना अच्छा है, पर दूसरा वर स्वीकार करना अच्छा नहीं। शालिभद्र के संसर्ग में रहने में और उनकी पत्नी कहलाने में जो सुख है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता।

इस प्रकार विचार कर कन्याओं ने अपना निर्णय प्रकट कर दिया कि हम सब बहिनों का भाग्य एक ही सूत्र में अगर दैव ने बाँध दिया है तो उस दैवी विधान का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। हम सब एक ही वृक्ष पर चढ़ने वाली बेलें हैं। हम में कोई ऐसी नहीं जिसमें ईर्षा हो, स्वार्थपरायणता हो और दूसरे के अधिकार को अपहरण करने की क्षुद्रता हो। अतः आपस के कलह की हमारे बीच कोई संभावना नहीं है। हम एक दूसरी की सहायता से अपना जीवन सम्पन्न, शान्त, आनन्दमय और उच्चकोटि का बनाने का प्रयत्न करेंगी। एक की कमी दूसरी पूरा करेगी। अगर हम कभी कलह करें तो आप सब हमें धिक्कार देना। अगर हम अलग--अलग रहती तो हमारे एक-एक ही माँ—बाप होते। शामिल रहने से हम में से प्रत्येक के बत्तीस माताएँ और बत्तीस पिता होंगे। जिसे पराया मान रक्खा है, उसके प्रति आत्मीयता की भावना स्थापित करने की साधना को ही विवाह कहना चाहिए। विवाह के द्वारा आत्मीयता का संकीर्ण दायरा क्रमशः बढ़ता जाता है। और बढ़ते—बढ़ते वह जितना अधिक बढ़ जाय, उतनी ही मात्रा में विवाह की सार्थकता है। आत्मीयता की भावना को बढ़ाने के लिए शास्त्र में अनेक प्रकार के विधिविधान पाये जाते हैं। विवाह भी उन्हीं में से एक है। यह एक कोमल विधान है, जिसका अनुकरण करने में कठिनाई अधिक नहीं होती। यह बात दूसरी है कि बहुतों को विवाह के उस उज्ज्वल

उद्देश्य का पता ही न हो और बहुत लोग विवाह करके भी इस उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर ध्यान ही न देते हों, फिर भी विवाहित जीवन की सफलता इसी में है कि पति और पत्नी आत्मीयता के क्षेत्र को विशाल से विशालतर बनाते जाएँ और अंत में प्राणी मात्र पर उसे फैला दें—विश्वमैत्री की प्राप्ति के योग्य बन जाएँ।

कन्याएं कहती हैं—हम सब एक साथ रहेंगी तो इस भावना की साधना करने में सफलता अधिक मिलेगी। अतः हमने यह निश्चय किया है कि हम एक ही साथ रहेंगी।

कन्याओं की यह सम्मति देख सब लोग प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा—चलो अच्छा ही है। अब हम लोग भी एक के बदले तेतीस हो जाएँगे।

बत्तीसों सेठ गोभद्र के पास पहुँचे। उन्होंने कहा—हम लोगों ने कन्याओं की सम्मति लेकर अंतिम निर्णय कर लिया है। अब आपको वही करना होगा जो हम लोग कहेंगे।

गोभद्र सेठ ने आगत मेहमानों का यथोचित सत्कार किया और योग्य आसन पर बैठा कर उनसे पूछा—आपने सलाह करली है? कहिए, किसकी कन्या का शालिभद्र के साथ विवाह होना निश्चित हुआ है?

उत्तर मिला—बत्तीसों कन्याएँ कुमार शालिभद्र के साथ जुड़ेंगी। यह तय हो चुका है।

गोभद्र—एक लड़के के साथ बत्तीस कन्याएँ! उस सुकुमार

बालक की ओर भी देखिए। इतना अधिक बोझा उस पर मत डालिए। यद्यपि बालक पराक्रमी है, फिर भी है तो एक ही। एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री का बोझ पर्याप्त होता है, तो वह बत्तीस का बोझ कैसे उठा सकेगा? आप जरा इस बात पर विचार कीजिए।

गोभद्र सेठ के कथन के उत्तर में एक ने कहा—हमारी कन्याएँ शालिभद्र पर बोझ डालने नहीं आ रही हैं। वे तो शालिभद्र का बोझ हल्का करने आएंगी। शालिभद्र पर जो बोझ है उसे उठाना एक स्त्री की शक्ति से परे है। इस कारण बत्तीसों मिलकर वह भार हल्का करेंगी। शालिभद्र पर उनका बोझा बिलकुल नहीं होगा। वे सब मिलजुल कर शालिभद्र की सेवा करेंगी और ऐसे रहेंगी मानो बत्तीस नहीं एक हैं। हमारी कन्याएँ अबोध बालिकाएँ नहीं हैं। उन्होंने समस्त कलाओं में निपुणता प्राप्त की है। अगर आप इस निर्णय में परिवर्तन करेंगे तो अवांछनीय अनर्थ हो सकता है। कन्याएँ कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को भलीभाँति समझती हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि शालिभद्र ही हमारे पति होंगे। अब हम और आप उनके निश्चय को किस प्रकार पलट सकते हैं?

आज का अशिक्षित स्त्रीसमाज पुरुषों को बोझ स्वरूप मालूम हो रहा है। और पुरुषों ने ही उन्हें ऐसा पशु बना रक्खा है कि वह बोझा जान पड़ता है। इसका मूल कारण यही है कि अधिकांश पुरुषों को और स्त्रियों को विवाह के

असली स्वरूप और उद्देश्य का पता नहीं है। यही कारण है कि विवाह जैसा निखालिश सामाजिक कार्य भी सरकार के अधीन हो रहा है। अगर समाज इस विषय में सावधान रहता और अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति पालन करता तो सरकार को इस विषय में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं थी।

एक पुरुष के साथ बत्तीस कन्याओं का एक साथ विवाह होना आज अचंभे की बात मालूम होती है। इस बात को आज का समाज नापसंद भी करता है। दोनों बातें ठीक हैं पर हमें परिस्थितियों के तथ्य पर भी दृष्टि डालना होगा। पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि बत्तीसों पिता अपनी पुत्रियों से सम्मति लेकर आये हैं और उन्हीं की इच्छा के अनुसार विवाह हो रहा है। आज नकली बत्तीसी लगाकर और खिजाब से सफेद बालों को काला दिखलाकर जवान होने का ढोंग रचने वालों के साथ जब कन्या का विवाह किया जाता है तब क्या उसकी सम्मति ली जाती है? बत्तीस कन्याओं के साथ जो विवाह हुआ है वह न्याय से अर्थात् कन्याओं की इच्छा से ही हुआ है। उन कन्याओं ने शालिभद्र के साथ ही विवाह करने का प्रण किया है और वे सब एक ही साथ रहना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त कन्याओं की अभिलाषा भोग की नहीं थी। उनका कहना था कि वे भोग का नाश करने के लिए पैदा हुई हैं। अगर कोई शालिभद्र के बहु-विवाह का उदाहरण उपस्थित करके अपने दो-तीन विवाहों

को न्यायानुमोदित सिद्ध करना चाहे तो उसे सोचना चाहिए कि वह वास्तव में एक विवाह के योग्य भी है या नहीं ?

दान कल्पद्रुम ग्रंथ में एक जगह लिखा है कि दान की प्रशंसा करने वाले, अनुमोदना करने वाले और उस दान के प्रति द्वेष एवं रोष न करने वाले उस दान के फल में भागीदार होते हैं। इस आधार पर यह कल्पना करना अनुचित नहीं कि संभव है यह बत्तीसों कन्याएँ उन्हीं में से हों जिन्होंने संगम के दान की प्रशंसा की थी। कुछ भी हो, यह तो निश्चित समझना चाहिए कि पूर्व-संस्कार के कारण ही वह कन्याएँ वधू बनकर शालिभद्र के घर आई थीं।

आखिर गोभद्र सेठ ने कहा—आपकी कन्याओं के निश्चय से मैं प्रभावित हुआ हूँ और नहीं चाहता कि किसी प्रकार की अवांछनीय परिस्थिति उत्पन्न हो, जिसका प्रभाव कन्याओं के जीवन पर गहरा पड़ता हो। इसलिए मैं आपका अनुरोध अस्वीकार नहीं कर सकता। फिर भी अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य का अनुरोध भी मैं टाल नहीं सकता। मुझे शालिभद्र की सम्मति जान लेना है। आखिर तो विवाह का प्रत्यक्ष संबंध उसी से है। उसका निश्चय जान होने पर मैं आपको अंतिम उत्तर दे सकूँगा। हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्थिति को देखते हुए शालिभद्र विरोध नहीं करेगा।' मेहमान संतुष्ट होते हुए विदा हुए।

गोभद्र सेठ खुशी—खुशी शालिभद्र के पास पहुंचे।

शालिभद्र को देखकर वह और भी हर्षित हुए। शालिभद्र ने पिता को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और ऊँचे आसन पर बिठलाकर कहा—आज आप विशेष रूप से हर्षित दिखाई देते हैं, हानि न हो तो मुझे भी इस हर्ष में हिस्सा दीजिए।

गोभद्र ने कहा—बेटा, तुम धन्य हो। मैं आज तुम से यह जानना चाहता हूँ कि कुल का स्तंभ बनने के लिए तुम्हें लग्न करना उचित है या नहीं ?

पिता की बात सुनकर शालिभद्र कुछ शर्माया। लेकिन दोबारा पूछने पर उसने कहा—जो अखंड ब्रह्मचारी हैं वह धन्य हैं। उन्होंने स्त्रियों में भूले हुए लोगों को जगाकर अपनी ओर आकर्षित किया है।

भीष्म पितामह से जब कहा गया कि यदि आप विवाह करते तो आपके पुत्र भी आप ही सरीखे वीर होते तो भीष्म ने उत्तर दिया—कौन जाने विवाह करने पर सन्तान होती या न होती ! अगर होती भी तो कुछ ही वीर होते। लेकिन ब्रह्मचारी रहकर मैंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का जो आदर्श उपस्थित किया है, उससे चिरकाल तक अनेक वीर होते रहेंगे।

शालिभद्र ने कहा—वे महापुरुष धन्य हैं जो अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। जिनमें ब्रह्मचर्य पालन करने का धैर्य नहीं है, उन पर जबर्दस्ती यह बोझा नहीं लादा जाता। फिर भी विवाहित लोगों को उनका आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और इस तत्त्व पर पहुँचना चाहिए कि धीरे—

धीरे वे पति—पत्नी मिटकर भाई—बहिन की तरह हो जावें।

आज लोगों में यह भावना ही नहीं है। इस उच्च भावना को भी जाने दीजिए, अगर आप परस्त्रियों को माता—बहिन कहा करें तो आपकी दृष्टि कभी दूषित ही न हो। आप भगवान् का जप करते हैं सो अच्छी बात है, पर उसकी सार्थकता तभी है जब 'परस्त्री माता' का जाप भी जपें। 'पर स्त्री माता' का जाप जपने से आत्मा में बल और जागृति दोनों उत्पन्न होती है।

शालिभद्र अपने पिता से कहते हैं—आपने मेरी इच्छा जाननी चाही है लेकिन यह बात गूढ़ है। आपने मेरा अधिकार मेरे लिए सुरक्षित रक्खा, इसके लिए मैं आभारी हूँ। मेरा विचार दाम्पत्य धर्म का पालन करते हुए कल्याण—साधन करने का है।

शालिभद्र की बात सुनकर गोभद्र ने कहा—तुमने बहुत अच्छा कहा। मैं भी यही ठीक समझता हूँ। अब यह भी बतलाओ कि तुम पत्नी कैसी चाहते हो?

शालिभद्र—यह प्रश्न भी बड़ा गंभीर है। मैंने एक जगह पढ़ा था कि वही पत्नी योग्य कहलाती है जो स्वयं चाहे वीर न हो, युद्ध में लड़ने न जावे, पर वीर संतान उत्पन्न करे, जो पति को देखकर सभी कुछ भूल जावे और पति जिसे देखकर सब भूल जावे। दोनों एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हों। पति जो कार्य करे उसके लिए यह समझे कि मेरा ही आधा अंग

कर रहा है और वह जो करे उसके विषय में पति यह समझे कि मैं मेरा आधा अंग कर रहा है। वही अच्छी गृहिणी है जो अपने सद्गुणों से पति को मुग्ध कर ले। वह श्रृङ्गार करे या न करे, सादी रहे, पर जो काम करे ऐसा करे कि पति को परमात्मा का स्मरण होता रहे।

शास्त्र में स्त्री को 'धर्मसहायिका' कहा है। गहने-कपड़े से सजी रहने वाली ही धर्मसहायिका नहीं होती है। सीता वन में जाकर भी राम की धर्मसहायिका बनी थी।

शालिभद्र कहते हैं—'वही पत्नी श्रेष्ठ गिनी जाती है जो पति में अनुरक्त रहे और अपने कुटुम्बी जनों को अपने आदर्श व्यवहार से आकर्षित कर ले।'

आप लोग अपनी पत्नी को तो अपने में अनुरक्त रखना चाहते हैं लेकिन आप स्वयं इस नियम के पालन करने के लिये बाध्य नहीं होते। मगर जो स्वयं इस नियम का पालन नहीं करेगा वह दूसरों से कैसे पालन करा सकेगा ?

गोभद्र ने कहा—ऐसे ही पुत्र, सुपुत्र और धर्म को पालने वाले होते हैं। अब एक बात और बतलाओ—एक ही पत्नी चाहते हो या अनेक ?

पिता के प्रश्न के उत्तर में शालिभद्र कहते हैं—मैं अधिक ज्ञानी तो नहीं हूँ, लेकिन प्रकृति की रचना देखता हूँ तो मुझे दो का ही जोड़ा दिखाई देता है। पक्षी भी इस नियम का पालन करते हैं। इसलिए एक नर और एक नारी का जोड़ा

और फिर उम्र के क्रम से एक दूसरी का हाथ पकड़ लें।

समधी-समधी की मिलनी और सासू में 'वधाने' का रहस्य भी लोगों को समझना चाहिए। सांसारिक कार्यों में भी धर्मभावना रखने से कल्याण होता है।

मान लीजिए, दो वेश्याएँ एक साथ जाने के लिए निकलीं। सामने आते हुए साधु उन्हें दिखाई दिये। साधु को देखकर एक वेश्या कहने लगी—'यह तो,बड़ा अपशकुन हो गया! यह साधु अपने रोज़गार को बर्बाद करने के लिए लोगों को भड़काया करते हैं और हमारे सुख को नष्ट करने का प्रयत्न करते रहते है।' दूसरी ने कहा—'ऐसा मत कहो। देखो हम पापों में पड़ी हुई हैं। इस समय महाराज के दर्शन हो गए, यह बड़े आनन्द की बात है। मरते समय कदाचित् इनका स्मरण हो जाय तो अपना कल्याण हो जाएगा।'

इन दोनों वेश्याओं ने अपना धन्धा नहीं छोड़ा है। फिर भी दोनों मे कुछ अन्तर है या नही?

'है!

इसी प्रकार सांसारिक कार्यो में भी भावना की भिन्नता के कारण बन्ध में अन्तर होता है। एक सांसारिक कार्य धर्म को सामने रखकर किया जाता है और दूसरे में धर्म को धता बताया जाता है। इस प्रकार सांसारिक कार्यो में भी पाप की जगह पुण्य का बंध किया जा सकता है। विवाह के अवसर पर होने वाले नेग—दस्तूरों में भी अनेक अच्छे आशय छिपे

हैं। उन्हें समझ लेने और अमल में लाने से जीवन सुधरता है। उदाहरणार्थ मिलनी की ही प्रथा को लीजिए। वर और कन्या के पिता एक-दूसरे के गले में बाहें डालकर मिलते हैं। इस मिलन का आशय यह है कि आज से हम और आप एक हो गये। जो काम आप करेंगे उसमें हम और हमारे काम में आप शामिल हैं। आप की इज्जत हमारी है और हमारी इज्जत आपकी है।

मिलनी आज भी की जाती है मगर अब उस प्रथा का प्राण चला गया है, सिर्फ कलेवर ही बाकी रहा है। अर्थात् सिर्फ रूढ़ि रह गई है और उसमें की भावना चली गई है। यही कारण है कि पहिरामणी में थोड़ी-सी कसर होते ही हो-हल्ला मच जाता है। यह सच्ची मिलनी नहीं है। मिलकर और वचन देकर अगर बदल गये तो फिर मिलना और वचन देना ही कैसा!

> बाँह बदल बाटी बदल, बचन बदल वे शूर।
> यारी कर ख्वारी करें, ताके मुँह में धूर॥

मिलनी का आशय यह है कि आज से मेरा पुत्र आपका है और आपकी कन्या मेरी है। मैंने अपना पुत्र देकर आपकी कन्या ली है और अपनी कन्या देकर आपका पुत्र लिया है।

यह भारत की सभ्यता के लग्न थे। भारत में लग्न यूरोप की तरह नहीं होता था कि आज एक के साथ किया तो कल दूसरे के साथ और चार दिन बाद तीसरे चौथे की खोज

होने लगी।

मिलनी करने के बाद गोभद्र सेठ मण्डप में आये। शालिभद्र की बत्तीस सासुएं आरती लेकर बधाने आई।

इसमें भी वही तत्व है जो कन्या के घर जाकर उसे ब्याहने में है। जैन शास्त्र के अनुसार इस अवसर्पिणी काल में सब से पहला विवाह ऋषभदेव स्वामी का हुआ था। भगवान् ऋषभदेव का समय जुगलियों का समय था। सुमङ्गला भगवान् की बहिन होती थी और उसी के साथ उनका विवाह होना था। फिर भी भगवान् ऋषभदेव ने अपने घर पर ही सुमङ्गला के साथ विवाह नहीं किया था। इन्द्र सुमङ्गला को अपने घर ले गये और ऋषभदेवजी सुमङ्गला को ब्याहने वहाँ गये। भगवान ऋषभदेव ने ऐसा क्यों किया? अगर पुरुष एकान्त बड़ा है तो कन्या को वर के घर आना चाहिए। वर कन्या के घर क्यों जाता है?

पुरुष अपने को बड़ा और स्त्री को तुच्छ समझता है। मगर यह ऐसी प्रथा है जो पुरुषों के अहंकार को मिटाती है। अगर स्त्री तुच्छ थी तो पुरुष उसके यहाँ क्यों गया था?

कदाचित् यह सोचकर कि लड़के वाला हमारे यहाँ आया है, हम उसके यहाँ नहीं गये; लड़की वाले को अभिमान आ जाय तो उस अभिमान का नाश करने के लिए सामने जाने की और बधाने की प्रथा है। जिससे अगर कोई कहे कि तुम्हें गरज थी तभी तो ब्याहने के लिए हमारे यहाँ आये थे तो यह

उत्तर दिया जा सके कि हम आये तो थे मगर तुम्हें गरज नहीं थी तो तुमने हमें वधाया क्यों ?

शालिभद्र की सासुएँ शालिभद्र को हर्षसहित वधाकर मण्डप मे ले आई। मण्डप में बत्तीसों कन्याएँ और लग्नविधि को जानने वाला तथा समझने वाला पुरोहित मौजूद था। लग्नविधि के अनुसार पहले वर-कन्या की स्वीकृति ली जाती है और उन्हें लग्न के नियम समझाए जाते हैं। इसी के अनुसार शालिभद्र का लग्न हुआ और वर के हाथ में सबसे बड़ी कन्या का हाथ देकर आयुक्रम से एक कन्या का हाथ दूसरी कन्या के हाथ मे देकर अग्नि की प्रदक्षिणा होने लगी अर्थात् फेरे पड़ने लगे।

फेरे गोल-गोल क्यो दिये जाते हैं? यह भी समझने की चीज है। 'राउण्ड टेबिल कॉन्फरेंस' का अर्थ है—गोल मेज सभा। गोल मेज रखकर सब लोग उसके चारों ओर बैठ जाते है तो छोटे-बड़े का प्रश्न नहीं रहता। इसी प्रकार गोल चक्कर लगाने में आगे-पीछे का भेद नहीं रहता। इसके सिवाय एक पैर रखने के स्थान पर दूसरे का पैर अर्थात् पैर पर पैर पड़ता जाता है। इसमे इस बात की सूचना है कि तेरे पाँव में मेरा पाँव और मेरे पाँव मे तेरा है। देखना, अब इस चक्कर से बाहर पैर मत धरना। अगर पैर बाहर रक्खा अर्थात् नियम को भङ्ग कर दिया तो फिर लग्न करना वृथा है।

इस प्रकार शालिभद्र के साथ बत्तीसों कन्याओं के फेरे

पड़े। सप्तपदी के मन्त्र पढ़े गये। आखिर विवाह का कार्य आनन्द और उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। कन्याओं के पिताओं ने यथाशक्ति भेंट (दहेज) प्रदान की और यथोचित सत्कार के बाद बरात वापस लौट गई।

भक्ति का वास्तविक स्वरूप समझ लेने पर अन्तरात्मा में कुछ विलक्षण जागृति हो जाती है। संगम को भक्ति के कारण अपनी भूख दिखाई न दी और न उसे यही विचार आया कि खीर कितनी कठिनाई से मिली है। भक्ति के वश होकर ही उसने थाली की सारी खीर मुनि को वहरा दी और उसी पुण्य के फलस्वरूप ही वह आज शालिभद्र बनकर बत्तीस स्त्रियों का पति बना है।

६

———:::():::———

सुभद्रा की सीख

भद्रा सेठानी की बत्तीसों बहुएँ उसके सामने खड़ी हैं। इस समय भद्रा के हृदय में कितना हर्ष होगा, यह कौन कह सकता है? मगर उस समय एक विलक्षण बात हो गई।

शालिभद्र का जन्म होने के बाद गोभद्र सेठ के मन में एक पुत्री की कामना और रह गई थी। उन्होंने सोचा—मै पुत्रऋण से मुक्त हो गया हूँ. अगर पुत्री-ऋण से भी मुक्त हो जाता तो अच्छा था।

आज तो पुत्र का जन्म होने पर हर्ष और पुत्री के जन्म पर विषाद अनुभव किया जाता है; पर यह लोगों की नासमझी है। पुत्री के बिना जगत् स्थिर ही कैसे रह सकता है? अगर किसी के भी घर पुत्री का जन्म न हो तो पुत्र क्या आकाश से टपकने लगेंगे? सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण पुत्र-पुत्री में इतना कृत्रिम अन्तर पड़ गया है। पर यह समाज का दूषित पक्षपात है। जिस पेट से पुत्र का जन्म

होता है, उसी पेट से पुत्री का। फिर पुत्री को हीन क्यों समझा जाता है? सांसारिक स्वार्थ के वश में होकर औरों की तो बात क्या, पुत्री को जन्म देने वाली माता भी पुत्री जन्म से उदास हो जाती है। ऐसी बहिनों से पूछना चाहिए कि क्या तुम स्त्री नहीं हो? स्त्री होकर भी स्त्री-जाति के प्रति अभाव रखना कितनी जघन्य मनोवृत्ति है? कई स्त्रियों के विषय में सुना गया है कि वे पुत्र होने पर खाने-पीने की जैसी चिन्ता रखती हैं, वैसी पुत्री के होने पर नहीं रखतीं। जहाँ ऐसे तुच्छ विचार हों संतानके अच्छे होने की क्या आशा की जा सकती है? और संसार का कल्याण किस प्रकार हो सकता है?

गोभद्र सेठ के अन्तःकरण में इस प्रकार तुच्छ भेद भाव नहीं था। इसी कारण उन्होंने पुत्री की कामना की। उनकी कामना निष्फल नहीं गई। उनके यहाँ एक पुत्री का भी जन्म हुआ जिसका नाम सुभद्रा रक्खा गया।

बच्चों की बाल-लीला में क्या रहस्य है, यह बहुत कम लोग जानते हैं। जानने की उत्कंठा ही बहुत कम लोगों को होती है। अधिकांश लोग अपनी संतान को गहने पहनाकर उनके नाचने-कूदने से उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे घरवालों के बैल के गले में घुंघरू बाँध कर और उनके कूदने पर घुंघरू की आवाज सुनकर मालिक प्रसन्न होता है। आज के अधिकांश माता-पिता को संतान विषयक जिम्मेवरी का ध्यान ही नहीं है। अपनी जिम्मेवरी समझकर संतान में उच्च भावना उत्पन्न

करना माता—पिता का धर्म है संतान को विषयी बनाना माता—पिता का धर्म नहीं है।

सुभद्रा बालकाल व्यतीत करके सब कलाओं में कुशल हुई। सेठ गोभद्र को सुभद्रा से बहुत आशा है। आज सुभद्रा बत्तीस भौजाइयों की ननद बनी है। अपनी भौजाइयों को देखकर सुभद्रा के अन्तःकरण में एक विचित्र भावना उत्पन्न हुई। वह सोचने लगी—यह भौजाइयाँ भी अपने माता—पिता की पुत्रियाँ हैं और उन्हें छोड़कर यहाँ आई है। इसी प्रकार मुझे भी एक दिन अपने माता—पिता को छोड़कर चला जाना होगा। यह भौजाइयाँ जैसा विनय मेरी माता अर्थात् अपनी सासू के प्रति प्रदर्शित कर रही है, उसी प्रकार मुझे भी अपनी सासू के सामने विनय दिखलाना होगा। इसके माता-पिता ने इन्हें क्या-क्या सिखलाया है, यह मुझे अभी नहीं मालूम है। वह तो इनके साथ रहने से मालूम हो जाएगा। भौजाइयाँ मेरी माता के सामने इस प्रकार खड़ी हैं, जैसे परमात्मा के सामने खड़ी हों। अब देखें, माता क्या कहती है?

सुभद्रा और उसकी भौजाइयाँ भद्रा के कथन की प्रतीक्षा कर रही हैं। इसी समय भद्रा ने इस प्रकार कहना आरंभ किया—

'सौभाग्यशालिनी बहुओ! आज अत्यन्त हर्ष का दिन है कि तुमने यह घर-जो अब तक मेरा था और अब तुम्हारा भी हो गया है-पवित्र किया। जिस समय से सेठजी ने तुम्हारे

विषय में बात कही, उसी समय से मैं तुम सब को देखने के लिए उत्कंठित थी। आज मेरी उत्कंठा पूरी हुई। मैंने सुना था कि बत्तीस होकर तुम भी एक होकर रहोगी। तुम्हें धर्म पसंद है, तुम्हारे माता-पिता तुम्हें अलग-अलग विवाहना चाहते थे, लेकिन तुम सब ने मिलकर एक शालिभद्र को ही पसंद किया। उसी दिन से मेरी खुशी का पार नहीं था। मैंने तुम्हारा कथन सुना था कि तुम भोग के निमित्त विवाह नहीं कर रही हो, वरन् इस संसार से पार उतरने के लिए सहायक ढूँढ़कर आखिर तत्त्व पर पहुँचना चाहती हो। यह और भी बड़े हर्ष की बात है। वास्तव में तुम भोग की इच्छुक होती, तुम्हारे भीतर स्वार्थ की प्रधानता होती, तो तुम सब मेरे घर न आतीं। बहुओ, तुम्हारी उच्च भावना के लिए मैं तुम्हें बधाई देती हूँ। अब आज से यह तुम्हारा घर है, यह कुटुम्ब तुम्हारा है और मैं भी तुम्हारी हूँ। इस कुल की प्रतिष्ठा ही तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी। अतएव सदा ऐसे सुकृत्य करना जो तुम्हारे पितृकुल और पतिकुल को उज्ज्वल करे। अन्त में मैं तुम सब को आशीर्वाद देती हूँ कि तुम चिरसुखी, चिरसौभाग्यवती, सन्तानवती और समृद्ध होओ।'

सास की स्नेह और सद्भावना से परिपूर्ण बातों को सुनकर बत्तीसों बहुएं उसके चरणों में गिर पड़ीं और अपने भाग्य की सराहना करने लगीं कि पुण्य के योग से ही हमें ऐसी दयालु सास के यह मङ्गलमय वाक्य सुनने को मिले हैं।

अपनी माता की बातें सुनकर और भौजाइयों की विनम्रता देखकर सुभद्रा दंग रह गई। वह मन ही मन कहने लगी—मेरी माता और भौजाइयाँ कितनी भावनाशील हैं! एक दिन मेरे जीवन में भी यही अवसर आएगा। उस समय मुझे आज की बातें स्मरण रखनी होंगी।

सुभद्रा के इन विचारों की छाया उसके चेहरे पर पड़े बिना न रही। प्रसन्न मुख को गम्भीर हुआ देखकर सेठानी भद्रा अपनी पुत्री की भावना को ताड़ गई। उसने पूछा-बेटी, तू क्या सोच रही है? मै अनुमान से तो तेरे विचारों को समझ गई, लेकिन स्पष्ट रूप से सुनना चाहती हूँ। अगर तू अपने विचार साफ़ तौर से कह दे तो मै उनके विषय में कुछ समाधान करूँ।

माता की बात सुनकर सुभद्रा का सिर लज्जा से नीचा हो गया। आर्यबालाओं में लज्जा का गुण होना स्वाभाविक है। पर लज्जा का अर्थ घूँघट ही नहीं है। लज्जा घूँघट में नहीं, नेत्रों में निवास करती है। घूँघट मारने वालियों में ही अगर लज्जा होती तो वे ऐसे बारीक वस्त्र ही क्यों पहनतीं जिनमें से सारा शरीर दिखाई देता हो। महीन-वस्त्र पहनकर घूँघट निकालना तो एक प्रकार का छल है कि कपड़े भी पहिने रहें और शरीर कुछ छिपा भी न रहे! इन महीन कपड़ों में लज्जा कहाँ?

सुभद्रा को लज्जित होकर झुकी देखकर भद्रा कहने लगी—बेटी, तेरी यह नम्रता भी सराहनीय है। नम्र रहने वाले को

लाभ ही होता है। मैं तेरी बात समझ तो गई हूँ, पर तू स्वयं कह देती तो और भी अच्छा होता। मेरे खयाल से तू यह सोच रही है कि एक दिन मुझे भी इन भौजाइयों की स्थिति का अनुकरण करना पड़ेगा। मुझे भी अपनी सासू के सामने इसी प्रकार खड़ा होना पड़ेगा। कौन जाने, मुझे कैसा पति और कैसी सासू मिलेगी! परन्तु बेटी! मेरे उदर से जन्म लेकर तुझे यह चिन्ता करना उचित नहीं है।

माता की इस बात से सुभद्रा सहम उठी। उसके रोम-रोम खड़े हो गये। वह विचारने लगी—क्या मुझे ऐसी चिन्ता करनी चाहिए? मैंने यह चिन्ता करके भूल की है?

सुभद्रा माता की बात का मर्म न समझ सकी। उसने माता से कहा—मैं आपकी इस गंभीर बात को नहीं समझ सकी। कृपा करके इसे स्पष्ट कीजिए।

भद्रा ने कहा—शालिभद्र जब मेरे गर्भ में था, उस समय की अपनी भावनाओं को मैं किस प्रकार तुझे समझाऊँ! उस समय मेरे और तेरे पिताजी के भावों में तनिक भी स्वार्थ नहीं था। मैं परलोक के हित को सम्मुख रखकर पतिप्रेम में तल्लीन रही और इसी भावना में शालिभद्र का जन्म हुआ। शालिभद्र के जन्म के समय मेरे अन्तःकरण में जैसी भावनाएँ थीं, वैसी ही तेरे जन्म के समय भी थीं—कम नहीं थीं। मेरे पास धन है अतः मैं अपनी बेटी को कष्ट न होने दूँगी; धन देकर जामाता को अपने घर रख लूँगी, इत्यादि गन्दी भाव-

नाएँ मुझ में कभी नहीं हुई । मैंने सदा यही सोचा है कि बेटी पराये घर की है और गरीब के घर जाकर भी वह मुझे लजावें नहीं, बल्कि उसके कारण मेरी प्रशंसा ही हो । बेटी ! इस भावना से मैंने तुझे जन्म दिया है ।

कदाचित् तू अपनी भौजाइयों के गहने-कपड़े देखकर सोचती हो कि मुझे ऐसे गहने-कपड़े मिलेंगे या नहीं, या यह सोचती हो कि मुझे ऐसा सुख मिलेगा या नहीं, तो यह भी तेरी भूल है । खाने को मिले या न मिले—भूखी रहना पड़े, गहने-कपड़े मिलें या न मिलें, इन बातों से सौभाग्य में न्यूनाधिकता नहीं होती । सौभाग्य की प्रशंसा इस बात मे है कि दुख में और सुख में समान भाव से धीरज का अवलम्बन लिया जाय । हीरा जब सोने में जड़ा जाता है तब भी चमक देता है और जब घनों से कूटा जाता है तब भी चमक देता है । इसी प्रकार सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला व्यक्ति ही वास्तव मे भाग्यशाली है । लड़की की बड़ाई इस बात मे है कि वह माँ-बाप के घर से निकल कर सासू-सुसर को अपना माँ-बाप माने, उसी प्रकार उनकी सेवा करे और माने कि इनकी सेवा के लिए ही मेरा जन्म हुआ है । मौज-शौक वाला जीवन जल्दी नष्ट हो जाता है । ऐसा जीवन काच के खिलौने के समान है; जिसके टूटने में देर नही लगती । और सादा जीवन हीरे के समान है जो घनों की चोट सहने पर भी अखण्ड रहता है । काच की अपेक्षा हीरा-मोती अधिक मूल्यवान् इसी-

लिए समझे जाते हैं कि वे संकट के समय काम आते हैं। सिर्फ मौज के लिए उनकी कीमत नहीं है। मौज तो काच से भी हो सकती है। कांच संकट के समय काम नहीं आता, इसी से उसका वह मूल्य नहीं है। मतलब यह है कि विपत्ति की वेला पर काम आना ही हीरापन है।

भद्रा की बात सुनकर सुभद्रा प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी—अब मैं यह बात समझ गई। भौजाइयों के आभूषणों में जो हीरे जड़े हैं, मैं उन्हीं की तरह बनूंगी। आज माता ने मेरी आँखे खोल दीं। मैं संकट की कसौटी पर खरी उतरने योग्य जीवन बनाऊँगी और जब ऐसी बन जाऊँगी तभी समझूंगी कि मैंने अपनी माता की कूँख को सुशोभित किया है।

सुभद्रा जब अवसर पाती तो अपनी माता से ऐसी बात छेड़ देती थी कि जिससे उसके भावी जीवन के काम की बातें उसे जानने को मिल सकें। भद्रा ने अपनी पुत्री को ऐसी शिक्षा दी कि वह वास्तव में सच्ची सुभद्रा बन गई। एक बार भद्रा ने कहा—बेटी, विवाह भोग-विलास के लिए नहीं किया जाता। विवाह करना एक संग्राम में उतरना है। वैवाहिक जीवन में बड़े-बड़े विघ्न होते हैं। पति-पत्नीधर्म के पालन में कई बार दुःख बहुत बाधा डालते हैं। उन दुःखों को जीतकर अपने धर्म को बचाना ही विवाह का सच्चा उद्देश्य है। जो स्त्री गहने-कपड़े के पीछे पड़ी रहती है वह गहनों-कपड़ों के लिए

अपने स्त्रीत्व ही को बेच देती है। सोचो न, सीता, कलावती और मदनरेखा आदि स्त्रियाँ कितनी सुकुमारी होंगी? तुम तो एक सेठ के घर जन्मी हो और सेठ के घर ब्याही जाओगी, पर वह सतियाँ तो राजघराने में जनमी थीं और राजाओं के घर ही ब्याही गई थीं। लेकिन वे सच्ची माँ की बेटियाँ स्त्रियों में रत्न थीं और संसार का कल्याण करने वाली थीं। वह पूरी शक्ति रूप थीं, इसीलिए उन्होंने स्त्रीसमाज के कलंक को धोया और स्त्रियों की गाड़ी पुरुषों से भी आगे बढ़ा दी। अगर वे मौज-मजे को ही अपने जीवन का सार समझतीं तो आज उनका कोई नाम ही न लेता। क्या सीता के लिए दशरथ के विशाल महलों में जगह नहीं थी जो उन्हें राम के साथ वन जाना पड़ा? फिर रथ में बैठने वाली सीता को कंकरों-पत्थरों और काटों में पैदल क्यों भटकना पड़ा? जो स्वयं दास-दासियों से घिरी रहती थी उसे स्वयं सेविका क्यों बनना पड़ा? बेटी! भक्त का और पतिव्रता का पन्थ एक ही है। अगर वे आराम चाहें तो अपने अभीष्ट ध्येय तक नहीं पहुँच सकते। सीता अगर महलों में ही रहती तो उसमें वह शक्ति न आती जो शक्ति राम के साथ वन जाने के कारण आ सकी। रावण को राम ने नहीं, वरन् सीता ने ही हराकर स्त्रीजाति का मुख उज्ज्वल किया है। फिर भी बेटी, तू भौजाइयों को देखकर अपने भाग्य के विचार से घबराई, यह आश्चर्य की बात है! जैसे सोने की कीमत आग में तपाने से बढ़ जाती है, उसी

प्रकार स्त्री की कीमत कष्ट सहकर धर्म को दिपाने में है; भोग-विलास में पड़ी रहने में नहीं।

सुभद्रा की रग-रग में भद्रा ने यह भावना भर दी। माता की सीख का प्रभाव पुत्री के जीवन पर कितना गहरा हुआ, यह आगे चलकर मालूम होगा।

१०

सुभद्रा का विवाह

——::::()::::——

धन्ना अपने ढँग का एक ही था। उसमें सुन्दरता थी, सज्जनता थी, प्रामाणिकता थी, मगर इन सब गुणों के अतिरिक्त उसमें सबसे बड़ा गुण था—निरीहता। उसने अपने भाइयों के लिए कई वार सांसारिक सम्पत्ति को इस प्रकार ठुकरा दिया था, जैसे कोई बीच-रास्ते में पड़े पत्थर के टुकड़े को ठुकरा देता है। वह धन को धूल से अधिक नहीं समझता था। लेकिन धन-सम्पत्ति उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। लक्ष्मी परछाई की भाँति उसका पीछा करती थी और वह सदैव उससे विमुख ही रहता था। धन्ना फक्कड़पन में आनन्द मनाता था मगर सौभाग्य उसके साथ ही रहने में आनन्द मानता था। धन्ना लक्ष्मी को ज्यों-ज्यों तजना चाहता लक्ष्मी त्यों-त्यों उसके गले पड़ती।

एक बार धन्ना सेठ अपनी सम्पत्ति त्याग कर राजगृह आ पहुँचा। राजगृह के बाहर कुसुम बाग में वह ठहर गया।

कुसुम बाग सूख गया था पर धन्ना के आते ही फिर हरा हो गया। धन्ना का यह अपूर्व प्रभाव देखकर कुसुम सेठ ने अपनी कन्या कुसुमश्री का उसके साथ विवाह कर दिया। इसके कुछ दिनों बाद राजा श्रेणिक ने भी अपनी सोमश्री नामक कन्या उसे ब्याह दी।

गोभद्र सेठ ने एक दिन विचार किया—मैं पुत्र की चिन्ता से मुक्त हो गया हूँ। अब सिर्फ सुभद्रा का विवाह करना शेष है। इसके बाद गृहस्थावस्था में मैं नहीं रहना चाहता। गृहस्थी के प्रपंचों में सारा जीवन व्यतीत कर देना उचित नहीं है। अपने अंतिम जीवन को निवृत्ति के साथ शुद्ध न बनाना अपने-आपको चक्कर में डालना है।

टालस्टाय ने कहा है कि आजकल के उपन्यासकार उप-न्यासों को अधबीच में ही छोड़ देते है। अर्थात् वे भोग का वर्णन तो कर देते है पर त्याग तक नही पहुँचाते। परन्तु जैन कथाओं की यह विशेषता है कि उनमें भोग के साथ त्याग का भी वर्णन किया गया है। जैन परम्परा के अनुसार इसी आदर्श में जीवन की सम्पूर्णता है। केवल भोग, जीवन की मलीनता है। जैन परम्परा जीवन को इस भोग की मलीनता में से निकाल कर त्याग और संयम की उज्ज्वलता में प्रतिष्ठित करना ही उचित मानती है और इसी उद्देश्य से जैनागमों में कथा भाग आया है।

सुभद्रा के विवाह से निवृत्त होने के पश्चात् संसार-त्याग

कर देने की प्रबल भावना गोभद्र सेठ के अन्तःकरण में बल-वती हो उठी। उन्होंने सुभद्रा के विवाह के संबंध में अपनी पत्नी से परामर्श लिया। पत्नी ने कहा—सुभद्रा के लिए वर चाहे धनवान् हो चाहे गरीब हो, पर सुभद्रा के जीवन को दिव्य बना देने वाला अवश्य हो। और ऐसा हो जो सुभद्रा की कला को शिखर पर चढ़ा कर उसे संसार में प्रकाशित कर दे।

गोभद्र कहने लगे—धनवान् वर मिल जाना कठिन नहीं है, पर जैसा कहती हो वैसा वर खोज लेने का बोझा तो बड़ा बोझा है।

आज पुरुष के साथ विवाह नहीं होता बल्कि धन के साथ किया जाता है। यही कारण है कि वर कितना ही मूर्ख, दुर्बल और रोगी क्यों न हो, उसका विवाह अवश्य हो जाता है और सुयोग्य निर्धन नवयुवक कुँवारे फिरते हैं।

गोभद्र सेठ ने कभी सोचा भी नहीं था कि सुभद्रा का विवाह धन्ना के साथ किया जाएगा। लेकिन एक धूर्त ने गोभद्र को ऐसे संकट में डाल दिया कि जिस बात का विचार भी नहीं किया था वही आगे आई।

बात यों थी। एक धूर्त ने गोभद्र सेठ के विरुद्ध एक मामला चलाया। राजा श्रेणिक के दरबार में जाकर उसने कहा—मेरी एक आँख गोभद्र सेठ के यहाँ गिरवी रक्खी है। मैं रुपया देने के लिए तैयार हूँ। मेरी आँख मुझे दिलाई जाय।

मामला अजीब था। धूर्त ने ऐसे प्रमाण दिये कि राजा श्रेणिक

और उनके अत्यन्त बुद्धिशाली मंत्री दंग रह गये। मामला महाराजा श्रेणिक के पास विचाराधीन था। उस समय अभयकुमार उज्जयिनी गये हुए थे। और उनके कार्य का भार धन्ना को सौंपा गया था। धन्ना ने यह मामला अपने हाथ में लिया।

मामले का फैसला किस प्रकार हो सकता है, यह समझने में धन्ना को देरी नहीं लगी। उसने सारी रूपरेखा सोच ली। पश्चात् धन्ना, गोभद्र सेठ के घर मुनीम बन कर बैठ गया। सेठजी से धूर्त्त वादी को बुलवाने के लिए कहा। वादी के आने पर धन्ना ने उससे कहा—मैं पुराना मुनीम हूँ। मेरे ही ज़माने मे तुम्हारी आँख बंधक रक्खी गई थी। सेठजी सीधे आदमी हैं। इसलिए इन्हें मालूम नहीं है। तुम रुपये लाओ, मै तुम्हारी आँख तुम्हें लौटा दूँगा।

धूर्त्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा—ये लो अपने रुपये और मेरी आँख मुझे दो।

धन्ना बोला—यह बड़े सेठ का घर है। यहाँ हजारों आँखें बंधक होंगी। ऐसी हालत में बिना पहचान के नहीं जाना जा सकता कि तुम्हारी आँख कौन-सी है? अतः तुम अपनी दूसरी आँख निकाल कर मुझे दे दो। मैं उससे मिलान करके और तोल करके तुम्हारी आँख ला दूँगा।

धन्ना की बात सुनकर धूर्त्त के देवता कूच कर गये। उसने भागने का विचार किया, पर धन्ना ने उसे पकड़वा लिया।

धूर्त राजा के सामने पेश किया गया और अन्त में उसने अपने किये का फल पाया।

इस मामले से गोभद्र सेठ धन्ना की बुद्धिमत्ता से बहुत प्रभावित हुए। कृतज्ञता की भावना भी उनके हृदय में उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—जिसने हमारी इज्जत बचाई है, उसे ही सुभद्रा देना ठीक है। वह बुद्धिमान् भी है, प्रतिष्ठित भी है और राजपरिवार से उसका घनिष्ठ संबंध भी है। इस प्रकार विचार कर सेठ, धन्ना से मिलने गये। धन्ना की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि आपने ही मेरी इज्जत बचाई है।

धन्ना—आप तो सच्चे ही थे। इसमें मैने किया ही क्या है? निरपराध होते हुए अगर आप मेरे शासनकाल में दुखी होते तो मुझे कलंक लगता। इस प्रकार मैंने जो कुछ किया है, अपने को कलंक से बचाने के लिए और अपना कर्त्तव्य पालने के लिए ही किया है।

धन्ना के उत्तर से गोभद्र दङ्ग रह गये। उन्होंने कहा—एक बार आपने मेरी इज्जत रक्खी है, अब एक बार और रख लीजिए।

धन्ना—कहिए, क्या आज्ञा है?

गोभद्र—मेरी और मेरी पत्नी की प्रतिज्ञा है कि अपनी कन्या सुभद्रा का उसके अनुरूप वर के साथ विवाह करेंगे। आप मुझे उसके अनुरूप दिखाई देते हैं। आप उसे अपना

कर मेरा भार हल्का कीजिए।

धन्ना—आपकी यह बात साधारण नहीं है। आपको मेरा पूरा परिचय भी नहीं है। मेरे यहाँ पहले ही दो स्त्रियाँ मौजूद हैं। इन दो स्त्रियों के पिताओं ने भी मेरी जाति-पाँति नहीं पूछी और विवाह कर दिया। आप भी इसी प्रकार करना चाहते हैं। मगर आप बुद्धिमान् हैं, इसलिए विचार कीजिए। सौतों पर कन्या को देना कहाँ तक ठीक होगा?

गोभद्र—आपका कथन यथार्थ है। सौत पर कोई अपनी कन्या नहीं देना चाहता मगर हमने इस संबन्ध में विचार कर लिया है। बहुनारी-दोष कहाँ होता है, इस बात की अभी मीमांसा करने की आवश्यकता नहीं है। यह उचित ही है कि पुरुष का सर्वप्रथम कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे और यदि ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके तो एकपत्नीव्रत का पालन करे। यही सोचकर आपको यह विवाह करने में असमंजस होता होगा। मगर मेरी कन्या विलास नहीं चाहती। उसे आधा अंग पाकर अपने जीवन को पूर्ण बनाना है। विश्वास रखिए, वह कभी सौतों से झगड़ा नहीं करेगी। आपका जैसा स्वरूप है, जैसा कुल का संस्कार है वैसा ही सुभद्रा का भी है। वह आपके स्वभाव और संस्कार को देदीप्यमान कर देगी। अतएव आप मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न कीजिए।

गोभद्र सेठ के आग्रह के सामने धन्ना को झुकना पड़ा।

आखिर सुभद्रा के साथ धन्ना सेठ का विवाह हो गया। इस विवाह में सुभद्रा की भावना क्या थी और आजकल की स्त्रियों की भावना क्या होती है, यह देखने की आवश्यकता है। वैवाहिक जीवन को स्वीकार करने के पश्चात् दम्पती नये तत्त्व की खोज करते हैं। तदनुसार सुभद्रा भी नवीन तत्त्व की खोज में लगी है। उस समय उसकी माता ने कहा—सुभद्रा ! वीर पुरुष के साथ तेरा विवाह हुआ है। मै आशा करती हूँ कि तू कायर न बनेगी। तुम्हारे पिताजी से मैंने तुम्हारे पति का हाल सुना है। उनका जीवन दिव्य है। उन्होंने भ्रातृकलह से बचने के लिए कई वार भरे भण्डार छोड़ दिये हैं; फिर भी लक्ष्मी ने उनका साथ नहीं छोड़ा। संकट के समय तुम्हारे पति कभी घबराये नहीं हैं। अगर तू अपना जीवन पतिमय बनाना चाहती है तो धर्मपरायण होना और सुख दुःख को समान भाव से ग्रहण करना।

अपनी माता की शिक्षा का सुभद्रा पर क्या प्रभाव पड़ा, यह बात सुभद्रा की स्वतंत्र कथा से मालूम होगी। उसने अपने-सास-सुसर की सेवा के लिए मिट्टी की टोकरियाँ ढोईं। सास ने संकट के समय पितृगृह जाने को कहा, लेकिन सुभद्रा पीहर न गई। यह शिक्षा सिर्फ सुभद्रा के लिए नहीं है, सभी के लिए है। जो कपड़ा पहनता है, उसी की वह लज्जा निवारण करता है, इसी प्रकार जो इस शिक्षा को धारण करेगा, उसी की इज्जत रहेगी और प्रतिष्ठा बढ़ेगी। सुभद्रा ने इस शिक्षा

के प्रभाव से कभी साहस नहीं छोड़ा। वह अपने मायके के सुखों को कभी नहीं रोई और न उसने अपने सास-सुसर को कभी दुखी होने दिया। जेठानियों के हल्के शब्द सुनकर भी उसकी भौंहे कभी ऊँची नहीं चढ़ीं। उसने प्राण दे देना स्वीकार किया पर शील देना स्वीकार नहीं किया। यह सब माता की शिक्षा का ही प्रभाव था। माता ने जो दहेज दिया था, उस सब की अपेक्षा इस शिक्षा का मूल्य बहुत अधिक है। इस शिक्षा पर अमल करने के कारण ही वह अन्त में पटरानी बनी और राजा श्रेणिक की पुत्री इससे छोटी रही। उसने अन्त तक, यहाँ तक कि पति के दीक्षा लेने पर भी पति का साथ दिया। इस प्रकार की शिक्षा लेकर सुभद्रा अपने पति के घर चली गई।

११

गोभद्र की दीक्षा

——:::():::——

शालिभद्र और सुभद्रा के विवाह से निवृत्त होकर सेठ गोभद्र ने संतोष की सांस ली। उन्होंने विचार किया—मैं अब सांसारिक कर्त्तव्य कर चुका हू। और बहुत वर्ष गृहस्थ-अवस्था में व्यतीत कर चुका हूँ। हाय-हाय करते हुए मृत्यु का आलिंगन करना उचित नहीं है। मैंने संसार की सब क्रियाएँ की हैं तो उच्च से उच्च संयम की क्रियाएँ भी मुझे करना चाहिए। इसके अतिरिक्त—

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

इस सिद्धान्त के अनुसार मैं संसार में रहता हुआ ही अगर मरा तो मेरी देखादेखी और लोग भी यही कहेंगे कि बेटा-बेटी और सम्पत्ति हुई तो बस चौथापन मौज करने के लिए है। अगर मैं गृहस्थी का सारा भार पुत्र के सिर पर थोप दूँ और बैठा-बैठा खाया करूँ तो यह अकर्मण्यता होगी। मैं ऐसी अकर्मण्यता पसंद नहीं करता।

आज कल के कुछ लोग खाना तो पुण्य समझते हैं पर कमाना पाप मानते हैं। स्त्रियाँ रोटी तो खाती है पर चक्की चलाने में पाप समझ कर दूसरे से पिसवाती हैं। जिस वस्तु को खाना पाप नहीं माना उसके बनाने में पाप मान लेना और दूसरे से बनवाना आलस्यमय जीवन की निशानी है। खावें तो आप और बनवावे किसी दूसरे से कि हमें पाप नहीं होगा, बनाने वाले को पाप होगा, फिर बनाने वाला चाहे हमारे लिए ही क्यों न बनाता हो ! यह बड़ी विचित्र बात है। जो मनुष्य पाप को समझता है वह पाप से बचने का विवेक रख सकता है मगर अनभिज्ञ नौकर किस-किस प्रकार की अयतना करता है और अयतना के फलस्वरूप कितना पाप हो जाता है, यह किसे मालूम है ? सेठ से कमाया नहीं जाता इसलिए उसने मुनीम रख लिया। वह मुनीम मालिक के लिए कितना अन्याय करके धन कमाता है; यह किसको मालूम है ?

टालस्टाय के पास छह लाख रूबेल (रूस के सिक्के) थे। फिर भी उसने कहा—आयु के चौथे चरण में मुझे संन्यास लेना ही उचित है। भारतवर्ष धन्य है जहाँ अंतिम जीवन में दीक्षा लेने की नीति ही बनी हुई है।

गोभद्र को शालिभद्र सरीखा पुत्र और भद्रशीला भद्रा जैसी पत्नी पाकर मौज करनी चाहिए थी या दीक्षा लेनी चाहिए थी ? आज के सेठ पुत्र-पौत्र और धन के होने पर, जब शरीर काम

नहीं देता तो ताश खेलने में ही समय विताते हैं। भोगों के कारण उनका शरीर निकम्मा हो जाता है और चौथेपन में तो प्रायः विलकुल गिर जाता है। पहले के लोग ऐसे नहीं थे। उनका जीवन संयत और नीतियुक्त होता था और इस कारण चतुर्थ पन में भी उनका शरीर सशक्त वना रहता था। गांधीजी कहते हैं कि जिसका जीवन पूर्ण नीतिमय होगा, वह काम करते-करते ही मरेगा। अर्थात् मृत्यु के समय भी उसके शरीर में कार्य करने की शक्ति बनी रहेगी। ऐसा नीतिमय जीवन होने पर ही मनुष्य दीक्षा ले सकता है।

भारत में उस समय जीवन की कला अपनी चरम सीमा पर पहुँची थी। तब गोभद्र जैसे सम्पत्तिशाली भी अपनी सम्पत्ति को त्याग कर भिक्षुक और अनगार का जीवन व्यतीत करते थे एवं शुद्ध आत्मकल्याण के ध्येय में लग जाते थे। तभी तो संसार त्याग का महत्व समझ पाता था।

गोभद्र ने अपनी पत्नी और पुत्र को बुलाकर कहा—अब इस घर-संसार का भार तुम्हारे सुपुर्द है।

शालिभद्र यह सुनकर आश्चर्य मे पड़ गये। उन्होंने कहा—पिताजी! इसका क्या मतलब? मै आशय नहीं समझ सका।

गोभद्र—अब मै इस घर-संसार की देखरेख से निवृत्त हो रहा हूँ और सिर्फ अपनी आत्मा की देखरेख करूँगा। अर्थात् लोकोत्तर कल्याण साधने के लिए संसार छोड़कर

मुनि बनूगा।

पिता के वियोग से पुत्र को उदासी होना स्वाभाविक है। लेकिन क्या पुत्र का यह कर्त्तव्य है कि वह आजीवन पिता को बैल की तरह गृहस्थी की गाड़ी में जुता रक्खे? भद्रा और शालिभद्र समझदार थे। फिर भी इष्टवियोग के समय वज्र-सी कठिन छाती भी फटने लगती है। अतएव दुःखी हृदय से शालिभद्र ने कहा—पिताजी, क्या यह समय हमें छोड़कर जाने का है?

गोभद्र में आज कुछ अनोखी शांति और गम्भीरता है। उन्होंने कहा—एक दृष्टांत द्वारा उत्तर देना चाहता हूँ।

थोड़ी देर के लिए कल्पना करो, मैं बहुत कंगाल आदमी था। इतना दरिद्र था कि मेरे घर खाने को अन्न और पहनने को कपड़ा नहीं था। कंगाली के कारण स्त्री भी आदर नहीं करती थी। किसी पुरुष ने आकर मेरे सिर पर हाथ रक्खा और आशीर्वाद दिया। उसके आशीर्वाद से मैं सम्पत्तिशाली हो गया। अब वह सिद्ध पुरुष मुझसे कहता है—तुम्हारे पास सब कुछ हो गया है, अब आ जाओ। अब उस देने वाले को, जो उसने दिया है उसमें फँस कर, भूल जाना क्या उचित है? अगर ऐसा हुआ तो सम्पत्ति और संतति नरक का कारण ठहरेगी। क्या मुझे नरक में पड़ना चाहिए? जब मैंने देने वाले की शक्ति देख ली तो उससे मिल जाना उचित है, या यहीं पड़े रहना उचित है?

इसी राजगृह नगर में मेरा जन्म हुआ था। मेरे साथ बहुत-से जन्मे थे। उनमें कई मर गये, कई मार गये और कई दुर्भागी निकले। मतलब यह है कि मेरा सरीखा कोई न रहा। तू मुझे पिता मानता है तो मेरा भी कोई पिता होगा या नहीं? मैं उसी पिता को देख रहा हूँ। उसने आपत्ति में मेरी रक्षा की, मुझे सांसारिक दृष्टि से पूर्ण सुखी बनाया और आज मेरा नाम सारे राजगृह में आदर के साथ लिया जाता है। मुझे भद्रा जैसी पत्नी मिली। उसके साथ मेरा पवित्र जीवन बीता। यह कभी विलास में तन्मय नहीं हुई। भद्रा ने अपनी धर्मभावना से मुझे जो सुख दिया वह स्वर्ग में भी नहीं मिल सकता। लेकिन यह सब उसी अदृष्ट महा-पुरुष का प्रताप है। तुम्हारी माता को कभी चिन्ता नहीं हुई। सिर्फ एक बार पुत्र के लिए चिन्ता हुई थी। वह भी अपने सुख के लिए नहीं, किन्तु पति-ऋण से मुक्त होने के लिए। इसने अपने सुख की अपेक्षा धर्म को ही अधिक समझा है। उसी धर्मभावना से इसकी चिन्ता मिट गई और तुम्हारा जन्म हुआ। अब तुम्हीं सोचो कि उस धर्म-रूपी सिद्ध पुरुष की कितनी शक्ति है! उसी की कृपा से तुम्हारा और तुम्हारी बहिन का जन्म हुआ। सारांश यह है कि जो-जो इच्छा की, धर्म के प्रताप से पूरी हो गई। मैं एक ही पुत्रवधू चाहता था पर बत्तीस मिलीं। अगर धर्म सहायक न होता तो गोभद्र को कौन पूछता? जिसकी कृपा से यह

सब मुझे प्राप्त हुआ है, उसी को भेंटने के लिए मैं जाता हूँ तो क्या तुम्हारा रोकना उचित है ? जिसकी कृपा से सब प्रकार का गार्हस्थिक-सुख भोगा है उसे भूल जाना कृतघ्नता होगी।

उस सुख माथे सिल पड़े, नहि आवे हरि याद।
बलिहारी उस दुःख की, हरि से मिलावे हाथ॥

गोभद्र कहते हैं—शालिभद्र ! तुम्हारा बाप गड़हे में नहीं गिर रहा है। संयम लेना दुःख नहीं है किन्तु ईश्वर से मुलाकात करना है।

पिता के हृदय में त्यागभावना आने से पुत्र और पुत्र के हृदय में त्याग-भाव आने पर पिता घबरा जाता है। स्वार्थ-भावना ही इसका मूल है।

गोभद्र के समझाने से शालिभद्र, भद्रा, सुभद्रा और पुत्रवधुओं के नेत्रों में दिव्य ज्योति प्रकट हो गई। अभी तक उनका रोक रखने का जो विचार था वह शिथिल हो गया। सभी ने नजर नीची कर ली, मानो स्वीकृति तो नहीं दे सकते पर अस्वीकृति भी नहीं दे सकते।

गोभद्र कहने लगे—ईश्वर की जो कृपा अभी नहीं दिखी थी वह भी आज दिखाई दे गई। कुटुंब एक जाल है। कुछ भी हो, ऐसे अवसर पर कुटुम्बी जन आँसू बहाते ही हैं। लेकिन परमात्मा की अपरिमित अनुकम्पा से मुझे ऐसा कुटुंब मिला है कि सहज ही सब अनुकूल बन गये।

तत्पश्चात् गोभद्र ने अपनी पत्नी से कहा—भद्रा, यह पुत्र तुम्हारी गोद है। इसे अपना पुत्र न मानना, ईश्वर का पुत्र समझना।

पुत्रवधुओं से उन्होंने कहा—बहुओ! तुम भी ध्यान रखना। अपने इस पति को भोग का कीड़ा मत समझना। यह तुम्हारा नहीं परमपिता परमात्मा का है। तुम इसके पैरों की बेड़ी मत बनना। इसके मङ्गलमय महामार्ग में सहायक बनना, पोषक बनना।

और सुभद्रा! शालिभद्र तेरा वीर है। तू इसे सच्चा वीर बनाना। तुम्हारा पिता मर नहीं रहा है। धर्म तुम्हारा सच्चा पिता है। सावधान होकर उसकी सेवा करना।

इस प्रकार सब कुटुम्बी जनों को समझा-बुझा कर और नौकर-चाकरों को यथायोग्य सान्त्वना देकर गोभद्र सेठ संयम ग्रहण करने के लिए तैयार हुए। गोभद्र सेठ सभी नगरनिवासियों को प्रिय थे। अतः नगरवासी और कुटुम्बी जन उनके साथ रवाना हुए।

गोभद्र सेठ ने अपनी सांसारिक यात्रा का अंतिम संदेश इस प्रकार सुनाया-आप सोचते होंगे कि मै आज आप सब को त्याग रहा हूँ. लेकिन मेरी अन्तरात्मा ने संसार के निस्सार स्वरूप को समझ लिया है। विषयभोग मुझे विष से प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थित्ति में मुझे एक-एक क्षण भारी पड़ रहा है। सोचता हूँ—कब संसार का भार त्याग कर लघुता

,धारण करूँ ?

आप लोग घबराइए नहीं। मै आपको ऐसा तत्त्व बतलाता हूँ, जिसे जान लेने पर आपको कोई कष्ट ही नहीं हो सकता। मै आपको अब तक जो सुख न दे सका, जो काम आप अब तक न कर सके, उस काम को पार करने और उस सुख को प्राप्त करने का बल मै आज आपको दे रहा हूँ। संसार में जो दुःख हैं अधिकांश पारस्परिक द्वेष, कलह आदि से ही हैं। इन्ही दोषों का उपशमन करने के लिए राजा की स्थापना की जाती है। प्रजा आपस में लड़ती है तभी तो न्यायाधीश की और दूसरे अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती है। प्रजा न लड़े तो हाकिम की आवश्यकता ही न पड़े। मै आपके आपसी विवाद और कलह को दबाने का यथाशक्ति प्रयत्न करता था और इसी कारण आपको प्रिय था। आप लोग मुझे लक्ष्मी का स्वामी समझते थे। लेकिन आज तक मै आप सब के ऊपर ऐसी सत्ता नहीं चला सकता था, जैसी आज लक्ष्मी और परिवार को त्यागकर अकिंचन बनकर चला सकूँगा। कुटुम्ब और सम्पत्ति आदि को मै त्याग क्या रहा हूँ, समर्पण कर रहा हूँ। कैसे और किसे समर्पण कर रहा हूँ-

आज म्हारा संभव जिनजी का,
हित चित से गुण गास्यां राज।
दीना दयाल दीन बन्धव के,
खाना जाद कहस्यां राज, आज०।

तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने,

इन पर वेग रिझास्यां राज ॥आज०॥

मैं प्रभु के चरणों मे तन, धन और प्राण समर्पण कर रहा हूँ।

'शालिभद्र ! मेरे इस निष्क्रमण और समर्पण को याद करके समझना कि हमारा रक्षक और पिता कौन है? मै तुम सब को छोड़ता नहीं हूँ बल्कि हिफाजत में रख जाता हूँ। मै जिसकी शरण में जा रहा हूँ वही सब शरणों का शरण है। उसी की शरण सच्ची शरण है। तुम भी उसी की शरण में रहना।

'भद्रा ! तुम भी उसी त्याग की शरण में रहना, जिस त्याग की शरण में तुम्हारा पति जा रहा है। जिन स्त्रियों के पति बुरे आचरण करके मरे हैं, वे स्त्रियाँ रोवे तो भले रोवे, तुम्हें रोने की आवश्यकता नहीं है। मै उस शरण को प्राप्त कर रहा हूँ जिसका मिलना साधारण बात नहीं है।'

'पुत्रवधुओ ! मै अब तुम्हें छोटे श्वसुर की शरण में न रख कर बड़े 'श्वसुर' की शरण में रखता हूँ और उससे तुम्हारी पहिचान कराता हूँ। उस 'श्वसुर' का ध्यान करने से ही तुम्हारा मङ्गल होगा।

'राजगृही के सन्नागरिको ! अब तक मै यथासंभव आपको परामर्श देता रहा हू। अब इस त्यागवृत्ति को अपना कर भी आपका पथ प्रदर्शन कर रहा हूँ। आप अधिक न कर सकते हों तो कम से कम इतना अवश्य करना कि धन-सम्पत्ति के लिए अन्याय मत करना। गरीबों पर दयाभाव रखना। जब

सम्पत्ति ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य की असली सम्पत्ति तो संयम, सहानुभूति, अनुकम्पा परोपकार आदि दिव्य गुण है। इनकी उपेक्षा मत करना। इनका त्याग करके जड़ संपत्ति को मत ग्रहण करना। आप इतना करेंगे तो आप सम्पत्ति के स्वामी बनें। अगर आपको मैं प्रिय रहा हूँ तो आप उसे मत भूलना जो मुझे प्रिय है—मै जिसकी शरण ग्रहण कर रहा हूं।'

गोभद्र की हृदय से निकली हुई भावभरी वाणी सुनकर सब लोग हर्षित हुए। सब उनकी प्रशंसा करने लगे और अपनी दुर्बलताओं के लिए अपने को धिक्कारने लगे। एक ने कहा—गोभद्र सेठ तो अपनी अखूट सम्पत्ति और सुशील परिवार को भी त्याग कर अनगार बन रहे है; और एक हम है जिनसे रात्रिभोजन का भी त्याग नहीं हो सका है! हम लोग अभी तक झूठ-कपट आदि मोटे-मोटे दुर्गुणों को भी नहीं छोड़ सकते!

सब लोगों के साथ-साथ सेठ गोभद्र, भगवान् महावीर के पास मे पहुँचे। भगवान् के निकट पहुँच कर सेठजी भगवान् के चरणों मे गिर पड़े। यह देखकर साथ के लोग गद्गद हो गये। भावों की तीव्रता के कारण सब को रोमाञ्च हो आया। गोभद्र सेठ का आत्मसमर्पण देखकर सब विह्वल हो गये। सब ने एक स्वर से कहा—गोभद्र सेठ धन्य हैं! इनका जीवन सफल है, सुफल है।

शालिभद्र, भद्रा, सुभद्रा, धन्ना सेठ और पुत्रवधुओं की दृष्टि गोभद्र सेठ पर ही जमी हुई थी। देखते-देखते सेठजी ने सब वस्त्राभूषण उतार दिये और अपने ही हाथों अपने सिर के बालों का लोच करने लगे। इसके बाद उन्होंने मुनि का परम पवित्र वेष धारण करके, भगवान् महावीर की शरण में जाकर भगवान् से प्रार्थना की—'प्रभो! मुझे तारो। आपके सिवाय कोई दूसरा तारनहार नहीं दिखाई देता।'

इस प्रकार कहकर गोभद्र ने संयम अंगीकार किया। बहुत समय तक व्रत और संयम का निरतिचार पालन करके, अंत में सल्लेखना करके शरीर का त्याग किया। शरीर त्याग कर वह देव हुए।

प्रश्न उठ सकता है कि गोभद्र सेठ के संयम ले लेने से संसार का क्या भला हुआ? संसार में रहकर उन्होंने बहुत-से भलाई के काम किये और आगे भी कर सकते थे। मगर मुनिजीवन स्वीकार कर लेने से जगत् का क्या उपकार हुआ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि मुनि बनकर उन्होंने कितनों का कल्याण किया, इसका कोई हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता। संयम पालने वाले की वाणी से और मन से जो आनन्द होता है, वह आनन्द चक्रवर्त्ती भी नहीं दे सकता। संयमी पुरुष तप और त्याग का असली आदर्श उपस्थित करता है और जनता पर उसका जितना प्रभाव पड़ता है, उतना प्रभाव हजार उपदेशकों का—जिनके

जीवन में संयम नहीं है, जो कोरा वाणीविलास करते हैं—नहीं पड़ सकता। संयमी साधु मानव-जीवन की उच्चतम अवस्था का वास्तविक चित्र उपस्थित करते हैं, तप-त्याग की महिमा प्रदर्शित करते है और उन पवित्र भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके सहारे जगत् टिका हुआ है और जिनके अभाव में मनुष्य, मनुष्य मिट कर राक्षस बन जाता है। साधुओं द्वारा होने वाला संसार का यह लाभ कुछ कम नहीं है—बहुत अधिक है। विवेकशील पुरुष ही इस लाभ के मूल्य को भलीभाँति आँक सकते हैं।

गोभद्र सेठ का व्यापार-व्यवहार मामूली नहीं था। वह राजगृह के प्रतिष्ठित पुरुष थे। अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के साथ ही साथ उन पर अन्य कुटुम्बों का भी उत्तरदायित्व था। दीक्षा ले लेने के बाद वह सारा उत्तरदायित्व शालिभद्र के कन्धों पर आ गया। विशाल उत्तरदायित्व आ जाने पर शालिभद्र ने क्या क्या विचार किये होंगे और किस प्रकार जीवन का परिवर्त्तन किया होगा, यह बात अपने ही अनुभव से समझी जा सकती है। फिर भी विनीत शालिभद्र ने कभी अपने पिता को मन से भी उलाहना नहीं दिया। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मेरी यह अवस्था तो भोग के योग्य थी किन्तु इस अवस्था में ही मुझ पर इतना भारी बोझा डाल दिया गया।

इस प्रकार झुंझलाहट भरे विचार आने से व्यावहारिक

जीवन में भी त्रुटि होती है और आध्यात्मिक जीवन में भी। लक्ष्मी के लिए पुत्र से झगड़ने वाले और पुत्र पर दबाव डालने वाले पिता संसार में बहुत मिल सकते हैं परन्तु ऐसे पिता विरले ही मिलेंगे जो अपना सर्वस्व त्याग कर पिता होने के साथ ही गुरु भी बन जाते हैं। शालिभद्र सुसंस्कारी और समझदार थे। उन्होंने यही सोचा—'मेरे पिता धन्य हैं। उन्होंने मेरे सामने बड़े त्याग का आदर्श उपस्थित किया है। उनके साथ मेरा पिता-पुत्र का अमिट सम्बन्ध तो है ही गुरु-शिष्य का नवीन सम्बन्ध भी हो गया है। वह सदैव मेरे हृदय में वास करते रहें। हृदय में उनका वास होने से पाप आने के सब द्वार बन्द हो जाएँगे।'

पापों का आना कैसे बन्द हो जायगा?

पाँच-सात मिल सहेलियाँ रे, हिलमिल पानी लाएँ।
ताली दे खड़खड़ हँसें, बाको चित्त गगरिया माथैं॥
मना ऐसे जिन चरणों चित्त लाय,
अरिहन्त के गुण गाय॥ मना०॥

पाँच-सात पनिहारिनें साथ मिलकर पानी भरने जाती हैं। वे आपस में एक-दूसरी के हाथ पर हाथ भी मारती हैं, हँसी-ठट्ठा भी करती हैं, मगर उनको ध्यान यही रहता है कि कहीं हमारा घड़ा नीचे न गिर जाय। इसी प्रकार शालिभद्र अपने घर में रह कर खाता है, पीता है, व्यापार-व्यवसाय भी करता है फिर भी उसका ध्यान अपने पिता में ही रहता है। जैसे

चित्तवृत्ति अरिहंत भगवान् में लग जाने पर दूसरी ओर नहीं जाती, उसी प्रकार शालिभद्र को अपने पिता का ध्यान होने से दूसरा ध्यान नही होता। और जब दूसरा ध्यान ही नहीं होता तो पाप कैसे हों ?

इस प्रकार खाते-पीते उठते-बैठते या कोई भी क्रिया करते समय शालिभद्र के हृदय में गुरु के रूप में पिता का निवास था। वह यही कहा करते थे कि पिताजी ! आप धन्य हैं। आपने मेरे सामने जो आदर्श उपस्थित कर दिया है, उसके कारण संसार की यह वस्तुएँ मुझे कभी दबा नहीं सकतीं।

गुरु के रूप में पिता का ध्यान रखने से क्या लाभ होता है, यह शालिभद्र के चरित से सीखा जा सकता है।

१२

ऋद्धि की वृद्धि

———:::():::———

गोभद्र मुनि तपस्या के फल स्वरूप देवलोक में उत्पन्न हुए। उनके वहाँ जनमते ही सामानिक देवों ने 'खमा' 'खमा' की ध्वनि करके उनका अभिवादन किया। उन्होंने पूछा—आपने क्या दान दिया था? क्या तप किया था? क्या सुकार्य किया था? जिससे कि आप हमारे यहाँ पधारे हैं?

देवलोक पहुँच कर शालिभद्र के पिता ने अवधिज्ञान से जाना कि मेरे पुत्र के हृदय में मैं ही बस रहा हूँ। ऐसे विनीत पुत्र को किसी दूसरे का आश्रित नहीं बनने देना चाहिए। संसार में बहुतों के गले घोटने से किसी एक का भला होता है। मेरा पुत्र भी कहीं इस प्रकार के पाप में प्रवृत्त न हो जाय! जो पुत्र त्याग की इतनी सराहना करता है, उसे मैं ऐसी शक्ति क्यों न दूँ कि वह संसार का सुख भी भोग सके और संसार से उसी प्रकार निकल भी जाय, जिस प्रकार मक्खी मिश्री का स्वाद लेकर उड़ जाती है।

मित्रो ! देवों को प्रसन्न करने का तरीका यही है। धर्म में मन लीन रहने से ही देव आपके वश में हो सकते हैं। मन पाप में डूबा रहे और देवों की सहायता की इच्छा की जाय, तो देव आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे।

कवि कहता है—सुपात्रदान का मङ्गल देखो कैसा होता है। संगम में कैसी धीरता और गंभीरता थी कि उस स्थिति में भी उसने खीर का दान दिया और फिर किसी से यहाँ तक कि अपनी माता से भी उसका जिक्र नहीं किया। इस प्रकार की धीरता और गम्भीरता से ही देव प्रसन्न होते हैं। इसी का फल है कि शालिभद्र होकर भी उसने ऋद्धि और सम्पदा को विकार समझ रक्खा है। वास्तव में चाह करने से धन नहीं आता। हृदय में त्याग की भावना हो तो लक्ष्मी दौड़कर चली आती है।

शालिभद्र पर आज देव की कृपा है। यह देवकृपा तो सुपात्रदान का फल ही है। उसका फल तो अनन्त, अक्षय, अव्याबाध सुखों से सम्पन्न मुक्ति है देवरूप गोभद्र परोक्ष रूप से शालिभद्र के सुखों की पूर्तिकरने लगा। मगर शालिभद्र को इस बात का पता नहीं था।

शालिभद्र के यहाँ खेतीबाड़ी आदि की जो संपदा थी वह दैवी कृपा से अनेक गुणी फल देने लगी। शालिभद्र की लक्ष्मी भी पहले से कई गुणी बढ़ गई।

अब देखना चाहिए कि लक्ष्मी किसे कहते हैं ? साधारण जन समझते हैं कि लक्ष्मी कल्दार को अर्थात् सिक्के को कहते हैं। लेकिन वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो सिक्का लक्ष्मी नहीं, लक्ष्मी का नाशक है। लक्ष्मी वह है जिसे पाकर मनुष्य स्वतन्त्र बनता है। लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर मनुष्य कर्त्तव्य का स्वामी बनता है और उसके भीतर ऐसी क्रिया जागती है कि लक्ष्मीपति कहलाता है और सन्मान का भागी होता है। मगर सिक्के का प्रचलन आपको स्वतन्त्र बनाने के लिए नहीं वरन् परतन्त्र बनाने के लिए है। बहुत प्राचीन काल में वस्तुओं का परस्पर में विनिमय होता था। लोग अपने पास की एक चीज देकर दूसरे के पास की दूसरी चीज़ ले लेते थे। उस समय सिक्का नहीं था। सिक्के के अभाव में लोगों में संग्रह-शीलता नही थी। उतना ही संग्रह किया जाता था जितने की आवश्यकता होती थी। संग्रह होता था सिर्फ अनाज का। कदाचित् आवश्यकता से अधिक कोई रखता भी तो एक साल, दो साल या बहुत हुआ तो चार साल। लेकिन आज-कल लोग अनाज का कितना संग्रह करते हैं और सिक्के का कितना ? अनाज का संग्रह नहीं के बराबर और सिक्के के संग्रह का कोई हिसाब ही नहीं। सिक्का-संग्रह की लोलुपता आज बेहद बढ़ गई है और इसी लोलुपता की बदौलत समाज में विषमता का विष व्याप गया है। इस विषमता के विष के कारण आज सर्वत्र अशांति की ज्वालाएँ लपलपा रही हैं और

वर्गयुद्ध छिड़ा हुआ है। इस प्रकार जिस सिक्के ने मनुष्य-समाज को मुसीबत में डाल दिया है उसे लक्ष्मी का पद कैसे दिया जा सकता है?

लोग सिक्के के आदी हो गये हैं और इसी कारण कहते हैं कि सिक्के के बिना विनिमय में सुभीता नहीं होता और व्यापार नहीं चल सकता। मगर देखना चाहिए कि सिक्के के निर्माणकर्त्ता ने विनियोग की दृष्टि से सिक्का चलाया है या आपको गुलाम बनाये रखने के लिए? अगर विनियोग की दृष्टि से सिक्का चलाया गया है तो उसकी सत्ता किसके हाथ में होनी चाहिए? व्यापार आप करें, विनिमय आपको करना पड़े और सिक्के की सत्ता सरकार के हाथ में हो!

शास्त्र में लक्ष्मी की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

> खित्तं वत्थु हिरण्णं च पसवो दासपोरुसं।
> चत्तारि कामखंधाणि तत्थ से उववज्जई॥
>
> —श्री उत्तराध्ययनम् अ. ३।

आज आप जिसे लक्ष्मी मान रहे हैं उस लक्ष्मी की कृपा से कितने परतंत्र हुए हैं, इस बात का जरा विचार कीजिए।

भगवान् महावीर कहते हैं कि पहली लक्ष्मी खेत है। कहा जा सकता है कि खेत लक्ष्मी कैसे है? लक्ष्मी तो रुपया है। मगर लोगों ने जिस दिन से यह उलटा हिसाब लगाना सीखा है, उसी दिन से वे निराधार बन गये हैं। कलदारों को उड़ते देर नहीं लगती पर खेत कहीं नहीं जा सकते। कदा-

चित् चोर चोरी कर ले या दुष्काल पड़ जाय तो एक या दो फसल की हानि हो सकती है. मगर खेत तो आखिर फल देगा ही।

आज यह माना जाता है कि खेत का मालिक राजा है और शास्त्र कहता है कि खेत का मालिक कृषक है। मैं पूछना चाहता हूँ कि खेत में खेती करता कौन है-राजा या किसान? किसान बेचारा खेत जोतता और बोता है और उत्तम परिश्रम करता है. चोटी से एड़ी तक पसीना बहाता है, सर्दी-गर्मी और धूप-वर्षा की परवा न करके रात-दिन खेती के काम मे जुटा रहता है। उसका तो खेत नही और जो मसनद के सहारे गद्दों पर लेटा रहता है. गुलछर्रें उड़ाता है. कभी खेत की सूरत भी नहीं देखता, उसका खेत माना जाता है! यह कैसा विचित्र न्याय है! शास्त्र कहता है कि खेत उसीका है जो खेती करता है। कर्मभूमि उसी की है जो स्वयं उसमें कार्य करता है।

दूसरी लक्ष्मी वत्थु (वास्तु) है। वास्तु का अर्थ है—मकान आदि। तीसरी लक्ष्मी हिरण्य अर्थात् सोना है। (यह ध्यान में रखना चाहिए कि सोने को तो लक्ष्मी माना है मगर सिक्के को नहीं) पशु और दास भी सम्पत्ति में माने गये हैं।

शालिभद्र के घर यही लक्ष्मी थी जो देवकृपा से लाखगुणी हो गई। जो पुरुष जिस कार्य में नियुक्त थे, उनमें ऐसी शक्ति आ गई कि उनके प्रयत्न से मन की जगह मानी भर चीज़

पैदा होने लगी।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि शालिभद्र की ऋद्धि शालिभद्र के ही पास रही या कुटुम्बियों के काम में भी आई ? यह पहले ही कहा जा चुका है कि शालिभद्र की ऋद्धि ऐसी नहीं थी कि भण्डार में भर दी जाती। वह तो ऐसी ऋद्धि थी कि निपजे तो सब खावे। अन्न निपजे तो मनुष्य खावें और घास निपजे तो पशु खावें।

जब सेठ गोभद्र ने दीक्षा ली तो लोग कहते थे कि शालिभद्र अभी बालक है और भोला है। इसलिए यह तो खाता-पीता और मौज ही करता रहेगा। पत्नियाँ भी इसके यहाँ एक नहीं, बत्तीस हैं। एक पत्नी वाले को ही अपने आपकी खबर नहीं रहती तो इससे हमारा प्रतिपालन क्या होगा ! लेकिन शालिभद्र की बढ़ी हुई ऋद्धि देखकर लोग चकित हो गये। कहने लगे—'शालिभद्र भाग्यशाली है। इसे देव सहायता करते हैं।' शालिभद्र से कदाचित् कोई चर्चा करता तो वह उत्तर देता—'यह सब पिताजी का प्रताप है। धर्म में कमी न हो तो किसी बात की कमी नहीं हो सकती।'

इस प्रकार सुपात्रदान के प्रभाव से शालिभद्र की ऋद्धि बढ़ गई और देव उसका सहायक हुआ। देव की वैक्रिय लब्धि ऐसी होती है कि वह अपनी एक भुजा से कई जम्बूद्वीप बना सकता है। उसकी एक भौंह पर बत्तीस नाटक हों, ऐसी उसकी शक्ति होती है। जितने समय में हम एक कदम

चलते हैं उतने समय में देव सिर काटकर, उस सिर का चूरा करके और फिर उसके पुद्गलों को विखेर कर पीछे एकत्र करके फिर सिर बना सकता है। आजकल के डाक्टर भी सिर उतार कर, ऑपरेशन करके सिर जोड़ सकते हैं, स्त्री के गर्भ को बकरी के पेट मे रख सकते हैं, तो देव की शक्ति तो लोकोत्तर शक्ति है ! उसके आश्चर्यजनक कामों का क्या कहना है ?

शालिभद्र को उसके पिता रूपी देव की जो शक्ति प्राप्त हो रही है, वह कवि के कथनानुसार सुपात्रदान की ही शक्ति है। इस शक्ति को आप भी प्राप्त कर सकते हैं, मगर चाहिए बिना कामना के सुपात्रदान देने की आन्तरिक भावना। सब देव आपके ही भीतर मौजूद हैं, लेकिन पर्दा खुले तब पता चले।

देव ने शालिभद्र की ऋद्धि का विस्तार लाख गुना कर दिया। लाखगुना कहना तो आलंकारिक भाषा है। इसका आशय यह है कि उसकी ऋद्धि पहले से बहुत बढ़ गई थी। तात्पर्य यह है कि शालिभद्र की खेती में पहले जो दोष थे, उन्हें देव ने दूर कर दिया। लोग तो रुपया-पैसा बढ़ाना चाहते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि रुपया-पैसे का बढ़ना गुलामी का बढ़ना है और अन्न का बढ़ना स्वतंत्रता का बढ़ना है।

शालिभद्र के खेतों में बहुत उन्नति हो गई और खेतों में उन्नति होने से उसकी शारीरिक शक्ति भी बढ़ गई। उसकी यह ऋद्धि पुण्यानुबंधी पुण्य की ऋद्धि है। इसलिए उसके द्वारा शालिभद्र स्वयं आनन्द में रहता है और दूसरों को भी आनन्द

पहुँचाता है। अपने जिस खाने से दूसरों को कष्ट पहुँचे उसे पापानुबंधी पुण्य समझना चाहिए। दूसरे का भोजन छीनकर आप खा जाना वस्तुतः पुण्य नहीं कहा जा सकता। दूसरों को रूखी रोटियाँ भी न मिलें और आप बादामपाक उड़ावें, यह कैसे उचित हो सकता है? मित्रो! भगवान् महावीर का आपके ऊपर जो ऋण चढ़ा है, उसे चुकाइए और पुण्य की पूंजी से पाप मत कमाइए।

इतनी ऋद्धि बढ जाने पर भी कभी शालिभद्र ने अभिमान नहीं किया; बल्कि वह यही सोचता रहा कि मैंने पूर्वभव में सुपात्रदान नहीं दिया और सुकृत नहीं किया है। लेकिन लोग जरा-सी गुलामी की सम्पदा पाकर अपने को पुण्यात्मा समझ बैठते हैं और अभिमान के पुतले बन जाते हैं। शालिभद्र के विचारों को देखते हुए आपको कितना पश्चात्ताप करना चाहिए?

शालिभद्र के घर अन्नरस बढ़ने से कितनों ही को लाभ पहुँचा। यह सब सुखशांति एक व्यक्ति के सुपात्रदान का फल था। एक कामधेनु के दूध का उपभोग सिर्फ एक ही मनुष्य नहीं करता। उससे न जाने कितने लाभ उठाते हैं।

लोग गहनों और कपड़ों के लिए दूसरों को सताते हैं। पर शालिभद्र की बात न्यारी थी। शालिभद्र और उसकी बत्तीस पत्नियाँ जैसे ही नहा चुकतीं कि उसी समय ३३ पेटियाँ गहनों और कपड़ों से भरी हुई उसके यहाँ उतर आतीं और

प्रत्येक में नौ-नौ आभूषण निकलते थे। एक पेटी पर शालिभद्र का और बत्तीस पेटियों पर उसकी बत्तीस पत्नियों के नाम अंकित रहते थे। यह सब दैवी कृपा थी जो शालिभद्र को सुपात्रदान के फल स्वरूप प्राप्त हुई थी।

सचमुच वे पुरुष धन्य हैं जिन्होंने पूरी तरह पुण्य का आचरण किया है और सुपात्र को दान दिया है। ऐसे पुरुष अपने प्रत्येक कार्य से दूसरों को सुख पहुँचाते हैं। अपने लाभ के लिए स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले पुण्यात्मा नहीं कहलाते। शालिभद्र को पुण्यशाली इस कारण कहा गया है कि उसकी बदौलत दूसरों को सुख-शांति प्राप्त होती थी।

कवि का कथन है कि आप इन पेटियों का विचार करके ललचाओ मत, वरन् पात्रविशेष का ज्ञान करो और उसका पोषण करो। दान के लिए पाँच प्रकार के पात्र बतलाए गए हैं—उत्तम, मध्यम, जघन्य, पात्रापात्र और कुपात्र। इनका अर्थ समझ कर उत्तम पात्र का पोषण करो। उत्तम पात्र मुनि हैं, मध्यम पात्र श्रावक है, जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टि हैं, पात्रापात्र में लँगड़े-लूले आदि आते है और कुपात्र वह हैं जो खाकर मस्ती करते हैं। अगर उत्तमपात्र का संयोग मिल जाय तो कहना ही क्या है! कल्पना कीजिए, आपके यहाँ जवाहरात की दुकान है। उस में छोटे हीरे भी हैं और बड़े हीरे भी हैं। अगर छोटे हीरे का ग्राहक आ जाए तो आप उसे देंगे या नहीं? अवश्य देंगे। लेकिन भावना तो यही रहेगी कि

बड़े हीरे का ग्राहक आ जाता तो अच्छा रहता। इसी प्रकार उत्तमपात्र मुनि आवें तब तो अच्छा ही है, मगर खाने-पीने में दुखी और दीन की भावना होना भी कम बात नहीं है।

भक्त कहता है:—

> किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा।
> युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ ॥
> निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके ।
> कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥

अर्थात्—हे नाथ ! रात को प्रकाश देने वाले चन्द्रमा की और दिन में प्रकाश करने वाले सूर्य की आवश्यकता नहीं। मुझे तो केवल तेरे मुखकमल की ही जरूरत है। चन्द्र और सूर्य अंधकार का नाश करते हैं और तेरा मुख-कमल भी अंधकार का नाश करता है। फिर तुझे छोड़कर मैं उन्हें क्यों चाहूँ ? खेती निपजाना हो तो पानी की माँग की जाय, पर जब खेती निपज गई हो तो पानी माँगने से क्या लाभ है ? इसी प्रकार तू मिल गया तो दूसरे को क्यों पुकारूँ ?

भक्ति का यह उदाहरण इसलिए दिया गया है कि सुपात्र मिल जाने पर दूसरे को पुकारने की आवश्यकता नहीं रहती। जिसे भगवान् मिल जावें, वह सूर्य-चन्द्र को अधिक क्यों माने ? इसलिए भक्तजन कहते हैं—त्रिलोकीनाथ के सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। त्रिलोकीनाथ मिल जाएँ तो दूसरों को दुखी करके मुझे जो सम्पत्ति लेनी पड़ती है सो

मेरा यह पाप कट जाए। सूर्य और चन्द्रमा का उदय होने से किसी को सुख भी होता है और किसी को दुःख भी होता है। लेकिन भगवान् के मुखकमल से किसी को दुःख नहीं होता। इसी प्रकार सुपात्र का पोषण करने से किसी को दुःख नहीं होता, सुख ही सुख होता है।

शालिभद्र के यहाँ प्रतिदिन तेतीस पेटियाँ उतरती हैं। इन तेतीस पेटियों में जितने आभूषण होते हैं, उतने आभूषण अगर कोई कमाने जावे तो उसे न मालूम कितनों की गर्दन मरोड़नी पड़े। और यह भी निश्चित नहीं कि बहुतों की गर्दन मरोड़ने पर भी इतना मिल ही जाएगा ! लेकिन शालिभद्र को बिना पाप किये ही यह सब मिल रहा है। यह सुपात्रदान का ही फल समझना चाहिए।

यहाँ बहिनें प्रश्न कर सकती हैं कि जब शालिभद्र की स्त्रियाँ गहने पहनती थीं तो हमारे गहनों की टीका—टिप्पणी क्यों की जाती है ? उन्हें सोचना चाहिए कि शालिभद्र की स्त्रियों के गहनों के लिए किसी गरीब की गर्दन नहीं मरोड़ी जाती थी। आप अपनी बँगड़ी से पूछो कि वह कैसे आई है ?

एक व्यापारी देश की दरिद्रता बढ़ाने वाला व्यापार करता है और दूसरा दरिद्रता को दूर करता है। इन दोनों में कौन अच्छा है ?

'दरिद्रता दूर करने वाला।'

भारतवर्ष आपकी जन्मभूमि है। आप यहीं के अन्न-जल

से पले हैं। फिर भी आप देश के हित-अहित का विचार नहीं करते और देश-हित की उपेक्षा करके अपने व्यक्तिगत हित की चिन्ता में डूबे रहते हैं। आप समझते हैं कि हम तो मौज करने के लिए ही पैदा हुए हैं। मगर जन्म तो शालिभद्र का है जो स्वर्ग की सम्पत्ति को अपने घर खींच लाया है!

शालिभद्र के लिए प्रतिदिन ऐसा सेहरा आता है जो करोड़ों की कीमत में भी यहाँ कहीं नहीं मिल सकता। उसमें जड़ी हुई मणियाँ आपस मे होड़ करके चमकती हैं।

आप दीपक को देखकर सोचते होंगे कि यह प्रकाश उसकी लौ का है। परन्तु वह लौ तेल से पैदा हुई है या विना तेल के ही?

'तेल से ही पैदा हुई है!'

प्रकाश तो अग्निकाय के जीवों का है; मगर उन्हें सहायता किसकी है?

'तेल की!'

यहाँ शालिभद्र के सेहरे पर जो मणियाँ चमकती हैं; सो वास्तव में मणियाँ नहीं वरन् सुपात्रदान चमक रहा है। उन मणियों को देखकर लोग कहते है कि यह तो हजारों गरीबों का गला काटने पर भी नहीं मिल सकते लेकिन शालिभद्र को सुपात्रदान के प्रभाव से अनायास ही मिल रहे हैं।

शालिभद्र प्रतिदिन सवेरे उसे उसी प्रकार उतार देता है जैसे फूलमाला उतार दी जाती है। जैसे उतारी हुई फूलमाला

फिर नहीं पहनी जाती, उसी प्रकार शालिभद्र उस अनमोल सेहरे को प्रतिदिन दूसरों को दे देता है। जब कोई नहीं लेता तो वह भंडार में डाल दिया जाता है। इस प्रकार शालिभद्र का भंडार ऐसा भरा हुआ है, जैसा चक्रवर्त्ती का भी नहीं होगा।

यह सब सुपात्रदान की महिमा है। लक्ष्मी उसी का आश्रय लेती है जो स्वामी बनकर उसका पालन करे। दास बनने वालों पर लक्ष्मी पूरी तरह नही रीझती। और लक्ष्मी का स्वामी बनने का अर्थ यही है कि उससे दूसरों की सेवा की जाय। सुपात्रदान देना, परोपकार में उसका व्यय करना, आसक्ति न रखना, यह लक्ष्मीपति के लक्षण हैं।

शालिभद्र का चरित्र उच्च आदर्श उपस्थित करता है। बड़ी कठिनाई से रो-धो कर उसने जो खीर पाई थी उसे निस्पृह भाव से, हृदय में तनिक भी संकोच न रखते हुए, उसने मुनि को अर्पित कर दी। एक बालक के लिए ऐसा करना कठिन है। लेकिन संगम असाधारण बालक था। यही कारण है कि वह शालिभद्र के रूप में अवतरित हुआ और वहाँ उसने वह सब पाया जो बड़े से बड़े सम्राट् के लिए भी दुर्लभ है। इस चरित पर विचार करके जो भव्य पुरुष सुपात्रदान देगा और अपनी वस्तुओं को परहित में लगाएगा, उसका कल्याण होगा।

शालिभद्र का विवेक

——:·::()::·:——

रजोगुण और तमोगुण की शक्ति का फल चर्मचक्षुओं से दिखाई देता है। अतएव आत्मा यह समझ लेता है इससे आगे कोई शक्ति नही है। लेकिन उससे भी परे की, तीसरी सतोगुण की शक्ति की ओर लक्ष्य दोगे तो मालूम होगा कि वह कितनी जबर्दस्त और अद्भुत है। संसार के सब झगड़े रजोगुण और तमोगुण तक ही पहुँच पाते हैं—सतोगुण तक नहीं पहुंचते। किन्तु जो उस अव्यक्त शक्ति के दर्शन कर पाता है, उस शक्ति तक जिसकी पहुँच हो जाती है, उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है।

संसार शालिभद्र को रजोगुण और सम्पत्ति-वैभव में डूबा देखता है। कथा सुनते समय भी यही जान पड़ता है कि यह सब भोगलीला है। शालिभद्र और उसकी पत्नियों के शृंगार का वर्णन सुनकर सांसारिक और शृंगारप्रिय लोग होकर प्रसन्न अभिलाषा करते हैं कि हमें भी वैसी ही शृंगार की सामग्री

मिले। लेकिन क्या यह भावना धर्मयुक्त है ? इस प्रकार की भावना उत्पन्न करने वाली कथा धर्मकथा न होकर तृष्णा बढ़ाने वाली कथा क्यों न ठहरी ? लेकिन शालिभद्र अगर भोगों में डूबा हुआ ही अपना जीवन व्यतीत कर देता तो उसे बड़ी जोखिम उठानी पड़ती। जैन साहित्य की कथाएं भोग का तिरस्कार करके उस वैराग्य तक पहुँची हैं, जिसकी संसार को बड़ी जरूरत है।

शालिभद्र के पिता ने दीक्षा लेकर और अन्त समाधि तक पहुँचकर शालिभद्र को असाधारण रूप से सम्पन्न बना दिया। उनमें वीतराग समाधि तो नहीं आई लेकिन सराग समाधि में स्वर्ग तक गये और वहाँ से प्रतिदिन तेतीस पेटियाँ शालिभद्र के घर भेजने लगे।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह मोह नहीं है ? मेरे विचार से यह मोह नहीं, वरन् मोह जीतने का मार्ग है। 'मेरा बेटा सुकुमार है' 'मेरा बेटा भोला है' यह सोचते-सोचते गोभद्र सेठ अगर आजीवन गृहस्थी में पड़े सड़ते रहते तो वह संसार को यह दिखा जाते कि संसार में बेटा-पोता ही सब कुछ है। मगर गोभद्र ने विशाल ऋद्धि त्याग कर संसार को त्याग का महत्व दिखाया और संयम प्राप्त किया। इससे वह महान् बलिष्ट हो गये। उस बल से प्रेम की जागृति होने पर शालिभद्र को गहने-कपड़े दिये। अगर यह मोह माना जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरी योनि में जाते तो

संदूक और बूट आदि उसी चमड़े के बने हुए काम में लाना कितनी निर्दयता है ! जरा विचार तो करो कि इन वस्तुओं के निमित्त कितने पशुओं का चमड़ा क्रूरता के साथ उतारा जाता है !

शालिभद्र कहता है—जो आभूषण चक्रवर्त्ती के लिए भी दुर्लभ हैं, उन्हें हम प्रतिदिन निर्माल्य करके फैंक देते हैं और हमारे यहाँ मोरी में कस्तूरी बहती है। यह सब पिताजी की धर्माराधना का प्रताप है। इस प्रकार की दिव्य वस्तुएँ देने वाले का ऋण न चुकाना चोरी होगी।

कुछ लोग कहते हैं—सबका बदला किस प्रकार चुकाया जा सकता है ? पानी, पेड़, पृथ्वी आदि के उपकार का बदला उन्हें कैसे दिया जाय ? वे कुछ लेते तो हैं नहीं। मगर आपको जिनसे सहायता मिलती है वे सहायता देने वाले पदार्थ दाता हैं और आप सहायता लेने वाले हैं। ऐसी हालत में जब सहायता का बदला देने का अवसर उपस्थित हो तो सहायता देनी चाहिए अथवा छिप कर बैठ रहना चाहिए ?

बदला देने का अभिप्राय यह नहीं है कि आप पानी से सहायता लेते हैं, इस कारण पानी को ही उसका बदला चुकावें। जैसे एक सेठ की एक दुकान से लिया हुआ रुपया उसकी दूसरी दुकान पर जमा करा देने से कर्ज़ चुक जाता है, उसी प्रकार एक से सहायता लेकर दूसरे को सहायता

देने से भी बदला चुक जाता है। अगर कोई आदमी यह कहता है कि मैंने जिस दुकान से रुपया लिया है, उसी दुकान पर रुपया दूँगा, दूसरी पर नहीं; तो ऐसा कहने वाला क्या बहानेबाज नहीं कहलाएगा? इसी प्रकार स्थावर जीवों से सहायता लेकर अगर त्रस जीवों को उतना बदला चुका देते हो तो आपकी आत्मा निर्मल बनेगी।

त्रस जीवों के भी भेद करके जो आपके ज्यादा नज़दीक हैं, उन पर पहले ध्यान दे सकते हो और वहीं से बदला देना आरंभ कर सकते हो। इस प्रकार अंतिम श्वास तक कर्ज़ चुकाते रहना चाहिए। अधिक न कर सको तो पाँच बातों से भी कर्ज़ चुका सकते हो। वे पाँच बातें यह हैं—बंध, वध, छेद, अतिभारारोपण और अन्न-पानी समय पर न देना। किसी पशु को कसकर बन्धन से बाँध देना, उसे मारना-पीटना, उसकी चमड़ी का छेदन करना, शक्ति से अधिक बोझा लादना और समय पर उसे खाना-पीना न देना; यह पाँच बातें त्याग कर आप अपना कर्ज़ चुका सकते हैं।

गाढ़ बन्धन में बाँधने से तो अहिंसा-व्रत टूटता है, परन्तु खोलने से भी क्या व्रत का भङ्ग हो जाता है?

'नहीं!'

लेकिन तेरहपंथियों का कथन है कि दया करके कोई साधु किसी पशु को अगर छोड़ देता है तो उस साधु को

चौमासी प्रायश्चित्त आता है तो श्रावक को पाप क्यों नहीं लगेगा? यह निर्दयता सिखलाने का मार्ग है!

शालिभद्र कहते हैं—संसारबन्धन को ढीला करके कर्ज़ चुकाना ही ठीक है। भोग-विलास में पड़े रहना ठीक नहीं है।

शालिभद्र को आप भोगी ही न समझें। शालिभद्र की कथा भी भोग की कथा नहीं है। भोग में डूबा रहने वाला तो वर्त्तमान जीवन में ही नरक का निर्माण कर लेता है। वह किसी काम का नहीं रहता। अतएव यह देखो कि वास्तव में शालिभद्र ने किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया है।

शालिभद्र ने अपनी स्त्रियों से कहा—संसार के इन भोगों में न फँसे रह कर संसार के कल्याण के साथ अपना कल्याण करना चाहिए। यह जीवन की सार्थकता है। यह सुख हमें मार न डाले, इस बात की सावधानी रखना बहुत आवश्यक है। जिसने दिया है उसको भेंट किये बिना हड़प कर जाना चोरी है। यह सुख-सम्पत्ति धर्म-पिता की दी हुई है। धर्म को अर्पण किये बिना इस चोरी से कैसे बच सकेंगे?

१४

रत्नकंबलों की खरीद ।

——:::():::——

जिस समय की यह कथा है, उस समय भारतवर्ष में राजगृह की बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह भारत का सम्पन्न नगर माना जाता था। वहाँ के सम्राट् श्रेणिक का वर्चस्व तो सर्वत्र था ही, मगर सम्पत्तिशाली नागरिकों की प्रसिद्धि भी कम नहीं थी। राजगृह की इस प्रसिद्धि से प्रेरित होकर कुछ व्यापारी वहाँ रत्न-कम्बल बेचने के लिए आये। उन रत्न-कम्बलों का कपड़ा रत्नों के समान था। कम्बलों की बनावट में अद्‌भुत कौशल से काम लिया गया था। उस कम्बल को ओढ़ लिया जाय तो कैसी ही सर्दी या गर्मी क्यों न हो, असर नहीं करती थी। उस समय भारत की कला बहुत उच्च श्रेणि पर पहुँच चुकी थी। अतएव इस प्रकार के कम्बलों बनना आश्चर्य की बात नहीं है। उस कम्बल में एक विशेष गुण और भी था। वह यह कि अगर वह मैला हो जाय तो अग्नि में डाल देने से स्वच्छ हो जाता था—जलता नहीं था।

संभव है यह बात किसी को असंभव प्रतीत हो। मगर जो लोग पुद्गलों की विचित्र शक्ति को समझते हैं, उन्हें इसमें असंभव जैसी बात मालूम न होगी। हम भारतीयों में ऐसी दैन्यभावना आ गई है कि हम अपने देश के प्राचीन विज्ञान के विकास पर पहले अश्रद्धा ही प्रकट करते हैं। जब वही बात कोई पाश्चात्य वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला देता है तो फिर कहने लगते हैं—यह बात तो हमारे शास्त्रों में भी लिखी है! मेरा विश्वास है कि अगर भारतीय लोग इस अश्रद्धा से बचकर और ऐसी बातों को संभव मान कर, दृढ़ विश्वास के साथ उनकी खोज में लग जाएँ तो वे विज्ञान के विकास में सर्वश्रेष्ठ भाग अदा कर सकते हैं। हमारे दर्शनशास्त्रों में बहुत-सी बातें सिद्धांत-रूप में वर्णित हैं और उन्हें सिर्फ प्रयोगों द्वारा, यन्त्रों की सहायता से व्यक्त करने की ही आवश्यकता है। मगर ऐसा करने के लिए धैर्य चाहिए, श्रद्धा चाहिए और उद्योगशीलता चाहिए। जहाँ इनका अभाव है वहाँ किसी बात को असंभव कह कर सहज ही छुटकारा पा लेने के सिवाय और क्या चारा है? पुद्गलों की शक्ति अपरिमित है। वैज्ञानिक नई-नई शक्तियों की खोज करते रहते हैं, फिर भी उनकी खोज का कभी अन्त नहीं आएगा। नवीन-नवीन शक्तियाँ उन्हें विदित होती ही चली जाएँगी।

हवाई जहाज का आविष्कार होने से पहले लोग हमारे यहाँ के विमानों के वर्णन को गप्प मान लेते थे। लेकिन यह

नहीं सोचते थे कि इस प्रकार की कल्पना एकदम निराधार नहीं हो सकती। जब वायुयानों का आविष्कार हो गया तो हमारे वर्णन की सत्यता प्रकट हुई। यही बात इन रत्न-कंबलों के विषय में कही जा सकती है।

व्यापारी रत्न-कम्बल लेकर राजगृह में आये और उनकी विशेषताओं का बखान करने लगे। बड़े-बड़े अमीर, सुखी और छैल कम्बल लेने दौड़े। उस समय मगध और बंगाल में राजगृह जैसा कोई नगर नहीं था। अतएव सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ कैसे-कैसे लोग बसते होंगे! बहुत से लोग दौड़-दौड़ आये और सभी को कम्बल पसन्द भी आ गये। नापसन्द होने के योग्य तो वह थे ही नहीं!

पहले सिक्के के द्वारा लेनदेन नहीं होता था, वरन् एक चीज़ के बदले दूसरी चीज़ खरीदी जाती थी। अतएव कंबल पसंद करने वालों ने उसका बदला पूछा, मगर उनके घर में कोई ऐसी चीज़ ही नहीं निकली जो बदले में देने योग्य होती। खरीददार कम्बल की तोल का सोना देने को कहते, मगर व्यापारी इसके लिए तैयार न हुए। उन्हें ऐसा करने में नुकसान मालूम होता था।

कम्बल का बदला सुन-सुन कर खरीददारों ने कम्बलों को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे मखमल-सा कोमल और नरम जान कर धोखे में आकर पकड़ा हुआ साँप छोड़ दिया जाता

है। सब लोग कहने लगे—बराबरी का सोना दे रहे हैं, फिर भी अगर कम्बल नहीं बेचते तो चाहते क्या हो? ऐसा कपड़ा भी किस काम का जो सोने के तोल में भी न मिल सकता हो! रहने दो। रक्खे रहो। जिसके घर आकाश से धन बरसता होगा, वही तुम्हारे कम्बल खरीदेगा।

पहले के लोग यह देखते थे कि इतना जो दे रहे हैं सो इसमें कुटुम्ब का कितने दिनों तक पोषण होगा! इस बात का विचार करके ही लोग बदला किया करते थे।

राजगृह के बाजार में उन कंबलों को कोई न ले सका। दलालों ने भरसक कोशिश की, मगर कुछ भी नतीजा न निकला। अन्त में दलाल व्यापारियों को राजा श्रेणिक के पास ले गये। राजा श्रेणिक ने तथा चेलना, नन्दा आदि रानियों ने कंबलों को बहुत पसंद किया। राजा ने सोचा—किसी के लिए लूं और किसी के लिए न लूं तो ठीक नहीं होगा। यह विचार कर उसने सोलहों कम्बल खरीद लेने का निश्चय किया और उसका बदला पूछा।

बदले में सोना देने को तैयार होने पर भी जब व्यापारियों ने कम्बल देना स्वीकार न किया, तब राजा बहाना बना कर दूसरे काम में लग गया। व्यापारियों ने थोड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् उत्तर माँगा। राजा ने कहा—बस, इससे ज्यादा नहीं दिया जा सकता। हमारे पास जो धन है वह प्रजा के खून की कमाई है। इसे इस प्रकार नहीं उड़ाया जा

सकता।

राजा श्रेणिक का यह उत्तर सुन कर व्यापारी बहुत निराश हो गए। जब राजगृह में ही कंवल न बिक सके तो अन्यत्र कहाँ बिक सकते हैं! और इन्हीं में सारी पूँजी लग गई है तो दूसरा व्यापार किस प्रकार किया जाय! सब अपनी-अपनी मिहनत को देखते हैं, हमारी मिहनत को कोई नहीं देखता! हमारी कला का कोई मूल्य ही नहीं है!

व्यापारी श्रेणिक के दरबार से लौट कर राजगृह के बाहर हिस्से में किसी वृक्ष के नीचे आकर रोटी-पानी की तजवीज़ में लगे। पनघट वहाँ से पास ही था। व्यापारियों का मन ऐसा उदास था जैसे दाहसंस्कार में साथ गये हुए लोगों का होता है! वह यही सोच रहे थे कि इन कंवलों के पीछे हम बर्बाद हो गये। सारा जीवन इनके तैयार करने में खपा दिया, पूंजी सब लगा दी, फिर भी इन की कद्र करने वाला कोई न मिला! जब राजा श्रेणिक ही इन्हें न ले सके तो किसी दूसरे से क्या उम्मीद की जा सकती है!

व्यापारी इस प्रकार की चिन्ता में डूबे, उदास चित्त बैठे थे। उसी समय शालिभद्र की दासियाँ पानी भरने के लिए उधर से निकलीं।

प्राचिन काल में स्त्रियाँ या तो स्वयं अपने घर के लिए पानी लाया करती थीं या फिर उनकी दासियाँ लाती थीं। वह दासियाँ आजकल की तरह नौकरानी नहीं होती थीं,

वरन् एक प्रकार से उस कुटुम्ब की ही सदस्या होती थीं। वह अपनी स्वामिनी के घर को ही अपना घर समझती थी और उसकी सन्तान का विवाह आदि काज भी उसी घर से होते थे। शालिभद्र की दासियों ने व्यापारियों को चिन्तित देखा तो वे आपस में कहने लगीः—

पहली—अपने नगर में जो लोग आते हैं, वे सब प्रसन्न और आनन्दित होते है। परन्तु यह व्यापारी दुःखी क्यों दिखाई देते है?

दूसरी—जहाँ तुम वहाँ मै! मुझे दु:ख का पता कैसे हो सकता है? उन्हीं से पूछना चाहिए।

तीसरी—ये लोग दिखाई तो बाहर के ही देते हैं।

आपस मे इस प्रकार बातचीत करके एक दासी ने व्यापारियों से पूछा—तुम लोग कोई व्यापारी जान पड़ते हो, परन्तु उदास क्यों हो?

व्यापारियों मे से एक ने अपने साथियों से कहा—राजगृह के सेठों से और राजा से कह-कह कर थक गये, फिर भी अपना दुख दूर नही हुआ। अब इन पानी भरने वाली दासियों से कहने पर क्या होगा? यह क्या दुःख दूर कर देगी?

दूसरे ने कहा—अहंकार क्यों करते हो? देखो न, कितनी नम्रता के साथ वह पूछ रही है। उसकी वाणी में सहानुभूति है और चेहरे पर भी सरलता है। और तुम अहंकार मे ही मरे जाते हो! इनका पुण्य तो देखो, ये कैसे घर की

दासियाँ हैं। इनके हाथ में कितने बहुमूल्य घड़े हैं। दासियाँ होकर भी रानियों सी जान पड़ती हैं। जिस परिवार की यह दासियाँ है, उस परिवार की स्थिति का अन्दाज़ा इन्हीं से कर लो।

इसके बाद उस व्यापारी ने प्रश्न करने वाली दासी की तरफ उन्मुख होकर कहा—बाई, तुम दयावाली हो, इसी कारण हमारा दुःख पूछती हो, तो फिर हमें बतलाने में हर्ज़ ही क्या है? हम लोग सोलह रत्न-कंबल लाये है। इनके ओढ़ लेने पर न सर्दी लग सकती है, न गर्मी लग सकती है। इनकी खास विशेषता यह है कि मैले हो जाने पर इन्हे आग में डाला जा सकता है। कम्बल जलेंगे नहीं, साफ हो जाएँगे। हमने अपना सारा जीवन इनके बनाने में लगाया है। इन्हें बेचने की इच्छा से राजगृह में आये थे। मगर कम्बल का उचित बदला देकर खरीदने वाला यहाँ कोई न मिला। महाराज श्रेणिक तक ने एक भी कम्बल नहीं लिया। अब हम इस चिन्ता में है कि इन्हें बेचने के लिए कहाँ ले जावें!

व्यापारी की व्यथा सुनकर दासियाँ आपस में मुस्किरा कर कहने लगीं:—

पहली—शायद अपने सेठ जी से इनकी मुलाकात नहीं हुई।

दूसरी—अब भी मुलाकात नहीं हुई तो राजगृह की नाक कट जाएगी।

तीसरी—राजगृह में इतने धनाढ्यों के होते हुए भी कंबल

नहीं विके तो अब क्या विक सकेंगे !

चौथी—करो न दलाली जिससे भद्रा माता खरीद लें और इन बेचारों की चिन्ता मिट जाय !

इसके बाद एक दासी ने व्यापारी से कहा—बस, यही तुम्हारी चिन्ता है ! तुम लोग हमारी हवेली चलो। हमारी भद्रा माता तुम्हारे सब कम्बल खरीद लेगी और तुम्हे मुँह माँगे दाम मिलेगे। तुम माँगने में भले ही कसर रक्खो, देने में वे कसर नहीं रक्खेंगी।

व्यापारियों में से एक कहने लगा—राजा श्रेणिक से बड़ा यहाँ कौन होगा ? जब उन्होंने ही कम्बल न लिए तो दूसरे से क्या आशा की जा सकती है ? ऐसी दशा में इनके कहने से ही वृथा चक्कर लगाने से क्या लाभ ?

दूसरे ने कहा—हम लोग व्यापारी हैं। हमें चक्कर का हिसाब नहीं देखना चाहिए। अब तक तुम सारे नगर में घूमते फिरे, क्या किसी ने इतना भी आश्वासन दिया था ? इनसे आश्वासन तो मिल रहा है ! अगर हम लोग इनके साथ न चले तो पछतावा बाकी रह जाएगा। इसलिए चक्कर खाना पड़े तो खाना पड़े, परन्तु पछतावे के लिए गुंजाइश नहीं रहने देना चाहिए। आप लोग चलें या न चलें, मैं तो अवश्य जाऊँगा।

इतना कहकर एक व्यापारी जाने को उद्यत हुआ। उसे जाते देख शेष उसके साथी भी तैयार हो गए। दासियाँ उन्हें

साथ लेकर शालिभद्र के घर आईं। व्यापारियों को बाहरी बैठक में बिठला कर कहा—तुम सब यहीं ठहरो। हम भद्रा माता की आज्ञा लेकर तुम्हें भीतर बुलवा लेंगे।

दासियाँ भीतर चली गईं और व्यापारी बाहर ठहरे रहे। शालिभद्र की हवेली को देख कर व्यापारी चकित रह गए। आपस में कहने लगे—सारे राजगृह में ऐसा महल कहीं नज़र नहीं आया। कंबल चाहे बिकें या न बिकें, यह महल देखने को मिल जाय तो यही बहुत है।

सेठानी भद्रा भीतर ऊँचे आसन पर बैठी हुई थीं। दासियाँ हँसती हुई उनके पास पहुँचीं। सेठानी समझ गईं कि ये किसी काम से मेरे पास आई हैं, वृथा समय खोने वाला हमारे यहाँ कोई नहीं है।

रुपयों का खयाल आप करते होंगे और सभी करते हैं, मगर समय का विचार करने वाले विरले ही होते हैं। समय का विचार रखने वाला, उसे वृथा नष्ट न करने वाला कभी दुखी नहीं होता। उसे प्रत्येक आवश्यक कार्य के लिए समय मिल जाता है।

भद्रा ने दासियों से पूछा—आज इस समय यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? तब दासियों ने कहा—एक ऐसी बात है मां जी, जिससे राजगृह की नाक जा रही है।

प्रश्न होता है—राजगृह की इज्ज़त न जाने की फ़िक्र इन दासियों को क्यों है ? क्या नगर की प्रतिष्ठा न जाने देने की

किसी को चिन्ता करनी चाहिए ?

'अवश्य !'

दूसरों के विषय मे आप ठीक फैसला दे सकते है। मगर अपनी सोचिए। आप मे इतना आलस्य घुस गया है कि अगर आपके उठने मात्र से किसी का काम होता होगा तब भी शायद आप मुश्किल से ही उठेंगे! अगर राजगृह की नाक जाती थी तो इससे शालिभद्र का क्या बिगड़ता था ? उसके घर किस बात की कमी आ जाती ? क्या स्वर्ग से पेटियाँ आना बन्द हो जाता था ? नही। मगर अपने नगर की प्रतिष्ठा रखने का महत्व जानने वाले ही जानते हैं। दासियाँ जानती थीं कि भद्रा माता अपने देखते-देखते नगर की आबरू नहीं जाने देगी।

दासियों ने भद्रा से कहा—मां जी, राजगृह नगर में कुछ व्यापारी रत्नकम्बल लेकर आये हैं। कम्बल ऐसे हैं कि पानी के बदले आग से साफ होते हैं। उनके ओढ़ लेने पर वर्षा, गर्मी, सर्दी आदि का तनिक भी असर नही होता। मगर कीमती बहुत हैं। इस कारण किसी ने नहीं खरीदे यहाँ तक कि महाराज श्रेणिक ने भी नहीं खरीदे। व्यापारी निराश होकर जा रहे थे। यह हमे बुरा मालूम हुआ।

भद्रा ने गंभीरता से कहा—वे राजा हैं। अवसर नहीं होगा तो नहीं लिये ! हमें उनकी निन्दा करने की आवश्यकता नहीं। रह गया उनका निराश होकर जाना, सो तुम उन्हे यहां लेती क्यों नहीं आई ?

एक दासी—ले तो आई है।

भद्रा—तो ठीक किया। उन्हें भीतर बुला लो। बेचारे बाहर खड़े प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

दासियाँ प्रसन्न होकर आपस में कहने लगीं—मांजी कितनी दयालु हैं! हम बड़ी पुण्यवती हैं कि इनकी सेवा करने का सौभाग्य हमें मिला है। व्यापारियों को साथ न ले आतीं तो पश्चात्ताप रहता या फिर दौड़ कर जाना पड़ता।

व्यापारी लोगों को भीतर चलने के लिए कहा गया। व्यापारी यह सोच कर प्रसन्न हुए कि कम्बल बिकें या न बिकें, भीतर से इस महल को देख ही लेंगे। वे सब बुलाने वाली दासी के पीछे-पीछे चले।

व्यापारी शालिभद्र के महल की ऋद्धि देख कर आश्चर्य करने लगे और कहने लगे—यह ऋद्धि की कैसी कारीगरी है! क्या मनुष्य कभी ऐसा कर सकता है? दूसरे ने कहा—हम लोग कहा करते हैं कि पुण्य और पाप की बातें पोप-लीला मात्र हैं। लेकिन यहाँ तो पुण्य के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। यह सब वैभव पुण्य के प्रताप बिना कैसे संभव हो सकता है? हम लोग बड़े-बड़े राजाओं के महलों में गये हैं, सेठ-साहूकारों की हवेलियाँ भी हमने देखी हैं, परन्तु इस ऋद्धि के सामने उनकी क्या बिसात है?

तीसरा व्यापारी बोला—अच्छा ही हुआ कि यहाँ राजा

श्रेणिक ने कम्बल नहीं खरीदे। वह खरीद लेते तो यहाँ आने का सौभाग्य ही न मिलता और न यह अपूर्व वैभव देखने को मिलता !

चौथे ने कहा—अगर हमने पुण्य को सच्चा समझ लिया है तो चलो, प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में पाप से बचने का निरंतर प्रयत्न करते रहेंगे।

मित्रो ! जरा इन व्यापारियों की भावनाओं पर विचार करो। ऋद्धि देखने मात्र से उनके हृदय के पट खुल गये हैं।

इतने में व्यापारी भद्रा के पास जा पहुँचे। दासियों ने उनसे कम्बल लेकर भद्रा को बतलाए। देवलोक के वस्त्र पहनने वाली भद्रा को यह कंबल कब पसंद आने लगे? लेकिन भद्रा विचार करती है—वे कपड़े देवलोक के हैं और ये मनुष्यलोक के हैं। देवलोक के वस्त्रों के साथ इनकी तुलना करके इन्हें तुच्छ समझ लेना और व्यापारियों को निराश करना उचित नही है। मनुष्य की शक्ति का ध्यान रखते हुए ही इन कंबलों के महत्त्व को देखना चाहिए।

कंबल देखकर भद्रा ने कहा—कंबल बहुत अच्छे हैं। रूप-रङ्ग अच्छा है और पोत भी अच्छा है। गुण भी जो बतलाया गया है, अच्छा है। अब इनका मूल्य बता दो।

व्यापारियों ने शालिभद्र के घर को देखकर उसकी सम्पत्ति का मोटा अनुमान लगा लिया था। दासियों ने भी उनसे मुँह-माँगे दाम पाने की बात कही थी। मगर व्यापा-

रियों ने सोचा—अभी-अभी हम लोग पुण्य-पाप की बात सोच रहे थे। अतएव ईमान छोड़ना ठीक नहीं है।

व्यापारियों ने दूसरों को तथा राजा श्रेणिक को एक एक कंबल का मोल सवा-सवा लाख स्वर्णमोहर वतलाया था! वही उन्होंने भद्रा माता को वतला दिया।

भद्रा—सोलह कम्बलों की कीमत बीस लाख स्वर्णमोहरें तो कही, मगर एक बड़ी अड़चन है। कम्वल तुम्हारे पास सोलह हैं और बहुएँ मेरे यहाँ बत्तीस हैं। मैं किसे कम्बल दूँ और किसे न दूँ? मुझे न कोई वहू खारी है, न अधिक प्यारी है। मैं बत्तीसों को समान दृष्टि से देखती हूँ।

घर में सब को समान दृष्टि से न देखने के कारण बड़ी हानि होती है। घर-घर में आज जो कलह है, उसका मुख्य कारण यही विषम व्यवहार और पक्षपात है। जहाँ कपट ने प्रवेश किया वहीं गड़बड़ हुई और घर में फूट पड़ी! फूट सम्पत्ति के विनाश की अग्रिम चेतावनी है।

प्रतापी पूज्य श्री चौथमलजी महाराज साधुओं के आहार-वितरण के सम्बन्ध में अत्यन्त सावधान रहते थे। कदाचित् गोचरी में दो लौंग आ जातीं तो उनके टुकड़े-टुकड़े करके सब साधुओं को बराबर-बराबर बाँट देते थे। कोई न लेना चाहता तो बात दूसरी थी, मगर वे अपनी ओर से समान वितरण ही करना चाहते थे। उनका कथन था कि बिना इन्कार किये किसी की वस्तु खा लेना सहधर्मी

की चोरी है।

तात्पर्य यह है कि जहाँ वस्तु का समान रूप से विभाग नहीं होता, वहाँ क्लेश होने की संभावना रहती है और जहाँ क्लेश हुआ वहाँ परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

इसी बात को ध्यान में रखकर भद्रा कहने लगी—मैं सब बहुओं को समान समझती हूँ। अब यह कम्बल किसे दूँ और किसे न दूँ? और कम्बल नहीं खरीदती हूँ तो तुम्हें निराशा होती है। अतएव इन सोलह कम्बलों के बत्तीस टुकड़े कर दो, ताकि सबको एक एक आ जावे। तुम व्यापारी हो। फाड़ने का काम अच्छी तरह कर दोगे।

भद्रा की बात बड़ी गंभीर है। कुटुम्ब में सुख-शांति रखने के लिए इस प्रकार का निष्पक्ष व्यवहार होना अतीव आवश्यक है। यह एक आदर्श है जो प्रत्येक कुटुम्ब के बड़े-बूढ़े को अपनाना चाहिए। इसके विरुद्ध जो लोग विषम व्यवहार करते हैं कोई चीज़ लाकर अपने लड़के को देते हैं और भाई के लड़के को नहीं देते, उन्हें क्या कहना चाहिए?

'नीच'।

तो इस नीचता के कारण कभी-कभी कितना अनर्थ होता है, यह बात मेरी अपेक्षा भी आप ज्यादा समझ सकते हैं भद्रा की बात स्त्रीवर्ग के लिए विशेष रूप से विचारणीय है वह कहती है कि मेरे लिए सभी बहुएँ समान हैं। ऐसी दशा में कभी कलह हो सकता है?

'नहीं !'

एक की ओर अधिक अनुराग आया कि दूसरी की ओर विराग आएगा और फिर क्लेश का नङ्गा नाच हुए बिना नहीं रहेगा। इस पक्षपात से हजारों घर बर्बाद हो गए हैं। भले सब बहुएँ समान गुणवाली न हों, एक आज्ञा मानती हो, और दूसरी न मानती हो, तब भी भेदभाव रखना उचित नहीं है।

भद्रा सदैव निष्पक्ष व्यवहार करती थी। यही कारण है कि इतने बहुमूल्य और असाधारण कम्बलों के टुकड़े करवाना उसने स्वीकार किया मगर यह स्वीकार नहीं किया कि एक को कम्बल दें और दूसरी को न दें।

व्यापारी लोग भद्रा की आज्ञा सुनकर आश्चर्य में डूब गये। वे सोचने लगे—यह कैसा घर है जहाँ ऐसे बहुमूल्य कम्बलों के टुकड़े करवाये जाते हैं। फिर उन्हे ध्यान आया—कहीं ऐसा न हो कि टुकड़े करवाकर कम्बल लेने से इन्कार कर दे। यह सोचकर व्यापारियों ने कहा—पहले कम्बलों का मूल्य बीस लाख स्वर्ण-मोहरें आप दिला दीजिए। उसके बाद जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा किया जाएगा।

भद्रा मन ही मन कहने लगी—इनका कहना अनुचित नहीं। बेचारों को विश्वास कैसे हो! अगर कम्बलों के टुकड़े हो जावें और फिर लेने से इन्कार कर दिया जाय तो ये कितनी मुसीबत में फँस जाएँगे!

आज के लोग होते तो चिढ़ जाते और कहते—'हमारा

इतना भी विश्वास नहीं !' ऐसे लोग अपनी स्थिति जबर्दस्ती दूसरों के सिर मढ़ते हैं। उचित तो यही है कि ऐसे अवसर पर सामने वाले की स्थिति पर विचार किया जाय।

भद्रा ने भण्डारी को बुलाकर कह दिया—यह कम्बल पसंद आ गये हैं। इनकी कीमत बीस लाख सौनैया चुका दो। उनके बदले कोई और चीज़ लेना चाहें तो वह दे दो और उसकी परीक्षा करवा दो, जिससे इन्हें कसर न पड़े। इसके बाद इन्हें सुरक्षित रूप से इनके घर पहुँचा दो। इनके पास जोखिम रहेगी। बिना रक्षा के कहीं संकट में न पड़ जावे।

भण्डारी व्यापारियों को भण्डार में ले गया। व्यापारियों ने शालिभद्र का भण्डार देखा तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। हीरे वहाँ पैरों तले कुचले जाते हैं, माणिकों को कोई संभालता ही नहीं हैं। मूँगों का कोई पार ही नहीं है और दूसरे रत्न कांच की तरह ढेरों पड़े हैं। व्यापारी सोचने लगे—कुबेर का भण्डार भी क्या इससे बढ़कर होगा?

आप इस वर्णन में अत्युक्ति न समझें। इतिहास के अनुसार दौलताबाद के एक नवाब ने जब देवगिरि का किला तोड़ा था, तब वहाँ के राजा ने उसे डेढ़ मन हीरे संधि में दिये थे। जब एक मनुष्य के पास इतना हीरा हो सकता है तो वह सम्पत्ति तो देवलोक की थी। उसमें असंभव जैसी कौन-सी बात है?

कम्बलों के व्यापारी इस ऋद्धि को देखकर चकित हो

गये और कहने लगे—इतनी ऋद्धि आई कहाँ से होगी? अम्बर धूजे, भूत कमावे और आकाश में हल चले तब भी इतनी ऋद्धि नहीं हो सकती। फिर यह कहाँ से और कैसे आई?

लोग समझते हैं कि हमारे पुरुषार्थ से लक्ष्मी आती है। हम कमाते हैं, इसीलिए हमारे पास ऋद्धि आती है। मगर विचारणीय यह है कि दो व्यापारी समान रूप से पुरुषार्थ करते हैं और एक को लाभ तथा दूसरे को हानि होती है। इसका कारण क्या है? इसके अतिरिक्त ऋद्धि तो जीवन के सहारे ही है और जीवन किसने कमाया है? इस बात पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि ऋद्धि वास्तव में पुण्य से मिलती है। अतएव धन के लोभ में पड़कर पाप मत करो। पाप से धन का विनाश होगा, धन का लाभ नहीं हो सकता। पाप में प्रवृत्ति करने से ऋद्धि नष्ट हो जाएगी और नरक का मेहमान बनना पड़ेगा।

व्यापारियों के अन्तःकरण में इसी प्रकार का विवेक जागृत हुआ।

भद्रा की आज्ञा के अनुसार भंडारी ने बीस लाख सोनैयों का बदला चुका दिया। भद्रा के बुलाने पर व्यापारी फिर उसके पास गये। भद्रा ने उनसे पूछा—कम्बलों का मूल्य तुम्हें मिल गया?

व्यापारियों ने कहा—मांजी, मूल्य मिल गया है और आपके

घर से हम लोगों को जो विवेक मिला है, वह और भी बड़ी चीज़ है। आपका घर देखकर हमें सुकृत्य का फल याद आया है।

भद्रा—यह ऋद्धि मेरी नहीं, मेरे पति की दी हुई है। उन्होंने दीक्षा ली थी। जब वे दीक्षा लेने के लिए जाने लगे तो हमें अच्छा नहीं लगा था। हमने सोचा था कि हमें छोड़कर न जाते तो अच्छा था। मगर वे नहीं माने। उन्होंने तपस्या की और संयम का पालन किया। उनके ऊपर हमारा भी उत्कृष्ट भाव रहा। वे अब किसी स्वर्ग में उत्पन्न हुए हैं और वहाँ से यह ऋद्धि भेज रहे हैं। इस ऋद्धि में हमारा कुछ भी नहीं है। तटस्थ रूप से देखरेख करना ही हमारा काम है।

व्यापारी कहने लगे—आपकी बात से यह तत्त्व और मिल गया। हम लोग आपस में यही सोच रहे थे कि यह ऋद्धि कहाँ से आई है? अब मालूम हुआ कि तप और संयम में से इसका विकास हुआ है। माताजी, आपका भाग्य सराहनीय है कि आपके पति ने असीम सम्पत्ति त्याग कर दीक्षा ली। उस संयम-लक्ष्मी को भी धन्य है, जिसमें से यह ऋद्धि निकली है।

भद्रा ने व्यापारियों से कहा—कंबलों का मूल्य तुम्हें मिल गया है। अब इनके दो-दो टुकड़े कर दो।

व्यपारी—आपकी ऋद्धि देखते हुए तो इनके दो क्या और भी अधिक टुकड़े करना मामूली बात है, लेकिन मूल्य-

वान् कंबलों के टुकड़े करने में हमारे तो हाथ काँपते हैं। क्या यह नहीं हो सकता कि इनमें से एक कंबल को एक दिन एक बहू ओढ़ ले और दूसरे दिन दूसरी बहू ओढ़ ले।

भद्रा—यही तो कठिनाई है भाई ! एक दिन काम में लाया हुआ कपड़ा हमारे यहाँ दूसरे दिन काम में नहीं आता।

व्यापारी हैरान थे। चकित होकर कहने लगे—तो क्या यह कंबल एक ही दिन ओढ़े जाएँगे ?

भद्रा—यह भी मेरी मनुहार से। नहीं तो ऐसा कपड़ा यहाँ ओढ़ता ही कौन है ! तुम्हें शंका हो तो जब तक तुम कंबलों के टुकड़े करते हो तब तक मै अपनी बहुओं को बुलवाए लेती हूँ। तब देख लेना, वे कैसे कपड़े पहिनती हैं। वास्तव में यह कम्बल बहुओं के ओढ़ने के लिए नहीं खरीदे हैं, खरीदे इसलिए हैं कि नगर की इज्ज़त न चली जावे। तुम्हारी सारी पूँजी इन्हीं में रुक रही है और मेरे घर में सहज रूप से धन की कमी नहीं है। इसलिए मैंने इन्हें ले लिया है। और कोई कारण नहीं है।

इतना कह कर भद्रा ने दासी को आज्ञा दी कि जरा बहुओं को बुला लाओ। दासी बुलाने गई। सास का बुलौआ पाते ही सब बहुएँ एकदम उठ खड़ी हुई। वे सासू की आज्ञा के पालन को अपने जीवन का धन और प्राणनाथ का दान समझती थीं।

बहुत-सी बहुओं को अपना बालम तो प्रिय लगता है

परन्तु सास-सुसर कांटे-से लगते है। वे समझती हैं कि पति तो सांसारिक मनोरथ पूरा करता है पर यह सास-सुसर किस काम के ? अज्ञान के कारण ऐसी खोटी समझ तो हो ही रही है, तिस पर यह उपदेश मिल जाता है कि सास-सुसर की सेवा करना एकान्त पाप है, फिर तो कहना ही क्या है ! यह तो जलती आग में घी होमने के समान है।

राग तीन प्रकार का है—कामराग, दृष्टिराग और स्नेह-राग। भोग की आशा से होने वाला राग काम-राग कह-लाता है। स्नेहराग दसवें गुणस्थान की स्थिति में पहुंचने पर छूटता है। गुरु से और धर्म से राग होना भी प्रशस्त स्नेहराग है। लेकिन तेरापंथी भाई राग को एकांत पाप बत-लाते है। उनके कथनानुसार अपने धर्मगुरु के प्रति राग होना भी एकान्त पाप ठहरता है। यह कहाँ तक उचित है, इस पर शांति और निष्पक्ष भाव से विचार करने की मैं प्रेरणा करता हूँ।

शालिभद्र की स्त्रियाँ कामराग की चेरी नहीं थीं। उन्हें विषयभोग का ही मोह होता तो वे सास का हुक्म पाते ही खड़ी न हो जातीं। वे सास के आदेश को अपने सिर का आभूषण समझती थीं। उन्हें विदित था कि यह सब सुख और वैभव इन्हीं की कृपा का फल है। यही हमारे प्राणनाथ की जननी है। इनका हुक्म न मानने से हमारी अधोगति होगी।

बत्तीसों बहुएँ उठ खड़ी हुई। प्रथम तो वे देव-संबंधी वस्त्र और आभूषण पहिने थीं, दूसरे उनका भाग्य भी कुछ कम नहीं था। इसलिए उनकी सुन्दरता का कहना ही क्या है।

बत्तीसों बहुएँ रुमझुम करती हुई अपने महल से ऐसी उतरीं जैसे स्वर्ग से अप्सराएँ उतर रही हों। सब के आभूषणों का सम्मिलित स्वर सुनकर व्यापारी चोंक उठे। वह मन ही मन सोचने लगे—यह क्या चमत्कार है। इसी समय सब बहुएँ भद्रा के सामने आकर खड़ी हो गई। व्यापारी उनके दिव्य वस्त्र देखकर सोचने लगे—यह इन कंबलियों को कब पसंद करेंगी ?

व्यापारियों को उनके वस्त्र और आभूषण देखकर आश्चर्य हुआ। मगर बहुओं की आज्ञाकारिता देखकर कि इन सब ने किस फुर्ती के साथ सास के हुक्म का पालन किया है और कितनी नम्रता के साथ सास के सामने खड़ी हैं, व्यापारियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा—इनके व्यवहार से यही परिणाम निकलता है कि बड़ों की आज्ञा मानोगे तो फलोगे—फूलोगे, और अगर केवल वस्त्रों और आभूषणों पर ही फूल गये तो वही दशा होगी जैसे चना फूल कर दाल हो जाता है! अर्थात् जैसे चना पहले पुरुष था परन्तु फूलने के कारण उसे स्त्री (दाल-दार) होना पड़ा। फूलने से पहले वह उग सकता था, फूलने पर अपनी वह शक्ति भी खो बैठता है।

देवलोक की सम्पत्ति का भोग करते हुए भी जो अपने

बड़े-बूढ़ों की आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं, उन्हीं की कथा पुण्यकथा है। ऐसे महाभागों की कथा ही लोकोपकारी होती है।

भद्रा की बहुओं के वस्त्र देखकर व्यापारी सोचने लगे—हम अपने बनाए हुए कम्बलों पर अभिमान करते थे, लेकिन इन वस्त्रों को देखकर समझ गये कि हमारा गर्व व्यर्थ था और गर्व करना अच्छा नहीं है।

मै पूछता हूँ कि शालिभद्र की जो बहुएँ देवलोक के वस्त्र पहिनती हैं, वे क्या ऐसे कम्बल खरीदेंगी? आज की सेठानियों को खादी के कपड़े दिये जाएँ तो क्या वे लेंगी? लोग मूंछों पर ताव देते हैं कि हमारी भी पत्नी है। मगर जो पत्नी, पति की आज्ञा नहीं मानती उसका पति, पति ही कैसा? कभी सेठानी के सामने खादी रख कर परीक्षा कर देखो कि वह क्या कहती है?

अज्ञान के कारण आज अधिकांश स्त्रियों को बारीक और मुलायम वस्त्र प्रिय लगते हैं, पति का हुक्म प्रिय नहीं लगता!

आखिर भद्रा के कहने पर व्यापारियों ने कम्बलों के बत्तीस टुकड़े कर दिये। भद्रा व्यापारियों से एक-एक टुकड़ा लेती जाती है और एक-एक बहू को देती जाती है। बहुएँ अपनी सास द्वारा दिये हुए उपहार को हर्षपूर्वक दोनों हाथों से ले रही हैं।

बड़े को वस्तु देने और उससे लेने में भी विनय की आव-

श्यकता होती है। मनुष्य में जितनी ज्यादा विनयशीलता होगी, उसकी पुरयाई उतनी ही ज्यादा बढ़ेगी।

सासू से कम्बल लेकर बहुओं ने कहा—हम सब पर आपकी बड़ी कृपा है। हम सदा इसके लिए लालायित थीं कि अपनी सास का दिया कपड़ा पहिने। आज आपने अनुग्रह-पूर्वक प्रेम के साथ यह वस्त्र दिया है। हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। हम सद्भागिनी हैं कि आपके हाथ से हमें वस्त्र मिला। आज की घड़ी धन्य है कि हमें अपनी कृपालु सासू की प्रसादी प्राप्त हुई है।

मालवा प्रान्त में एक त्यौहार मनाया जाता है। उसे गाज का त्यौहार कहते हैं। स्त्रियाँ खूब गहने-कपड़े पहिने होती हैं फिर भी उस त्यौहार के दिन का बँटा हुआ एक सफेद धागा अपनी चूड़ियों में बाँध लेती हैं। उस दिन आपस में स्त्रियाँ एक कथा कहती हैं। संक्षेप में वह इस प्रकार है—'एक रानी थी। वस्त्र-आभूषण आदि ऋद्धि उसके पास थी। परन्तु उसने गाज का धागा अपनी चूड़ियों मे नहीं बाँधा। इस कारण उसकी समस्त ऋद्धि गायब हो गई। जब उस रानी ने धागा बाँधा तब कहीं ऋद्धि वापस लौट कर आई।' इस कथा में कौन जाने क्या रहस्य छिपा हुआ है।

सिर में राख लगाना कोई अच्छा नहीं समझता। तेल-सिन्दूर का टीका लगाना भी अच्छी बात नहीं मानी जाती। लेकिन भैरों और करणीजी के मन्दिर में जाकर वही राख और

टीका लगाने में कोई बुराई नहीं समझी जाती। इसका मर्म इतना ही है कि वस्तु तो वही है जो साधारण अवस्था में अच्छी नहीं समझी जाती थी, किन्तु बड़ों के संस्कार से उसी वस्तु के विषय में भावना बदल गई है। भावना बदलने से उसके प्रति प्रेम हो गया है। आज आप न मालूम किन-किन देवी-देवताओं को मानते-पूजते हैं और उनकी जूठन खाने को तैयार हो जाते हैं, किन्तु अपने बुजुर्ग-देव को भूल जाते है। घर के बुजुर्ग-देवों का आदर न करके बाहर वालों का आदर करना वैसा ही है, जैसे गोद के बालक को छोड़कर पेट के बालक की आशा करना।

जैसे रेशम और मलमल के वस्त्र पहिनने वाली स्त्री अगर अचानक खादी को अपना ले तो आश्चर्य होता है, उसी प्रकार देवलोक के वस्त्र पहिनने वाली शालिभद्र की पत्नियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक कंबल के टुकड़े अपनाये जाने पर व्यापारियों को आश्चर्य हुआ।

बहुओं ने सास के प्रति जो कृतज्ञता प्रकाशित की थी उसके उत्तर में भद्रा ने कहा-तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम सब ने आकर मेरा घर पवित्र किया है।

इस प्रकार परस्पर सद्भावना प्रकट करने के बाद सब बहुएँ अपनी-अपनी जगह लौट गई और व्यापारी अपने घर चले गये। भद्रा अपनी जगह पर ही बैठी रही। कई दासियाँ भद्रा के पास बैठी थीं। उनमें से एक ने कहा—माँजी, हमने

आज जैसा चमत्कार पहले कभी नहीं देखा था।

भद्रा—क्या चमत्कार देखा आज ?

दासी—हमें मालूम ही नहीं था कि देवलोक के कपड़े पहिनने वाली वहुओं में सास के प्रति इतना आदरभाव होगा! उन कपड़ों के सामने यह कम्बल ऐसे ही हैं जैसे कपड़ों के सामने छाल के वस्त्र! मगर इन्होंने आज सीता का स्मरण दिला दिया। इन कम्बलों को वे इतने प्रेम से ग्रहण करेंगी, यह कौन समझ सकता था? वास्तव में आप राम की माता कौशल्या से भी ज्यादा पुण्यशालिनी हैं। उनके यहाँ एक ही सीता थी, आपके यहाँ बत्तीस सीताएँ वसती हैं।

भद्रा—इन कम्बलों को खरीदने का रहस्य तुम्हारी समझ में आया?

दासी—समझ में आया भी होगा तो न मालूम क्या समझ में आया होगा? आप ही अपने मुख से समझाइए तो कृपा होगी।

भद्रा—तुमने खबर दी थी कि व्यापारी निराश और उदास होकर जा रहे हैं और नगर की नाक जा रही है। इसीलिए मैंने यह कम्बल खरीद लिये। लेकिन कम्बल लेकर नगर की प्रतिष्ठा कायम रखना ही मेरा उद्देश्य नहीं था, मगर वहुओं की कसौटी करना भी मेरा उद्देश्य था। मेरे यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं है। मैं चाहती तो कम्बल

खरीद कर तुम्हे दे सकती थी या किसी रिश्तेदार के घर भेंट भेज सकती थी। राजा श्रेणिक इन्हे नहीं खरीद सके, अतएव उन्हें भी भेंट दे सकती थी। मै लोभिनी भी नहीं हूँ। कम्बलों का लोभ होता तो टुकड़े न करवाती। पूरे नहीं होते थे तो ताले मे बन्द करके रख लेती। मगर यह सब न करके और एक-एक के दो-दो टुकड़े करवा कर मैंने बहुओं को बुलवा कर उन्हीं के हाथ में दिये। तुम लोगों के हाथों उनके पास नहीं भेजे। इसमे भी एक रहस्य था।

रिश्तेदारों के यहाँ भेजती तो उनके घर तकरार होती। इसके अतिरिक्त उनके यहाँ भेजना उनका सन्मान नहीं बल्कि अपमान करना होता; क्योंकि वे इन्हें खरीद नहीं सके थे। कदाचित् उन्हें अपमान न मालूम होता और मुझे भी अहंकार न होता तो भी उनके घर कलह तो मच ही जाता इसलिए मैंने विचार किया कि यह कंबल मेरे घर रहें तो ठीक है। मेरे यहाँ देवकृपा से सम्पत्ति आती है और दूसरों के घर कमाई हुई आती है। इसलिए इन शैतानी कपड़ों को—जिनका वे बदला नहीं दे सकते, उनके घर भेजना उनकी लज्जा हरण करना एवं उनके घर कलह के बीज बोना है।'

क्या आप भी इतनी दूर की सोचते हैं? क्या आप यह सोचते हैं कि हम जो वस्त्र किसी को भेट देते हैं उससे उसकी लाज लुटेगी या बचेगी? सोचिए, लाज कैसे वस्त्र से रहती है?

'मोटे वस्त्रों से !'

और आप अपने सम्बन्धियों को कैसे वस्त्र भेट देते है ?

'बारीक !'

तो उनकी लज्जा लूटने के लिए भेट देते हैं या लज्जा रखने के लिए ?

एक सज्जन कहते थे—स्त्रियाँ बारीक कपड़े पहिनती हैं। उन्हें उपदेश दीजिए। पर मै पूछता हूँ कि उन्हें बारीक वस्त्र पहिनाता कौन है ? जो कपड़ा हम दे रहे हैं, उससे लाज रहेगी या नहीं, प्रतिष्ठा बढ़ेगी या घटेगी, इत्यादि विचार किये बिना ही बारीक से बारीक वस्त्र खरीद कर लाना कहाँ तक उचित है ? भेड़ की तरह एक को देखकर दूसरा भी उसके पीछे-पीछे चलने लगता है। क्या अपनी बुद्धि से काम न लेना मानवीय बुद्धि और विवेक का अपमान करना नहीं है।

- बहिनें यह न समझें कि मारवाड़ में कभी खादी आएगी ही नहीं। सूर्य निकलने पर तो जागना ही पड़ता है, मगर पौ फटने पर जागने वाला होशियार समझा जाता है।

भद्रा कहती है—इसी विचार से मैंने वह कंबल अपने संबंधियों के घर नही भेजे। संबंधियों के घर वैसी ही वस्तु भेजना चाहिए जैसी वे बदले में भेज सकते हों। ऐसा न करने पर उनका अपमान होता है। राजा श्रेणिक के यहाँ न भेजने का भी कारण है। महाराज के भण्डार में कमी तो कुछ

है नहीं; फिर भी न मालूम क्या सोचकर उन्होंने कम्बल नहीं खरीदे। उनके यहाँ कम्बल भेजना उनकी ऋद्धि और वृद्धि का अपमान करना है। और कदाचित् कम्बल न लेती तो देश का और नगर का गौरव घट जाता। इस प्रकार का विचार करके मैंने कम्बल ले तो लिये, मगर सम्बंधियों के घर और महाराज के घर नहीं भेजे।

हाँ, एक बात और रह गई। मैंने तुम्हे यह कंबल क्यों नहीं दे दिये? तुम मुझे बहुओं से कम प्यारी हो, इसलिए तुम्हें नही दिये, यह बात नहीं है। बात यह है कि तुम्हें कम्बल दे देती तो तुम्हारे पैर बन्धन में आ जाते। तुम आलस्य से घिर जातीं और तुम्हारी कार्यशक्ति कम हो जाती। इसके अतिरिक्त उन्हे ओढ़ कर जहाँ तुम जातीं, सेठानियाँ लज्जित हो जातीं और टीका करतीं—दासी होकर भी इतनी शौकीन? इस प्रकार सेठानियों को लज्जित होना पड़ता और तुम्हें टीका सुननी पड़ती।

मैंने सोचा—बहुएँ देवलोक के वस्त्र पहिनते-पहिनते कहीं मर्त्यलोक को—अपने देश को तो नहीं भूल गई हैं? दिव्य ऐश्वर्य को पाकर वे मेरी भक्ति को विस्मरण तो नहीं कर बैठीं? यह जानने के लिए ही मैंने कम्बल दिये हैं। कंवल क्या फटे, उनका और मेरा भ्रम फटा है। कम्बलों को फड़वा कर मैंने उनकी भावना की परीक्षा कर ली है। मैंने ऐसा न किया होता तो उनके प्रेम की परीक्षा कैसे होती? और तुम्हें जो आश्चर्य हुआ था सो कैसे होता?

१५

चेलना की चाह ।

——::::():::——

शालिभद्र की सभी पत्नियों ने आज वही कम्बल के टुकड़े ओढ़े हैं। आज उनके हृदय में कुतूहल है, प्रीति है और अपूर्वता का आभास है। मनुष्य मिठाई खाते-खाते उकता जाता है तो चने खाने की इच्छा करता है और चने पाकर वह इतना प्रसन्न होता है कि मिठाई उसके सामने तुच्छ है। यही स्थिति आज शालिभद्र की पत्नियों की है।

कम्बल के टुकड़े ओढ़ कर वे सब शालिभद्र के सामने गईं। अपनी पत्नियों को सदा से विपरीत वस्त्र ओढ़े देखकर शालिभद्र ने हँसते हुए कहा—आज यह नवीनता कहाँ से आई? कम्बल क्यों ओढ़ रक्खे हैं? क्या पिताजी के स्वर्ग में कपड़ों की कमी हो गई है? मेरी पेटी तो नित्य की भाँति ही मेरे पास आई है। क्या तुम्हारी पेटी आने में कोई गड़बड़ हो गई है? अगर गड़बड़ थी तो कल वाले कपड़े ही क्यों न पहिन लिये? लेकिन देवलोक से पेटियाँ आने में भूल नहीं

हो सकती। जब मेरे पास आई है तो तुम्हारे पास क्यों न आई होगी ? पिताजी कभी भेदभाव नहीं कर सकते। तुम्हारे और मेरे बीच किसी प्रकार का मतभेद भी नहीं हुआ कि पिताजी तुम्हारे ऊपर रुष्ट हो जाएँ और पेटियाँ भेजना बन्द कर दें। फिर क्या कारण है कि आज तुम सब यह कम्बल के टुकड़े ओढ-ओढ़ कर आई हो ?

शालिभद्र की पत्नियाँ उसका प्रश्न सुन कर हँसने लगीं। उनमें जो सबसे बड़ी थी, वह कहने लगी—आप देवलोक के वस्त्रों को बहुत अच्छे और सुन्दर समझते हैं, पर यह वस्त्र बहुत प्रेम के हैं। इनमे बड़ा रहस्य छिपा है। देवलोक के वस्त्र तो न मालूम किस शक्ति से उतरते हैं, सुसरजी अपने हाथ से देने नहीं आते, लेकिन यह वस्त्र सासूजी ने स्वयं अपने हाथ से दिये हैं। यह उनकी प्रसादी है। इन्हे पहिनकर हमें जो आनन्द मिला है, वह स्वर्गीय वस्त्रो से नहीं मिला।

शालिभद्र ने आश्चर्य के साथ कहा—क्या यह कपड़े माताजी ने दिये हैं ? उन्होंने खरीदे है ? बिना आवश्यकता खरीदने की क्या बात थी ?

पत्नी ने कहा—इन कपड़ों के कारण देश की प्रतिष्ठा नष्ट होती थी और नगर की नाक कट रही थी। व्यापारी उदास होकर लौट रहे थे। कोई खरीददार नहीं मिलता था। सासूजी ने खरीद कर देश की और नगर की लाज रख

ली है और व्यापारियों की चिन्ता मिटा दी है।

इतना कहकर शालिभद्र को पिछली घटना सुनाई गई। शालिभद्र को विस्मय हुआ कि माताजी कितनी दूरदर्शिनी हैं और उनका मातृभूमि के प्रति कितना गाढ़ा प्रेम है!

सचमुच मातृभूमि की बड़ी महिमा है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अर्थात् मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। मित्रो! भारत आपकी मातृभूमि है। राणा प्रताप ने अपनी मातृभूमि की महिमा समझी थी। वह अपनी मातृभूमि का दुलारा लाल था। माता की भक्ति के लिए वह १८-२० वर्ष तक अरवली की बीहड़ पहाड़ियों में भटकता रहा और कष्ट पाता रहा, मगर जीते जी उसने मातृभूमि का अपमान नहीं होने दिया! मगर आज के अधिकांश लोगों में यह भावना दिखाई नहीं देती। वह समझते हैं—जिसने जन्म दिया है वही हमारी माता है। भूमि माता कैसे हो सकती है? उन्हें नहीं मालूम कि जन्म देने वाली तो सिर्फ माता ही है, मगर जन्मभूमि बड़ी माता है, जिसके अन्न-पानी से उनकी माता के भी शरीर का निर्माण हुआ है।

भारत आपकी मातृभूमि है। जो मातृभूमि की भक्ति के महत्व को समझेगा वह देवलोक के वस्त्रों को भी धिक्कार देगा।

अपनी स्त्री की बात सुनकर शालिभद्र लज्जित-सा हुआ। वह सोचने लगा—मेरी पत्नियों ने मेरी माता के प्रेम के

महत्व को समझ लिया, मगर मै कब जागूँगा ? मै कब उस महत्व को समझूँगा ? साथ ही उसे यह जानकर प्रसन्नता भी हुई कि मेरी पत्नियाँ मेरी माता पर गहरी आस्था और प्रेम-भक्ति रखती हैं। यह सब धर्म का ही प्रताप है।

बिना अवसर के किसी बात की परीक्षा नहीं होती! सोने की कसौटी आग में तपाने पर ही होती है। शालिभद्र ने सोचा—स्वर्ग के वस्त्र पहिनने वाली स्त्रियों को यहाँ के वस्त्र पसंद आ जाना इनके प्रेम की कसौटी है। स्वर्गीय अनुपम वस्त्रों के आगे कम्बलों के इन टुकड़ों को अधिक महत्व देना इनके प्रेम का परिचायक है। आज इन्हें इतना आनन्द हो रहा है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इससे निश्चय हुआ कि मेरी पत्नियाँ सिर्फ कपड़ों-लत्तों के लिए प्रेम नहीं करतीं। इनका प्रेम वास्तविक है—हार्दिक है।

आज की स्त्रियाँ होतीं तो कम्बल के टुकड़े पाकर नाक-भौंह सिकोड़तीं और शायद जली-कटी सुनाने से भी न चूकतीं। मगर धन्य हैं उस शालिभद्र की स्नेहशीला पत्नियाँ, जो स्वर्गीय वस्त्रों को भी तुच्छ समझ कर सास के दिये साधारण उपहार को अनमोल समझती है और उसे पाकर अपूर्व आनन्द अनुभव कर रही हैं।

शालिभद्र विचारने लगा—मेरी पत्नियाँ तो माता के प्रति प्रेम की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो चुकीं, मैं कब उत्तीर्ण होऊँगा ? तेतीस परीक्षार्थियों में से बत्तीस परीक्षा देकर

उत्तीर्ण हो जावें और एक कारणवश परीक्षा न दे पावे तो उसके हृदय में जैसी ग्लानि होती है, वैसी ही ग्लानि का अनुभव शालिभद्र करने लगा।

शालिभद्र की पत्नियों ने उस दिन वही कम्बल ओढ़ दूसरा दिन हुआ। नित्य की भाँति आकाश से फिर वस्त्र और आभूषणों की पेटियाँ उतर आई।

शालिभद्र की पत्नियाँ आपस में विचार करने लगीं—स्वर्ग के कपड़े पहिनते-पहिनते हमें इतने दिन हो गए, मगर उनसे हमने अपना ही तन ढँका है। किसी को दान नहीं दिया देवलोक के कपड़े ठहरे, किसी को दे दें तो उसे पहनने मे लज्जा होगी, क्योंकि ऐसे कपड़े पहिनना उसकी हैसियत के बाहर है। सभी लोग उसकी ओर उंगली उठाएँगे।

मैंचेस्टर का मलमल आप शौक से पहनते हैं। अगर आप किसी श्रमजीवी को वह दे दें तो वह बेचारा क्या करेगा? ऐसे कपड़े गरीबों को देना उन्हें गड़हे में गिराना है। उन्हें तो मोटी खादी चाहिए। वही उनके काम आ सकती है।

शालिभद्र की पत्नियाँ सोचने लगीं—अब तक तो कपड़ों को देने की अनुकूलता ही नहीं थी। आज अनुकूलता है। यह कम्बल किसी को दे दिये जाएँ तो अच्छा होगा। फैंक देने से क्या लाभ है? यह मर्त्यलोक के वस्त्र हैं, दे देने में कोई हानि भी नहीं है।

इस विचार से सब को प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—सासू

के हाथ का प्रेम का कपड़ा दूसरों से भी प्रेम उत्पन्न करेगा, यह बड़े आनन्द की बात है। मगर प्रश्न यह है कि दिये किसे जाएँ? घर में दास-दासियों की संख्या इतनी है कि एक-एक टुकड़ा भी उनके पल्ले न पड़ेगा। फिर किसे दें और किसे न दें? तो जिस प्रकार इन कम्बलों से सासू ने अपनी परीक्षा की है, उसी प्रकार हम लोग किसी की परीक्षा करें। ऐसा करने से दान भी हो जाएगा और यह परीक्षा भी हो जाएगी कि अपने घर में किसी की नीयत तो खराब नहीं है? अपने नौकरों की परीक्षा में अपनी भी परीक्षा हो जाएगी, क्योंकि जब तक अपनी नीयत खराब न होगी तब तक नौकरों की भी नीयत खराब नहीं होगी। अगर हम में धर्म है, हमारा धर्म छूटा नहीं है तो अपने घर में रहने वालों में और घर आने वालों में भी धर्म रहेगा, उनका धर्म नहीं छूटेगा। उनकी नीयत में तब तक खराबी नहीं आ सकती, जब तक अपनी नीयत में खराबी नहीं आई है। अगर अपने घर रहने वालों की नीयत खराब हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त हमें करना चाहिए।

इस विचार से वे प्रसन्न हो उठीं। उन्हें अपने धर्म की परीक्षा करने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं हुई। सब कहने लगीं—मैं अपने धर्म की परीक्षा करूँगी।

निर्णय हुआ कि कम्बलों को चौक में उतार कर डाल दिया जाय। अगर बिना पूछे कोई ले जाय तो समझना चाहिए कि हमारे भी धर्म में कमी है।

सब ने स्नान किया और देवलोक के कपड़े पहन लिए। उतारे हुए कम्बल चौक में डाल दिये गये। सब से पहले रास्ते में झाड़ू लगाने के लिए भंगिन चौक में गई। कम्बल के बत्तीसों टुकड़े एक जगह पड़े हुए अद्‌भुत प्रकाश कर रहे थे। भंगिन उस प्रकाश को देखकर चौंकी कि कहीं आग तो नहीं लग रही है! डरती-डरती वह नज़दीक गई। नज़दीक जाने पर मालूम हुआ कि यह कम्बल हैं। उसने सोचा—किसी महारानी के कपड़े गिर गये दीख पड़ते हैं।

यह भंगिन उस जाति की स्त्री है जिसे लोग हीन समझते हैं। फिर भी वह इतनी निष्ठावान् है कि बीस लाख मोहरों की कीमत के कपड़े सामने पड़े देखकर भी उसकी नीयत में फर्क नहीं आया। अभी पूरी तरह प्रकाश भी नहीं हो पाया है और देखने वाला भी कोई नहीं है। वह उठाकर चल दे तो कौन रोकने वाला है? वह कम्बलों को घर पर रखकर फिर काम पर आ सकती है। अभी समय भी काफ़ी है। फिर भी वह स्वामी-सेवक के व्यवहार को भलीभाँति समझती है। उसने कम्बल नहीं उठाये। उसने सोचा—यह कपड़े मेरे योग्य नहीं हैं और इन पर मेरा अधिकार भी नहीं है। यह स्वामी के जान पड़ते हैं। उन्हें सूचना देना ही उचित है। ठीक ही हुआ कि मैं पहले ही आ पहुँची। दूसरा आता तो क्या ठिकाना था कि वह इन्हें छोड़ता या उठा ले जाता। फिर शायद मैं बदनाम होती। अब इन वस्त्रों को स्वामी के घर पहुँचा देना

और फिर मैं सभी से पुरस्कार की आशा रखने लगूँगा। इस कारण मैं नियत रकम से ज्यादा नहीं ले सकता।

यह वृत्तान्त पैसे देने वाले भंडारी जोरावरमलजी ने स्वयं ही मुझे सुनाया था। जब एक गरीब भंगी की भी यह नीयत है तो उन बहिनों और भाइयों से क्या कहा जाय जो मोटरों और घोड़ागाड़ियों के निमित्त तो सैकड़ों ही नहीं हजारों रुपये उड़ा देते हैं किन्तु धर्म के नाम पर, खरीदने की शक्ति होते हुए भी दो पैसे की चीज़ के लिए हाथ फैला कर कहते हैं—हमें दो, हमें दो। तात्पर्य यह है कि कई-एक मालदारों की भी निष्ठा वैसी नहीं रहती जैसी उस गरीब मेहतर की थी! यह क्या उचित कहा जा सकता है? कोई वात्सल्य-भाव से भेंट दे, यह बात दूसरी है, लेकिन मुँह से माँग कर लेना कितनी बेहूदी बात है। जिसकी निष्ठा ही ठिकाने नहीं है वह धर्म की सेवा कैसे करेगा?

जो व्यक्ति धर्म में निष्ठा स्थापित करना चाहता है उसे आकांक्षा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। एक भंगिन ने भी, जिसे आप नीच जाति समझते हैं, लाखों सोनैयों की कीमत के माल पर नीयत नहीं बिगाड़ी और न मुँह से याचना की, तो जो लोग उच्च कुल में जन्मे हैं, उन्हें विशेष रूप से इस ओर ध्यान देना चाहिए।

आज के लोग तो इनाम-इकरार पाकर काम खराब कर देने की भी परवाह नहीं करते परन्तु उस भंगिन ने आज

बहुत प्रेम से बुहारा।

भारतवर्ष में सभी वर्ण वाले अपने अपने दर्जे पर रहे हैं किन्तु उनका आपस में प्रेम अवश्य रहा है। अर्थात् राजा का प्रेम भंगी पर भी रहा है और भंगी का प्रेम राजा पर रहा है। कोई किसी से घृणा नहीं करता था। इसी कारण भारत की सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रही है।

अपना नियत कर्त्तव्य बजाने के बाद भंगिन कम्बलों को लेकर अपने घर गई। उसने विचार किया—यह कपड़े मिले हैं तो इनका उपयोग भी कर लेना चाहिए। यह विचार कर उसने बत्तीस टुकड़ों में से एक टुकड़ा ओढ़ लिया और झाडू तथा टोकरी लेकर राजद्वार झाड़ने चल दी। जिस कपड़े को राजा श्रेणिक भी नहीं खरीद सके उसे ओढ़कर भंगिन आज महत्-रानी बन गई।

भंगिन-महतरानी कहलाती है। सोचने की बात है कि अगर वह नीच काम करती है—जैसे कि लोग मानते हैं, तो उसे यह पदवी क्यों दी गई है?

भारत ने भंगिन को सफाई का काम किस तत्व की प्रेरणा से सौंपा होगा, यह कहना कठिन है। विनीता नगरी जब बसी थी तब भगवान् ऋषभदेव ने भंगियों का वर्ग किस लिए बनाया? उस वर्ग को यह नीच काम क्यों सौंपा? और सब से बड़ी बात तो यह है कि उस वर्ग ने यह स्वीकार ही क्यों किया? अगर आज स्त्रियों को समझाया जाय कि बालक की अशुचि उठाना बुरा है—घृणित है तो उन्हें उस काम से घृणा

हो जायगी। इसी, कारण जब रोगी की सेवा करने का अव-सर आता है तो सेवा करने वाली को भाग्यवान् आदि ऊंचे विशेषणों से संबोधित किया जाता है, जिससे कि सेवा करने वाली को अपने कार्य के प्रति घृणा न हो और हर्षपूर्वक वह काम करे। इसी प्रकार भंगियों को न जाने कह कर यह काम सौंपा गया होगा? इसी कारण भंगी को महतर—पद दिया गया है—नीचतर पद नहीं दिया गया है।

कम्बल ओढ़ कर मेहतरानी बाजार में होकर गई और राजा के द्वार के सामने झाड़ने लगी। रास्ते में जिस किसी ने उसे रत्न-कम्बल ओढ़े देखा, उसी की दृष्टि उस पर ठहर गई। सब ने सोचा, उसे ठहरा कर कंबल के विषय में पूछताछ करें। मगर उसने उत्तर दिया—मुझे काम करना है। देरी हो गई है। इस समय ठहर नहीं सकती। और वह बिना ठहरे चलती गई। लोग चकित रह गये कि जिस रत्न—कंबल को महाराजा श्रेणिक भी नहीं खरीद सके थे, वह मेहतरानी के पास कैसे आ गया? किसी ने कहा—कफन का होगा। दूसरे ने उत्तर दिया—इसे खरीदा ही किसने था कि कफन में इसे मिला होगा।

सवेरा हो चला था। महारानी चेलना अपने महल के झरोखे में बैठी प्रातःकालीन शोभा का निरीक्षण कर रही थीं। उसी समय मेहतरानी झाड़ने के लिए पहुँची। महारानी की दृष्टि तत्काल ही उस पर पड़ी और कम्बल देखकर वह आश्चर्य

में डूब गई। रानी को यह पहिचानते देरी न लगी कि यह वही कंबल है, जो दरबार मे विकने आया था और मैंने एक कंबल खरीदने के लिए महाराज से निवेदन किया था; मगर यह बहुमूल्य कंबल महतरानी के पास कैसे आ गया ?

कई लोग भंगिन के पास खड़े होकर उसी कंबल के विषय में पूछताछ कर रहे थे। भगिन परेशान थी और शायद सोचती थी कि यह लोग कैसे निकम्मे है जो अपना-अपना काम छोड़कर यहाँ जमा हुए हैं ! मै अपना काम नियत समय पर न करती अर्थात् जल्दी शालिभद्र के घर की तरफ न जाती तो यह कंबल कैसे मिलते ?

आखिर महारानी ने महतरानी को अवाज़ दी। महतरानी सोचने लगी—आखिर इस कंबल के प्रताप से ही आज मुझे महारानीजी के दर्शन करने का सौभाग्य मिल रहा है। फिर उसने कहा—'जी अन्नदाताजी !'

महारानी ने किंचित् रुखाई प्रकट करते हुए पूछा—सच बता यह कंबल कहाँ से लाई है ?

महतरानी—अन्नदाता, मै चोरी करके तो ऐसी चीज़ ले ही कैसे सकती हूँ ? आप सरीखे किसी दाता से मुझे मिल गया है।

महारानी—इसे देने वाला दयालु कौन है ?

महतरानी—मैं पहले पहल शालिभद्र के यहाँ झाड़ू लगाने जाती हूँ। वहाँ मुझे ऐसे-ऐसे बत्तीस कम्बल मिले हैं।

महारानी—तूने ऐसा क्या काम किया था कि इतने कंबल

इनाम में पाये ?

महतरानी—वही जो आपके यहाँ करती हूँ।

महारानी—सच सच कह देना, चुराकर तो नहीं ले आई है?

महतरानी—महारानीजी, चुराकर लाती तो क्या बाज़ार में ओढ़कर निकलती ?

भंगिन की बात सुनकर महारानी सन्नाटे में आ गई। उसका चेहरा उदास हो गया। सोचने लगी—ओफ़! मैं महारानी होकर भी जिस वस्तु से वञ्चित रह गई वही महतरानी को अनायास प्राप्त हो गई! जिसके घर ऐसे बहुमूल्य कंबल भंगिन को दे दिये जाते हैं, उसके यहाँ कैसे कपड़े पहने जाते होंगे!

रानी उदास होकर वहाँ से चल दी। पास खड़े लोग सोच रहे थे कि व्यापारियों के पास कुल सोलह कंबल थे। जिसने सोलहों कंबल खरीद कर और एक-एक के दो-दो टुकड़े करके भंगिन को दे दिये, वह कितना भाग्यवान् पुरुष होगा।

सारे नगर में आज यही चर्चा थी। जो सुनता, आश्चर्य करता और सोचता इतनी सम्पत्ति शालिभद्र के घर कहाँ से आई होगी? लेकिन वे लोग कुछ भी निश्चय न कर सके।

रानी मन ही मन बहुत खीझी। इसी खीझ को प्रकट करने के उद्देश्य से वह कोपभवन में चली गई। वह अपने आपको धिक्कारती और सोचती थी कि—मैं मगध की सम्राज्ञी कहलाती हूँ; फिर भी एक रत्नकंबल नहीं पा सकी और एक

नाचीज भंगिन उसे ओढ़े फिर रही है! ऐसी दशा में मै महा-रानी कैसे रही !

महाराज श्रेणिक को सूचना दी गई कि आज महारानीजी उदास होकर कोपभवन में हैं। श्रेणिक ने सूचना पाकर सोचा-रानी प्रजा की माता है। उसका उदास रहना उचित नहीं है। यह सोचकर श्रेणिक रानी के पास आये और उन्होंने उदासी का कारण पूछा।

रानी ने कहा—मैंने आपसे एक रत्नकंबल खरीदने की प्रार्थना की थी। मगर आपने उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। आपने सोचा होगा, इतनी रानियों में एक रत्नकंवल लेने से आपस में तकरार होगी। यह विचार कर आपने एक भी कंवल नहीं लिया। मै मानती हूँ कि राजा का कोष प्रजा के कठिन परिश्रम से भरता है और अनेक कंबल खरीदना प्रजा के प्रति अन्याय होता। लेकिन एक कंबल खरीद लेना तो कोई बड़ी बात नहीं थी। क्या आप नहीं जानते कि हम सब रानि-याँ आपस में हिलमिल कर रहती हैं। एक कंवल खरीदने से हमारी परीक्षा भी हो जाती। या तो हम एक-एक दिन उसे ओढ़ लेतीं या फिर जिसे आपकी इच्छा होती उसी को आप दे देते। मगर एक कंवल तो ले लेना ही उचित था। बेचारे व्यापारी बड़ी आशा लेकर मगध की राजधानी में आये थे। वे निराशा लेकर लौटे। इससे राज्य की प्रतिष्ठा और मर्यादा को क्या क्षति नहीं पहुँची है? इसके अतिरिक्त देश के कला-

पर हमारे सभी कंबल उनके यहाँ खरीद लिए गये हैं और उनका मूल्य भी हमें चुका दिया गया है।

'शालिभद्र !' यह कौन-सा नया सेठ है, जिसे मै पहिचानता भी नहीं ! राजगृह के सभी बड़े बड़े सेठ मेरे यहाँ आते-जाते हैं, मगर शालिभद्र तो कभी आया नहीं जान पड़ता !

राजा सोचने लगे—मै राज्य का स्वामी हूँ। सब ऋद्धियाँ मेरे सामने उपस्थित रहती हैं। लेकिन मै एक भी कंबल न खरीद सका और मेरे एक ही प्रजाजन ने सोलह कंबल खरीद डाले ! मै एक सेठ का भी मुकाबिला न कर सका ! अब भी मुझे अपनी ऋद्धि का गर्व हो तो वह मिथ्या गर्व है !

राजा ने व्यापारियों को विदा किया और वह रानी के पास पहुँचे। समस्त वृत्तान्त सुना देने के पश्चात् राजा ने कहा—महारानी, आश्चर्य यही है कि मै राजा होकर भी एक कंबल नहीं खरीद सका और एक ही सेठ ने सोलह कंबल खरीद लिये।

रानी मन ही मन कहने लगी—अभी तो इन्हें खरीदने की बात पर ही आश्चर्य हो रहा है, परन्तु जब यह सुनेंगे कि वे सब कंबल भंगिन को दे दिये गये तो कैसा आश्चर्य करेंगे ?

राजा आगे बोले—शालिभद्र के घर सोलह कंबल खरीदे गये हैं, तो उनमें से एक कंबल मोल खरीदा जा सकता है। उसे नकद कीमत चुका दी जायगी। वह चाहेगा तो नफ़ा भी दे देंगे।

क्या राजा का नगर में कोई विश्वास नहीं करता था जो

उन्हें कहना पड़ा कि उसे नकद कीमत चुका दी जायगी? वास्तव में बात यह है कि बुद्धिमान् लोग आपस में उधार का लेन-देन नहीं रखते। इससे स्नेह-संबंध कायम रहता है और प्रीति टूटने का अवसर नहीं आता। इसी अभिप्राय से राजा ने नकद कीमत दे देने की बात कही है।

राजा श्रेणिक अगर आजकल के राजाओं के समान होता तो पैर में सोना पहिनने की निषेधाज्ञा के समान रत्नकंवल न ओढ़ने की आज्ञा जारी कर सकता था। मगर प्राचीनकाल के राजा कृत्रिम उपायों से अपनी मर्यादा रखने का प्रयत्न नहीं करते थे। यही कारण है कि उनकी जो मान-मर्यादा थी, उसका शतांश भी आज के राजाओं को प्राप्त नहीं है।

राजा श्रेणिक का भेजा हुआ सेवक भद्रा के घर पहुँचा। भद्रा को सूचना दी गई। भद्रा विचार करने लगी—आज तक कभी राजा का आदमी यहाँ नहीं आया। आज उसके आने का क्या कारण हो सकता है? मेरे यहाँ न किसी का लेनदेन है और न मैंने किसी की फरियाद ही की है। हमारे खिलाफ़ भी किसी की कोई शिकायत नहीं हो सकती। लेकिन उनकी छत्रछाया में रहते हैं। वह मालिक हैं। उनका आदमी आया है तो सौभाग्य की बात है।

भद्रा ने राजा के आदमी को सत्कार के साथ भीतर लाने का हुक्म दिया। जब वह सामने आया तो भद्रा ने उचित आदर करके उसके आने का कारण पूछा।

भद्रा—सौभाग्य की बात है कि आज हमारे महाराज ने हमे याद किया है। कहो, महाराज की क्या आज्ञा है?

आदमी—सुना है, आपके यहाँ रत्नकंबल खरीदे गये हैं। महारानीजी आज हठ चढ़ गई हैं। उनका कहना है कि कंबल न लेने से उनका अपमान हुआ है। अतएव महाराज ने मुझे आपके पास भेजा है कि कम्बल नकद लागत मूल्य में या कुछ नफा लेकर दे दें।

भद्रा—बस, इसलिए भेजा है?

भद्रा सोचने लगी—महाराज ने कंबल मँगाया है और वह भी नकद दाम चुकाकर! दरअसल वे अन्तर्यामी हैं। वे हृदय से हृदय की भावनाएँ पहिचानते हैं। वे हुक्म देकर भी कम्बल मँगवा सकते थे, मगर वाह रे दयालु राजा। उन्होंने सोचा होगा—यों ही हुक्म देकर कम्बल मँगवाने से भद्रा को दुःख होगा। उन्होंने मेरी हृदय की भावनाओं को पहिचान लिया है। इसी कारण तो नकद कीमत चुकाने की बात कहला भेजी है।

मित्रो! आपको भी अन्तर्यामी बनना चाहिए। कम से कम अपनी स्त्री के अन्तर्यामी तो बनना ही चाहिए। पति को पत्नी का और पत्नी को पति का हृदय तो पहिचानना ही चाहिए। दोनों को एक-दूसरे की भावनाओं को समझना और उनकी कद्र करना चाहिए। मगर इस ओर कौन ध्यान देता है? पत्नी को वस्त्रों और आभूषणों की चिन्ता से अव-

काश नहीं और पति विषयभोग में फँसा रहता है। कौन किसके अन्तरंग को पहिचाने ? पति-पत्नी, गुरु-शिष्य और राजा-प्रजा अगर हृदय से हृदय को पहिचानने का प्रयत्न करें तो किसी प्रकार की गड़बड़ ही क्यों हो !

भद्रा सोचती है—जो राजा अपनी प्रजा की भावनाओं का सन्मान करता है, उसके लिए प्रजा अगर तन, मन, धन निछावर कर दे तो कौन बड़ी बात है ! प्रजा के स्वामी होकर भी महाराज नक़द दाम देकर कंबल मँगा रहे हैं, इसी से प्रकट है कि वे किसी को सताना नहीं चाहते। ऐसे अन्तर्यामी राजा के लिए मैं प्राण भी निछावर कर सकती हूँ, कम्बल की तो बात ही क्या है !

भद्रा ने राजा के आदमी से कहा—आप महाराज का संदेश लेकर आये सो अच्छा हुआ। मगर मेरे यहाँ बहुएँ ऐसी सुकुमार हैं कि यहाँ का बारीक से बारीक और मुलायम से मुलायम वस्त्र भी वे नहीं पहिन सकतीं। ऐसे वस्त्रों से भी उनका शरीर छिलता है। ऐसी दशा में उनसे कम्बल नहीं ओढ़ जा सकते थे।

आदमी—आश्चर्य है देवि ! अगर ऐसा है तो आपकी बहुएँ क्या पहनती हैं ?

भद्रा—बहुएँ देव-वसन पहिनती हैं। मेरे पति देव हुए हैं। वे कृपा करके देववसन देते हैं। उन्हीं को बहुएँ पहिनती हैं। मैंने वह कम्बल सिर्फ नगर की प्रतिष्ठा कायम रखने के

के पात्र बनते हैं।

भद्रा को पता नहीं था कि बहुओं ने कम्बल भंगिन को दे दिये है। उसका अनुमान था कि उन्होंने शरीर पोंछ कर कम्बलों को निर्माल्य वस्त्रों में डाल दिया होगा। इसी कारण भद्रा ने राजा के आदमी को यह उत्तर दिया। भद्रा का उत्तर सुन कर वह चकित रह गया और भद्रा के घर से चल दिया।

भद्रा के घर से लौट कर आदमी जब, राजा के पास पहुँचा, उस समय राजा, रानी चेलना के भवन में थे। दोनों कम्बलों की ही चर्चा कर रहे थे और आदमी के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। आदमी को खाली हाथ आता देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—क्या शालिभद्र ने नकद दामों पर भी कम्बल देना स्वीकार नहीं किया! क्या मेरा प्रताप इतना घट गया है! प्रजा को तो उचित है कि वह मेरी आज्ञा पाकर ही वस्तु दे दे, मगर नकद कीमत और नफा देने पर भी क्या कम्बल देने को शालिभद्र तैयार नहीं हुआ? क्या मेरा भाग्यबल इतना निर्बल हो चुका है!

आदमी के आने पर राजा ने पूछा—कम्बल नहीं लाये?

आदमी ने कहा—सेठानी भद्रा ने बड़ी प्रार्थना के साथ कम्बलों के विषय में जो निवेदन किया है, उसे सुनिये। उन्होंने कहा कि नगर की प्रतिष्ठा के लिए मैंने सोलह कंबल खरीदे थे। उनके बत्तीस टुकड़े करवा डाले थे।

राजा ने आश्चर्य के साथ कहा—रत्नकम्बलों के टुकड़े करवा डाले ! क्यों ?

आदमी—सेठानी ने कहा कि मेरे यहाँ बत्तीस बहुएँ हैं। मेरे लिए सब समान हैं, कोई प्रिय और कोई अप्रिय नहीं है। अतएव सबको बराबर बँटवारा करने के लिए बत्तीस टुकड़े करवाए थे।

राजा—अच्छा, तो देने के लिए क्या कहा ? एक या दो टुकड़े ही क्यों नहीं दिये ?

आदमी—भद्रा ने कहा कि मेरी बहुएँ देवलोक के वस्त्र पहिनती है। उन्हें कम्बल कब पसंद आने लगे ?

राजा—क्या कहा, देवलोक के वस्त्र पहिनती हैं ?

रानी ने नौकर की बात सुन कर अपने आपको धिक्कारते हुए कहा—हम एक कम्बल के लिए तरसती हैं और चाहती हैं कि एक मिल जाय तो सब रानियाँ कभी-कभी ओढ़ लिया करें और उसकी बहुओं को वे कम्बल पसंद नहीं हैं! हमारा रानी होने का गर्व एकदम मिथ्या है !

राजा ने पूछा—जब भद्रा की बहुओं को कम्बल पसंद नहीं है और वे उन्हे नही ओढ़ती हैं तो फिर एक कम्बल या उसका एक टुकड़ा देने में क्या हर्ज़ था ?

आदमी—सेठानी ने एक-एक टुकड़ा अपनी बहुओं को परीक्षा के लिए दिया था। बहुओं ने उन्हें प्रेमपूर्वक ले लिया और इस प्रकार अपनी सास के प्रति आदर प्रकट किया।

उन्होंने अपने व्यवहार से प्रकट कर दिया कि देवलोक के वस्त्र पहिनने पर भी वे अपनी सासू की अवहेलना नहीं करतीं। इस प्रकार बहुओं ने वह कम्बल प्रेमपूर्वक ले तो लिए, मगर ओढ़े नहीं होंगे। जैसे प्रतिदिन पहिने हुए कपड़े उतार कर निर्माल्य-वस्त्र भण्डार में डाल दिये जाते हैं, उसी प्रकार कंबल भी शरीर पोंछ कर भंडार में डाल दिये होंगे। अतएव भद्रा ने प्रार्थना की है कि निर्माल्य वस्त्र मैं अपने महाराज को कैसे दे सकती हूँ!

सेवक की बात सुनकर राजा और रानी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। राजा ने रानी की ओर एक खास तरह की नज़र से देखा, जिसका आशय यह था कि क्या निर्माल्य वस्त्रभण्डार में से भी कम्बल मँगवा लें?

रानी सोचने लगी—इन निर्माल्य कम्बलों ने तो हमको ही निर्माल्य बना दिया!

राजा और रानी आपस मे कहने लगे—अपना सुकृत संभालो! हम लोग तो एक कम्बल के लिए तरस रहे हैं और भद्रा के घर सोलह कम्बलों के बत्तीस टुकड़े कर दिये गये और फिर वे निर्माल्य वस्त्रों में फेंक दिये गये! उनके और अपने पुण्य की तुलना करो। रानी कहने लगी—मैं रानी हूँ मगध के विशाल साम्राज्य की स्वामिनी कहलाती हूँ और भद्रा मेरे राज्य में रहने वाली प्रजा है। फिर भी उसका सुकृत देखकर आज मैं निर्माल्य बन गई हूँ। मुझे खयाल

आ रहा है कि सवा लाख स्वर्ण-मोहरों के मूल्य का वस्त्र भी
जिस शरीर को छूकर निर्माल्य हो गया तथा शरीर पर पड़ने
के कारण मै अब उसे नहीं ले सकती; किन्तु घृणा करती हूँ,
वह शरीर कैसा है ! आत्मन् ! तू किस शरीर में भूला हुआ
है ? निर्माल्य वस्त्र का उपयोग करने से घृणा होती है तो यह
आत्मा किन-किन निर्माल्य वस्तुओं का सेवन करता है; यह
देखने की मुझे अन्तःप्रेरणा हुई है। कम्बल मुझे इशारा कर
रहे हैं कि निर्माल्य होने के कारण आपने मुझे तो त्यागा, मगर
भीतर भरे हुए निर्माल्य पदार्थों का त्याग कब किया जायगा ?

मित्रो ! चर्बी-लगे वस्त्र पवित्र है या निर्माल्य ?

'निर्माल्य !'

दूध के कटोरे में शराब का एक बूँद डाल दिया जाय तो
वह पवित्र बना रहेगा या अपवित्र हो जायगा ?

'अपवित्र हो जायगा।'

उसे पीना पसंद करोगे ?

'नहीं !'

खून से साफ़ की गई विदेशी शक्कर की बनी बिस्कुट
आप खा जाते हैं तो फिर क्या कहा जाय ! आपमें भी रानी
चेलना सरीखी चेतना होनी चाहिए। चेलना चाहती तो
निर्माल्य कम्बलों में से कम्बल मँगवा लेती और अग्नि में डाल-
कर उन्हें पवित्र करवा लेती। मगर क्या उसने ऐसी इच्छा
भी की ? नहीं। फिर आप भी तो चेलना के भाई-बहिन ही

हैं। फिर कैसे कहते हैं कि चर्बी के वस्त्र पानी में धो लेने पर पवित्र हो गये।

राजा श्रेणिक ने रानी से कहा—महारानी, अपने घर में और शालिभद्र के घर में उतना ही अन्तर है जितना सरोवर और सागर में होता है। अपना घर सरोवर-सा है और शालिभद्र का घर सागर के समान। अतएव हमें गर्व का आश्रय न लेकर उसके पूर्वकालीन सुकृत की सराहना करनी चाहिए। जिनकी लक्ष्मी दया-दान और सुकृत्यों के प्रभाव से है, उनकी लक्ष्मी के सामने अहंकार और डाह नहीं करना चाहिए।

प्रत्येक वस्तु में गुण और अवगुण—दोनों ही मिलते हैं। उस वस्तु को देखने के दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। एक आदमी किसी की महान् ऋद्धि देखकर ईर्षा से जल उठेगा और पाप का बंध कर लेगा और दूसरा, जो सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी है, विचार करेगा कि इस ऋद्धि को देखकर हमें सुकृत्य करने की शिक्षा लेनी चाहिए।

राजा-रानी के हृदय में शालिभद्र की ऋद्धि देखकर अगर ईर्षा होती तो वे कोई न कोई उपाय खोज कर उसे छीन लेने का प्रयत्न करते। यह सोच सकते थे कि हमारी प्रजा होकर भी हमारे महल से ऊँचा महल और हमारी ऋद्धि से अधिक ऋद्धि क्यों? मगर श्रेणिक ऐसे राजा नहीं थे। वे प्रजा को अपनी संतान समझते थे और उसके उत्कर्ष में आह्लाद

सुकृत्यों को देखो। इस नगर में जिन वस्त्रों को कोई न खरीद सका, हम तुम भी लेने में संकोच कर गये, वही वस्त्र शालिभद्र के घर पाँव पोंछकर फेंक दिये गये ! शालिभद्र के घर में और अपने घर में कितना अन्तर है ? सच है, संसार में कहीं अभिमान करने को अवकाश नहीं है। यहाँ सर्वत्र एक से एक बढ़कर मिल सकते हैं। दीपक भले ही गर्व करे मगर सूर्य गर्व नहीं करता और कहता है—गर्व किस बूते पर किया जाय, मैं तो देखते-देखते ही अस्त हो जाता हूँ। चन्द्रमा कहता है—मैं गर्व करने के योग्य नहीं, क्योंकि राहु मुझे ग्रस लेता है और काला स्याह बना देता है। जब गगनविहारी सूर्य और चन्द्रमा भी गर्व नहीं करते तो हम किस प्रकार गर्व करें ? हमारे पास अभिमान की सामग्री ही क्या है ?

इस प्रकार विचार करते-करते राजा श्रेणिक को शालिभद्र से मिलने की इच्छा हुई। उसने सोचा—जिसकी ऋद्धि ऐसी अनुपम है, देखना चाहिए वह स्वयं कैसा है ! वह अपने साथ क्या-क्या सुकृत्य लाया है, यह तो अनुमान से ही जाना जा सकता है परन्तु उसके पुण्य के व्यंजक लक्षण उसके शरीर पर क्या-क्या हैं, यह तो प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। शालिभद्र को प्रत्यक्ष देखने पर ही पता चल सकेगा।

नास्तिक लोग लक्ष्मी को निर्हेतुक मानते हैं। उनके अभिप्राय से बिना ही किसी कारण के यों ही लक्ष्मी मिल जाती है। मगर आस्तिकों का कहना है कि जिसके शरीर पर सुलक्षण

हैं और जो सुकृत्य लेकर आया है, उसी के यहाँ लक्ष्मी आती है।

ब्रह्मदत्त राजा भिखारी बनकर जङ्गल में गया था। उसके पैरों के निशान देखकर एक निमित्तवेत्ता ने सोचा—इस ओर कोई चक्रवर्त्ती गया है। वह इस आशा से दौड़ा गया कि चक्रवर्त्ती मिल जायगा तो मै निहाल हो जाऊँगा। मगर आगे जाने पर उसे चक्रवर्त्ती के बदले एक भिखारी दिखाई दिया। यह देखकर निमित्तवेत्ता रोने लगा। ब्रह्मदत्त ने उससे रोने का कारण पूछा। निमित्तवेत्ता ने कहा—मै चक्रवर्त्ती के दर्शन की अभिलाषा से दौड़ा आया था लेकिन यहाँ तो तुम्हारे दर्शन हुए। मैंने सोचा था—चक्रवर्त्ती के मिलने पर मै माला-माल हो जाऊँगा—मेरा भाग्य जाग उठेगा। पर अब मै इस-लिए रोता हूँ कि भाग्य न जागा सो न सही. पर मेरा शास्त्र ही झूठा हो रहा है।

ब्रह्मदत्त ने कहा—पण्डित, तुम्हारा शास्त्र झूठा नहीं है। मैं चक्रवर्त्ती ही हूँ मगर समय के फेर से मुझे भिखारी बनना पड़ा है। जब मेरा भाग्य फिर से पलटे तब तुम मेरे पास आना। मैं तुम्हे एक गाँव दूँगा।

तात्पर्य यह है कि झूठ-कपट का सहारा लेने से लक्ष्मी नहीं मिलती। लक्ष्मी के साथ सुकृत्यों का संबंध रहता है और शरीर पर से प्रकट हो जाता है। यह संबंध देखने के लिए हीं राजा श्रेणिक, शालिभद्र को अपने पास बुलाने का विचार कर रहा है।

शालिभद्र-श्रेणिक-समागम ।

——::::()::::——

शालिभद्र के देखने की अभिलाषा राजा श्रेणिक के हृदय में बलवती हो गई। अतएव उसने अपने मन्त्री और पुत्र अभयकुमार को बुलाया और कहा—अभय, जाओ, शालिभद्र सेठ को सत्कार के साथ यहाँ ले आओ। मै उसे देखना चाहता हूं।

राजा शालिभद्र की संपदा नहीं देखना चाहता, शालिभद्र को देखना चाहता है। अब आप विचार कीजिए कि बड़ा कौन है—शालिभद्र या शालिभद्र की संपदा?

'शालिभद्र!'

लोग लक्ष्मी को देखना चाहते हैं मगर लक्ष्मीपति को नहीं देखना चाहते। यह चाह रावण की चाह सरीखी है। रावण ने सीता को तो चाहा मगर राम को न चाहा। इसका फल क्या हुआ?

'नाश!'

इसी प्रकार अधिकांश लोगों को लक्ष्मी चाहिए, लक्ष्मीपति नहीं चाहिए। दाम चाहिए, राम नहीं चाहिए।

श्रेणिक आकर शालिभद्र की लक्ष्मी को देखना चाहता तो दौड़कर उसके घर जाता। मगर वह तो लक्ष्मीपति को देखना चाहता था। इसी कारण उसने अभयकुमार को भेजा कि वह शालिभद्र को बुला लावे।

आप लोग पाप का संग्रह करके लक्ष्मी चाहते हैं। अर्थात् राम का तिरस्कार करके सीता चाहते है। रावण ने राम को दूर रखकर सीता को अपनाने का जैसा उपाय किया था, वैसा ही उपाय आप पुण्य को दूर रखकर लक्ष्मी को अपनाने के लिए करते हैं। किन्तु राजा श्रेणिक अपने घर और शालि-भद्र के घर में सरोवर तथा समुद्र सरीखा अन्तर देखकर भी लक्ष्मी को नहीं वरन लक्ष्मीपति को देखना चाहता है।

अभयकुमार, शालिभद्र के विषय में सब वृत्तान्त सुन चुके थे। उन्होंने कहा—महाराज! सब आपका ही प्रताप है। जिस राजा के राज्य में शालिभद्र सरीखे सम्पत्तिशाली पुण्यवान् गृहस्थ निवास करते हैं, उस राजा की कहाँ तक बड़ाई की जाय?

श्रेणिक—तो जाओ, शालिभद्र को बुला लाओ। उसे दूसरे के साथ बुलाना उचित नहीं होगा, यह विचार कर तुम्हें भेजता हूँ।

अभय०—मेरे लिए तो एक पंथ दो काज होंगे। आपके

आदेश का पालन भी हो जायगा और उस ऋद्धिमान् का दर्शन आपसे भी पहले मुझे हो जायगा।

प्रधान अभयकुमार बड़ी शानशौकत के साथ शालिभद्र के घर गया। प्रधान, राजा का दूसरा अंग होता है. फिर अभयकुमार तो राजा का पुत्र और इस समय प्रतिनिधि भी था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि राजा ही शालिभद्र के यहाँ चला।

भद्रा को सूचना दी गई कि अभयकुमार प्रधान उसके यहाँ आ रहे हैं। वह सोचने लगी—शायद उन कम्बलों के सिलसिले में ही आ रहे होंगे। मेरे यहाँ जो कुछ है, वह मैं उनके सामने हाजिर कर दूँगी। यह सोचकर भद्रा ने अपने मुनीम आदि कर्मचारियों को सामने जाकर आदरपूर्वक अभयकुमार को ले आने के लिए भेजा। मुनीम आदि ने अभयकुमार के सामने जाकर जिस प्रकार की नम्रता दिखलाई, उसे देखकर अभयकुमार बहुत प्रभावित हुआ। वह सोचने लगा—भद्रा और शालिभद्र की नम्रता एवं सज्जनता की चासनी यहीं चखने को मिल रही है! जैसे डंके की आवाज सुनकर फौज का हाल मालूम हो जाता है, उसी प्रकार कर्मचारियों का व्यवहार देखकर उनके स्वामी के व्यवहार का पता चल जाता है।

मार्ग में मुनीम आदि ने अभयकुमार का बड़े ठाठ के साथ स्वागत किया और पाँवड़े बिछाते हुए भद्रा के घर ले

आये। घर आने पर भद्रा ने अभयकुमार को उत्तम और उच्च आसन पर आसीन किया और उनकी आरती उतारी। आरती के पश्चात् अतिशय नम्रता के साथ भद्रा बोली— आपने आज मेरी कुटिया पावन की है, इसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ। आपकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ। आज्ञा हो सो फरमाइए।

अभयकुमार ने कहा—मैं जानता हूँ कि शालिभद्र भोग-पुरन्दर हैं और इसी कारण शायद वह यहाँ दिखाई नही दिये। उन्हें महाराज ने एक बार दर्शन करने बुलाया है। महाराज उनसे मिलने के लिए बहुत आतुर हैं।

भद्रा भीतर ही भीतर अत्यन्त प्रसन्न हुई। जिसके बेटे के दर्शन के लिए मगध सम्राट् लालायित हों, उसे प्रसन्नता क्यों न हो? फिर उसने सोचा—अगर मैंने बेटे को राजा के घर भेज दिया और वहाँ उसे राज्यपवन लग गया तो अनर्थ हो जायगा!

भद्रा अपने पुत्र को राजा के घर नहीं भेजना चाहती, इसका कारण समझना चाहिए। आप सोचते होंगे, शालिभद्र की सुकुमारता का विचार करके माता उसे नहीं भेजना चाहती। मगर वास्तव में भद्रा की भावना दूसरी ही है। वह सोचती है—शालिभद्र स्वर्गीय भोग-विलास भोग रहा है। उसकी दृष्टि ऊंची है। राजदरबार में जाने से उसे वैसा ही कष्ट होगा जैसा मनुष्यलोक में आने पर देवों को होता है। इसके

शालिभद्र को ले जाने की अपेक्षा महाराज को ही यहाँ लाना ठीक है।

माता भद्रा को साथ लेकर अभयकुमार महाराज श्रेणिक के पास चले। भद्रा के साथ अनेक दासियां थीं और मुनीम-गुमाश्ते आदि भी थे। भद्रा बड़े ठाठ के साथ रवाना हुई। वह ऐसी जान पड़ती थी, मानों इन्द्राणी हो। भद्रा को राजा के पास जाते देखकर नगर के लोग अनेक प्रकार के विचार-वितर्क करने लगे। कोई उन्हें आदर के साथ उपहार देता था। कोई उनके दर्शन करके अपना अहोभाग्य समझता था। कोई कहता था—यही भद्रा माता अपने नगर की लाज बचाने वाली है। कोई कहता—आज राजा के यहाँ इनके जाने का कारण क्या है? कहीं भगिन ने वह कम्बल चुरा तो नहीं लिये थे? इस प्रकार नगर के बाजार में और घरों में तरह-तरह की बातें होने लगीं।

भद्रा, राजा के यहाँ पहुँचीं। सूचना पाकर श्रेणिक उनसे मिलने के लिए आये।

प्राचीन काल मे घूंघट या पर्दे की ऐसी प्रथा नहीं थी। अब तो बहुत-से लोग समझते हैं कि लाज पर्दे में ही रहती है, बिना पर्दे के रह ही नहीं सकती; मगर ऐसा समझना भ्रम है। पहले की स्त्रियाँ पर्दा करती होतीं तो राजाओं से कैसे मिलतीं? और किसमें इतना साहस है जो कह सके कि भद्रा माता लज्जाहीन थी? यहाँ तो भद्रा का ही प्रसंग है, पर ज्ञातासूत्र में थावच्चा कुमार की कथा आई है। उस

में स्पष्ट उल्लेख है कि उनकी माता महाराज श्रीकृष्ण से मिलने गई थीं। जब थावच्चा कुमार दीक्षा लेने लगे तो उनकी माता ने कृष्णजी के पास जाकर कहा-दीक्षामहोत्सव के लिए और सब वस्तुएँ तो हैं, परन्तु छत्र और चाँवर नहीं हैं सो आप दीजिए।

इस प्रकार के कथानकों से मालूम होता है कि प्राचीन काल में पर्दे की कैद नहीं थी। पर्दा की प्रथा मुसलमानों के जमाने में आरंभ हुई है। जैसे लोग शस्त्र में ही शरण मानते हैं, उसी प्रकार पर्दे में ही लज्जा मानते हैं। मगर दोनों मान्यताएँ भूल से भरी हैं। घूंघट काढ़ लेना असली लज्जा नहीं है। असली लज्जा है-पर पुरुष को भ्राता, पुत्र समझना और वैसा ही उनके साथ व्यवहार करना।

भद्रा ने महाराज श्रेणिक को बहुमूल्य भेट दी। महाराज ने अभय कुमार से पूछा—क्या शालिभद्र तुम्हारे जाने पर भी नहीं आये ?

राजा के प्रश्न के उत्तर में अभयकुमार ने भद्रा की ओर संकेत करते हुए कहा-यह शालिभद्र की माता आप से कुछ निवेदन करने आई है। इनका कहना है कि पहले वह आपसे निवेदन कर ले, फिर शालिभद्र क्या दूर है ?

श्रेणिक आजकल के राजाओं जैसे होते तो शालिभद्र के न आने पर आग उगलने लगते। अपने हुक्म का अपमान समझकर भद्रा को दुत्कार देते। मगर राजा श्रेणिक ने

सोचा—यह पुण्याई और ही है जो पुत्र को न भेजकर माता स्वयं आई है। फिर अभयकुमार से कहा—इनका कथन अगर तुम्हें ठीक मालूम हुआ हो तो यह मुझसे भी कह सकती हैं।

राजा की आज्ञा पाकर भद्रा कहने लगी—शालिभद्र का स्वभाव ऐसा है कि चन्द्रमा और सूर्य की किरण वह सह नही सकता। और पृथ्वी पर उसका पैर नहीं टिकता। उसे नहीं मालूम कि सूर्य किधर उगता है और किधर अस्त होता है।

यह वर्णन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अलंकारमय वर्णन है। इसे आलंकारिक रूप में ही समझना चाहिए। उसका शाब्दिक अर्थ लगाने से सत्य का ज्ञान नहीं होगा। इस कथन का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—शालिभद्र रवि—शशि की किरणें सहन नहीं कर सकता, इसका अर्थ यह कि शालिभद्र ने अभी तक गर्मी और सर्दी सहन नहीं की है अर्थात् उसके सामने कभी कठोर प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ है। शालिभद्र का पैर पृथ्वी पर नहीं टिकता, इस कथन का आशय यह है कि वह किसी के आश्रित नहीं है, स्वतंत्र है और सुकुमार है। उसे सूर्य के उदय—अस्त की खबर नहीं है, इसका अर्थ यह है कि वह किसी प्रकार की व्यवस्था करने के प्रपंच में नहीं पड़ता।

भद्रा ने आगे कहा—मैं जो निवेदन कर रही हूँ, उसे आप

सत्य समझिये। वह लक्ष्मीपति है। आप इस स्थान को समीप ही समझते हैं लेकिन उसके लिए यह हजार कोस दूर है। अतएव उसे यहाँ न बुलाकर आप ही वहाँ पधारने का अनुग्रह करें तो अच्छा है। क्योंकि जो स्थान मेरे पुत्र के लिए हजार कोस दूर—सा है, वह आपके लिए सन्निकट है। आप यह सोचते हों कि शालिभद्र आपका प्रजाजन है और आप राजा होकर उसके पास क्यों जावें, तो दूसरी बात है। पर वह आपका ही बालक है। बालक दूर हो तो उसके माता—पिता प्यार करने उसके पास जाते ही हैं। इस पर भी आप न पधारना चाहें और उसे ही बुलाना चाहें—आप उसे अपना बालक न मानें तो आपकी मर्ज़ी ! फिर जैसा आपका आदेश होगा, पालन किया जायगा।

भद्रा ने बड़ी चतुराई से अपना पक्ष उपस्थित किया। राजा श्रेणिक निरभिमान व्यक्ति थे। वे उसके सामने देखने लगे।

इसके बाद भद्रा ने फिर कहा—महाराज ! आप नरेश हैं, प्रजा के पिता हैं। अगर आप मेरी लाज रखना चाहते हैं, अगर आप मुझे सम्मान देना चाहते हैं, तब तो अवश्य ही मेरी कुटिया को पावन कीजिए। संभव है, आपको कई प्रकार के अनुकूल— प्रतिकूल परामर्श देने वाले मिलेंगे, कोई कहेंगे कि प्रजा के घर जाने से राजा का गौरव घटता है, पर आप इन बातों पर विचार न करके अपने स्वतंत्र विचार पर आजाइए। अगर शालिभद्र पर आपकी थोड़ी-सी भी

प्रीति हो तो अधिक विचार मत कीजिए।

जिसकी जिस पर प्रीति हो जाती है, वह उसके बल-अबल को नहीं देखता। माता प्रीति के वश होकर अपने बालक की अशुचि उठाती है। वह अनुभव करती है कि मैं ऐसा करके बालक की रक्षा कर रही हूँ। अगर अपने बालक की अशुचि उठाने वाली माता से कोई दूसरा अपने बालक की अशुचि उठाने के लिए कहे और उसे मन-चाहा मिहनताना देने का प्रलोभन दे, तो क्या वह अशुचि उठाने को तैयार होगी? कभी नहीं। क्योंकि दूसरे के बालक के प्रति उसमें आत्मीयता नहीं है—प्रीति नहीं है। हाँ प्रीति होने पर वह पड़ौसी के बालक की अशुचि बिना मिहनताने के ही उठा सकती है। तात्पर्य यह है कि असली चीज़ प्रीति है।

इसीलिए शालिभद्र ने कहा—अगर शालिभद्र को आप अपना पुत्र मानते हैं, उस पर आपकी प्रीति है, तो आपको पधारना ही पड़ेगा। अगर आपका उस पर प्रेम ही न हो तो फिर कोई ज़ोर नहीं।

भद्रा ने राजा के समक्ष नम्रता प्रदर्शित की। यद्यपि उसे अहंकार आ सकता था कि हम राजा का दिया क्या खाते हैं और क्यों उसके यहाँ जावें? भद्रा देवबल से भी काम ले सकती थी। मगर उसने देवबल की अपेक्षा आत्मबल अर्थात् नम्रता और कोमलता को ही अधिक समझा और उसी का उपयोग किया।

भद्रा की भद्रतापूर्ण विनीत वाणी सुनकर राजा अपने मन्त्री से सलाह करने लगा। उसने पूछा—क्यों अभय! तुम्हारी क्या सलाह है?

अभयकुमार—मुझे तो जाने में कोई हानि नहीं जान पड़ती। बल्कि मेरी भी यही प्रार्थना है कि शालिभद्र के घर अवश्य पधारिये। जब आप जाएँगे तो अवश्य सोचेंगे कि आप ऐसे स्थान पर नहीं गये जहाँ आपको नहीं जाना चाहिए था।

राजा—तो फिर ठीक है। आगे तुम चलो, पीछे से मैं भी आता हूँ।

अभयकुमार चलने को उद्यत हुए। साथ ही यह विचार भी होने लगा कि राजा के साथ और कौन-कौन जाएँ? बड़े-बड़े लोगों को राजा के साथ चलने का निमन्त्रण दिया गया। बड़ों के साथ छोटे आदमी नौकर-चाकर भी जाते है। जिन बड़ों को राजा का निमन्त्रण मिला था, उनके नौकर अपने स्वामियों से कहने लगे—आप अपने साथ मुझे अवश्य ले चलें। किसी ने कहा—हुजूर, मैं आपकी सेवा में रहूँगा तो ठीक रहेगा। इस प्रकार शालिभद्र के घर जाने के लिए लोगों में होड़-सी मच गई।

इस प्रकार अनेक बड़े-बड़े लोगों के साथ राजा श्रेणिक ने शालिभद्र के घर जाने के लिए प्रस्थान किया। मगध-सम्राट् को शालिभद्र के घर जाते देख नगरनिवासियों में

एक प्रकार की हलचल-सी मच गई। विशाल जनसमूह राजा के पीछे हो गया; मानों किसी उत्सव के अवसर पर राजा का जुलूस निकल रहा हो। लोग सोचने लगे—जिस शालिभद्र को देखने के लिए मगधेश स्वयं जा रहे हैं, वह पुण्यशाली शालिभद्र कैसा होगा !

वस्तु मँहगी तभी होती है जब बड़े लोग उसकी माँग करते हैं। इसी प्रकार जिसे श्रेणिक देखना चाहते हैं उसे कौन न देखना चाहेगा ? इसी कारण बहुत-से लोग अपनी सम्पत्ति का अभिमान त्याग कर राजा श्रेणिक के पीछे-पीछे हो लिये थे। लोगों में उत्कंठा इतनी प्रबल हो उठी थी कि कोई अगर पगड़ी पहन पाया तो और कोई कपड़े ही नहीं पहन सका, किसी ने कपड़े पहिन लिये तो उसे पगड़ी पहिनने का समय न मिला। मतलब यह है कि लोग राजा के साथ शालिभद्र के घर जाने के लिए इतने उत्सुक हो उठे कि उन्हें वस्त्र धारण करने का भी खयाल न रहा।

राजा चले जा रहे थे और दुंदुभि बज रही थी। प्रश्न हो सकता है कि दुंदुभि क्यों बजती है ? इसका उत्तर समझने के लिए यह देखना चाहिए कि हाथी के गले में घण्टा क्यों बाँधा जाता है ? हाथी का पैर इतना धीमा पड़ता है कि पास बैठे लोगों को भी उसके निकल जाने की खबर नहीं पड़ती। अतएव हाथी के निकलने की सूचना देने के लिए उसके गले में घंटा बाँध दिया जाता है। हाथी के समान

बड़े आदमियों की चाल भी धीमी होती है, तिस पर भी राजा की चाल का तो कहना ही क्या है ! इसीलिए राजा के साथ उसका राजसी ठाठ रहता है कि लोग उसे पहिचान लें।

अभयकुमार भद्रा के साथ पहले ही शालिभद्र के घर पहुँच चुके थे। भद्रा ने कहा—आपकी कृपा से ही महाराज मेरे यहाँ पदार्पण कर रहे हैं। मगर मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि महाराज का स्वागत-सत्कार किस प्रकार किया जाता है ? अतएव आप ही हमारे पथप्रदर्शक बनिये।

अभयकुमार ने भद्रा की प्रशंसा करते हुए कहा—जिस प्रकार सोने को रंगने की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार आपके यहाँ किसी तैयारी की आवश्यकता नहीं है। आपके यहाँ तो सभी तरह की तैयारियाँ पहले ही हैं।

भद्रा ने मोती-माणिक आदि रत्नों से भरे हुए थालों को लिये मुनीम आदि को अपने साथ लिया और अत्यन्त उत्साह और ठाठ के साथ राजा के सामने जाकर वह उन्हें वधा कर घर में लाई।

शालिभद्र का घर क्या था, दिव्य और अद्वितीय महल था। उसे देखकर राजा सोचने लगा—अब तक मैं सोचा करता था कि स्वर्ग है या नहीं ? आज यह सन्देह तो मिट गया पर यह सन्देह होने लगा है कि स्वर्ग पहले बना है या यह महल ?

राजा बहुत विचार करने पर भी किसी निर्णय पर न आ सका। वीर होकर भी वह इस महल में आकर भौंचक रह गया और घबराने लगा, जैसे किसी बन्दर को जङ्गल से लाकर राजसी भवन में छोड़ दिया गया हो। इतने ही में भद्रा ने आकर कहा—महाराज, पधारिये।

राजा ने आश्चर्यपूर्वक कहा—महल तो यह आ गया है, अब कहाँ चलना है? तब भद्रा बोली—महल यह नहीं है महाराज, यह तो दास-दासियों के रहने का स्थान है। यह सुनकर राजा के आश्चर्य का कोई पार नहीं रहा। वह उठ खड़ा हुआ और भद्रा के पीछे-पीछे आगे बढ़ा। दूसरी भूमि पार करके जैसे ही राजा ने तीसरी भूमि में प्रवेश किया कि प्रकाश की चकाचौंध में उसकी आँखें तिलमिला उठीं। वहाँ प्रकाश इतना तीव्र था कि आँखें ठहरती ही नहीं थीं, जैसे अनेक सूर्य एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हों।

भद्रा ने राजा को भौंचक-सा खड़ा देखकर और आगे चलने के लिए निवेदन किया। राजा विचार करता है—आगे कहाँ चलूँ? यही मणिमंदिर है और यहीं आँखें नहीं ठहरतीं तो आगे क्या हाल होगा? फिर भी वह अभयकुमार के साथ आगे बढ़ा। इस तीसरी भूमि तक तो राजा के साथ और भी कुछ लोग आये थे, मगर इससे आगे बढ़ने की हिम्मत किसी को नहीं हुई।

चौथी भूमि पर पहुँच कर राजा और अभयकुमार

चित्रलिखित-से रह गये। राजा को भ्रम होने लगा—यह मनुष्यलोक ही है या स्वर्गलोक में आ पहुँचे है? यहाँ मनुष्य-लोक सम्बन्धी कोई वस्तु ही नहीं दिखाई देती।

भद्रा राजा के हाव-भाव देखकर उनके मन की बात समझ रही थी। उसने सोचा—महाराज यहाँ तक आकर ही इतने घबड़ा गये हैं तो सातवीं मंजिल तक इन्हें कैसे ले जा सकूँगी? ये मेरे मकान तक और उसमें भी चौथी मंजिल तक आ गये, यही बहुत है। अब शालिभद्र को तीन मंजिल नीचे उतार कर मिलाना ही उचित होगा। इस स्थान पर दोनों की मुलाकात होने में कोई हर्ज़ नहीं है। इसमें शालिभद्र अपना सम्मान ही समझेगा, अपमान नहीं।

भद्रा ने दोनों के लिए सिंहासन डलवा दिये। राजा और अभयकुमार को उन पर बैठने के लिए कहा। उसने यह भी कहा—अब आपकी आज्ञा हो तो शालिभद्र को आपके पधारने की सूचना दे दी जाय। राजा सोच ही रहे थे कि अब और आगे न चलना पड़े तो अच्छा है। भद्रा ने उसके मन की बात कह दी। राजा ने सोचा—गनीमत हुई कि इन्होंने स्वयं ही ऐसा कह दिया। उसने भद्रा की बात स्वीकार कर ली। दोनों सिंहासन पर बैठ गये और भद्रा ऊपर चली गई।

पिता और पुत्र दोनों चकित थे। उन्होंने जो कुछ देखा था, एकदम अपूर्व, असाधारण और अलौकिक था। जो दृश्य कभी कल्पना में भी नहीं आ सकते थे, वह आँखों के आगे

आ रहे थे। दोनों-पिता और पुत्र एक दूसरे के सामने देख रहे थे, पहले तो किसी के मुख से बोल ही न निकला। अन्त में राजा कहने लगा-यहाँ साक्षात् स्वर्ग ही उतर आया जान पड़ता है। मैंने भगवान् महावीर के मुख से स्वर्ग की जैसी रचना सुनी थी, हूबहू वही यहाँ दृष्टिगोचर हो रही है। आश्चर्य तो यह है कि इस महल को बनाया किसने होगा? यह कब और कैसे बन गया?

राजा स्वयं बहत्तर कलाओं का पण्डित है। पहले के राजा सभी कलाएँ सीखते थे। कोई काम ऐसा नहीं होता था जिसे करना वे न जानते हों। वे सभी कलाओं के मर्मज्ञ होते थे। इसलिए श्रेणिक सोचते हैं—यह महल बना कैसे होगा? कैसे-कैसे हीरे यहाँ जड़े हुए हैं! कैसी अद्भुत इनकी बनावट है और इनमें से कैसी सुगन्ध फूट रही है! मेरी समझ में ही नहीं आता कि यह सब रचना हुई किस प्रकार है!

राजा कहता है—हम राजा हैं। करोड़ों मनुष्यों के स्वामी कहलाते हैं। सभी पर हमारी हुकूमत चलती है और सभी हमारे सहायक हैं। करोड़ों की सहायता से भंडार भरे हैं और उनसे महल बने हैं। फिर भी वह महल इनके आगे झोंपड़ी की हैसियत भी नहीं रखते! यह तो साक्षात् ही स्वर्ग जान पड़ता है।

अभयकुमार अतिशय बुद्धिशाली था। वह जैन शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने कहा—पिताजी, इन महलों से हमें कई

प्रकार की शिक्षा मिलती है। यह महल और यह वैभव पुण्य की भौतिक प्रतिमा है। पुण्य दान में रहता है, आदान में नहीं। जो दूसरों का सत्व चूस-चूस कर आप मोटा होना चाहता है, वह मोटा भले ही बन जाय पर पुण्य के लिहाज़ से वह क्षीण होता जाता है, पुण्य के वैभव से वह दरिद्र होता रहता है। इसके विपरीत जो आधी में से भी आधी देता है, वह ऊपर से भले ही दरिद्र दिखाई देता हो पर भीतर ही भीतर उसका पुण्य का भण्डार बढ़ता जाता है। और फिर उसी पुण्य के भण्डार में से ऐसे महलों का निर्माण होता है और यह वैभव उसके चरणों में लोटने लगता है। असल पूंजी पुण्य है। जहाँ पुण्य है वहाँ सहायकों की आवश्यकता नहीं। पुण्य अकेला ही करोड़ों सहायकों से भी प्रबलतर सहायक है। वह पुण्य त्याग और सद्भाव में ही रहता है। भोग पुण्य के फल हैं किन्तु पुण्य को क्षीण बना देते हैं।

आप लोग सेठ कहलाते हैं तो क्या भोग भोगने के लिए ही? बढ़िया खाने और पहिनने के लिए ही? जरा विचार तो करो कि आपको सेठ कौन कहता है। जो आपसे अधिक धनवान् हैं, वे आपको सेठ कहते हैं या गरीब? अगर गरीब लोग आपको सेठ मानते हैं तो क्या वास्तव में ही आप गरीबों के सेठ बने हैं? सिर्फ सेठानी के ही सेठ तो नहीं बने हुए हैं? सच्चा सेठ वह है जो विचारता है कि मैं गरीबों के परिश्रम का खाता हूँ और जो गरीबों को शांति पहुँचाता है।

वह सेठ ग्रामस्थविर पद का अधिकारी होता है। जो शरीर से अच्छा काम करके अच्छा खाता-पीता है वह तो क्षम्य है, मगर जो ऊँचा काम किये बिना ही ऊँचा खाता—पीता है, वह अपने लिए नरक का निर्माण करता है।

अभयकुमार कहता है--पिताजी ! यह महल हमें परोपकार में लग जाने की प्रेरणा करता है। यद्यपि आप परोपकार में पहले ही से संलग्न हैं किन्तु यह और अधिक लगने को प्रेरित कर रहा है।

आपने भी सुन्दर और भव्य इमारतें देखी होंगी। लेकिन उनको बनवाने वाला यहाँ तक कि उनमें से अनेकों का वंशज भी आज मिलना कठिन है ! वे आज कहाँ हैं ? जिनके वैभव-विलास लोगों के हृदय में ईर्षा उत्पन्न करते थे, अब वे कहाँ चले गये ? कुछ पता है उनका ? जब आप किसी भवन की सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं तब उसके निर्माण कराने वाले की स्थिति पर भी तो विचार कर लिया करें। यह भी देख लिया करें कि ऐसे सम्पत्तिशालियों का भी आज ठिकाना नहीं है तो हमारी सम्पत्ति किस गिनती में है ? क्या वह इस योग्य है कि उस पर गर्व किया जाय ?

इधर अभयकुमार और राजा श्रेणिक में बातचीत हो रही थी, उधर भद्रा माता शालिभद्र के पास पहुँची। भद्रा को आते देख शालिभद्र आश्चर्यपूर्वक विचार करने लगा—आज कोई विशेष बात जान पड़ती है जो माता स्वयं आई हैं। वह

उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर विनयप्रदर्शित करने लगा। उसे आज माताजी के व्यवहार में कुछ चञ्चलता दिखाई दे रही थी।

शालिभद्र के पास पहुँचकर भद्रा ने कहा—बेटा! जल्दी चलो, देर का काम नहीं है। तुम्हारे घर महाराजा श्रेणिक पधारे हैं। रमणियाँ और सेज छोड़कर उनके पास चलना है।

माता की बात सुनकर शालिभद्र आश्चर्य मे पड़ गया। वह सोचने लगा—आज माता घबरा कर यह क्या कह रही हैं? आज तक ऐसी जल्दबाज़ी तो इन्होंने कभी नहीं की। माता आज रमणियों को और सेज को छोड़ने के लिए कहती हैं, तो क्या मैं भोगों में ही डूबा हूँ? कोई इन भोगों को छुड़ा भी सकता है? क्या यह भोग अनित्य हैं?

शालिभद्र ने कहा—माता, आप जो उचित समझें, करें। मै चलकर क्या करूँगा?

भद्रा—वह अपना स्वामी है—मगध का राजा है। वह इन्द्र की होड़ करने वाला नरेन्द्र है। उसी की छत्रछाया में हम सब रहते हैं। उसके कुशल-मङ्गल में अपना कुशल-मङ्गल है। वह तो कृपा करके तुम्हारे घर आया है और तुम्हें होश ही नहीं! तुम्हें कष्ट से बचाने के लिए मैंने कितना प्रयत्न किया, कितनी दौड़धूप की और तुम्हारा यह हाल है! तुम्हें सेज पर से उठने में ही आलस्य आ रहा है!

शालिभद्र की निद्रा मानों उड़ गई। वह सोचने लगा—

आज माताजी मुझे जगाने आई हैं। राजा की कुशल में हमारी कुशल है, तो क्या मेरा यह असीम वैभव व्यर्थ है ? यह माया इतनी कच्ची है ?

इसी बीच भद्रा ने फिर कहा—तुम लक्ष्मी के गर्व में भूल कर मेरी बात पर ध्यान नहीं देते। तुम्हें क्या पता है कि जिस राजा के यहाँ तुम्हारे जैसे सैकड़ों धनिक खड़े रहते हैं, फिर भी जिनका दर्शन नहीं पाते, वह राजा स्वयं तुम्हारे यहाँ आये हैं ! फिर भी तुम नहीं उठते। यह महल और वैभव तभी तक तुम्हारा है जब तक उनकी कृपा है। उनकी वक्र दृष्टि होते ही इन महलों से बाहर निकलना पड़ेगा और इनका स्वामी कोई दूसरा हो जाएगा।

शालिभद्र सोचने लगा—राजा श्रेणिक ऐसा है ! उसी की दया पर मेरा ऐश्वर्य टिका है ? यह माया ऐसी है कि राजा की अकृपा से बदल जाएगी ? सारा संसार इसी तरह अस्थिर है।

भद्रा ने अपना भाषण जारी रक्खा—बेटा, वे राजा हैं। प्रसन्न हैं तो खूब, अप्रसन्न हैं तो खूब। रूठ जाएँ तो न मालूम क्या कर गुज़रें ? तुम्हें अभी राजधर्म का ज्ञान नहीं है। इसलिए जल्दी करो। वह कहीं यह न सोचने लगें कि हम इतनी दूर से आये और शालिभद्र को कुछ परवाह ही नहीं है ! ऐसा हुआ तो गज़ब हो जायगा। यह आमोद-प्रमोद तो फिर भी हो जाएँगे, मगर राजा को फिर प्रसन्न करना कठिन है।

भद्रा की यह बातें सुनकर शालिभद्र ऐसा जाग उठा, जैसे सोता हुआ केसरी सिंह जाग उठा हो। वह सोचने लगा—क्या मुझ सिंह पर आज घोड़े की जीन कसी जाने वाली है ? लेकिन मैं यह सहन नहीं कर सकता। फिर उसकी विचारधारा का प्रवाह सहसा पलट गया। सोचने लगा—मैं अपने पिताजी की दी हुई सम्पत्ति भोगता हूँ, उस पर भी राजा मेरा नाथ है और मैं अनाथ हूँ ? वह चाहे तो क्षण भर में इसे छीन सकता है ! इससे तो यही प्रकट होता है कि संपत्ति ही अनाथ बनाने वाली है। मैंने सुकृत्य नहीं किये। पूर्वभव में सुपात्रदान और अभयदान नहीं दिये। प्राणीमात्र पर समभाव धारण नहीं किया। इसी का यह फल है कि आज राजा मेरा नाथ बनकर आया है। मैंने दूसरे को अनाथ किया और फिर अपने को नाथ माना। इसी व्यवहार का बदला राजा आज माँग रहा है। अगर मैं सच्चा नाथ बना होता तो आज अनाथ बनने का अवसर ही क्यों आता ? राजा मेरा नाथ बनकर क्यों मेरे सिर पर सवार होता ? मैं कच्चे घड़े जैसी सम्पत्ति का स्वामी बना हूँ, इसी कारण राजा मेरा नाथ बन रहा है। माता ने आज वह बात सुनाई है जो पहले कभी नहीं सुनी थी। लेकिन माता का इसमें दोष ही क्या है ? वास्तविकता तो वास्तविकता ही है। वह आज नहीं तो कल सामने आये बिना न रहती। अनित्य वस्तु पर आधिपत्य जमाकर नाथ बनने वाले को यह सत्य तो कभी न कभी

अनुभव करना ही पड़ता है। मैं इस भव्य महल में भूला था, अपने अक्षय भण्डार के गरूर में चूर था और अपनी बत्तीस रमणियों का नाथ मानकर फूला नहीं समाता था। यह अभिमान ही मुझे अनाथ बनाये था।

मित्रो! शालिभद्र की सम्पत्ति स्वतंत्र है, देवप्रदत्त है, फिर भी उस पर नाथ खड़े हो गये हैं। तो आपको भी अपनी अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए। अनित्य वस्तु पर अधिकार करके नाथ बनने वाले अनाथ ही रहते हैं।

जिस घर को आप अपना समझते हैं, उसमें क्या चूहे नहीं रहते? फिर वह घर आपका ही है, उनका नहीं है, ऐसा क्यों? क्या आप भी चूहे की तरह ही थोड़े दिनों में उसे छोड़कर नहीं चल देंगे? फिर किस विचार पर आप इतराते हैं? वास्तव में संसार में आपका क्या है? कौन-सी वस्तु आपका सदा साथ देने वाली है? किस वस्तु को पाकर आपके सकल संकट टल जाएँगे? किसके संयोग से आपकी कामना पूरी हो जाने वाली है? शाश्वत कल्याण का द्वार किससे खुल जाता है? इस बात पर जरा विचार कीजिए।

शालिभद्र सोचता है—इस घर को मैं अपना घर समझता था। इस सम्पत्ति को मैं अपनी सम्पत्ति मानता था। अब मालूम हुआ है कि यह सब तभी तक मेरा है जब तक राजा की मुझपर कृपा है। राजा की अकृपा होते ही मेरी समस्त सम्पदा पराधी हो जायगी। ऐसी स्थिति में मैं इस सम्पत्ति का नाथ नहीं

रहा। मैं तो अनाथ ही ठहरा।

मित्रों! आपकी भी यही स्थिति है या नहीं? कदाचित् सम्पत्ति न छूटे तो उसका अभिमान तो छोड़ दो। जिस सम्पत्ति पर आप अभिमान करते हैं, वह पल भर में ही क्या पराई नहीं हो सकती? राजा चाहे तो तत्काल उसे अपने अधिकार में ले सकता है। सैकड़ों और हजारों के नोट अगर सरकार रद्दी कर दे तो वे अच्छी रद्दी के भाव भी नहीं बिकेंगे। आपकी स्थिति कितनी कच्ची है, इस बात पर जरा विचार तो किया करो। शालिभद्र की कथा से इतना सीख लोगे तो बेड़ा पार हो जायगा।

शालिभद्र कहता है—जो सम्पत्ति पिता भेजते हैं, उसके विषय में माता कहती हैं कि राजा की कृपा से ही वह तुम्हारे पास बनी हुई है, तो हे आत्मन्! तू इस सम्पत्ति पर अभिमान मत कर। माता कहती है—अगर मैं राजा की आज्ञा शिरोधार्य न करूँगा तो राजा मेरी यह सम्पत्ति छीन लेगा। परन्तु इस सम्पत्ति की रक्षा की आशा से मैं राजा को नाथ नहीं मान सकता। सम्पत्ति रहे या आज ही चली जाय, मैं एक मात्र परम पुरुष के सिवाय और किसी को नाथ नहीं मानूँगा। राजा ने घोड़ों पर सवारी की होगी, लेकिन आज वह क्या सिंह पर सवार होना चाहता है?

मित्रो! शालिभद्र के पास देवसम्पत्ति है। आपके पास अगर देवसम्पत्ति होती और ऐसा अवसर आजाता तो आप

देव को ही स्मरण करते ! मगर शालिभद्र जानता है कि देव अगर नाथ बना सकता है तो आज राजा उसका नाथ बनने क्यों आता ? उसने सोचा—मैं देव की सहायता नहीं लूँगा; मैं उस त्रिभुवननाथ की सहायता लूँगा जो सहायता लेने वाले को भी त्रिभुवननाथ बना देता है। जब मैं उस परमपुरुष की शरण में चला जाऊँगा तो फिर मेरा कोई नाथ नहीं रह जाएगा· बल्कि मैं स्वयं उसी परमसत्ता में मिल जाऊँगा। जब मैं इस संसार के चक्र से ही परे हो जाऊँगा तो मुझ पर राजा की आन ही क्यों रहेगी ?

लोग समझते हैं कि शालिभद्र विषयभोग का कीड़ा था। भोग के अतिरिक्त उसने कुछ समझा ही नहीं था। अगर ऐसा होता और शालिभद्र आत्मचिन्तन न करता होता तो यकायक उसकी आत्मा में यह जागृति कैसे उत्पन्न हो जाती? वह अब तक समझ रहा था कि मुझे कोई दुःख नहीं है; मैं देवलोक से आई सम्पत्ति का भोग कर रहा हूँ; परन्तु आज उसे विदित हुआ कि मैंने सुकृत्य नहीं किये हैं। सुकृत्य किये होते तो ऐसी स्थिति में क्यों होता कि मुझे राजा की आन माननी पड़े ! माताजी ने आज मुझे चेतावनी दी है। उन्होंने समझा दिया है कि—अरे शालिभद्र ! तू कब तक सोता रहेगा ! जाग, उठ, देरी हो रही है।

मित्रो ! क्या आपको भी भद्रा की बात जागृति-जनक मालूम होती है ! राजा की तो एक आन माननी पड़ती है

मगर पत्नी की तो प्रतिदिन पचास आन माननी पड़ती हैं। फिर भी आप जागृत नहीं होते! जरा अपने अन्तरात्मा को जगाओ। शालिभद्र ने माता की बात को चाबुक समझा। जिस सम्पत्ति को वह अपनी समझ रहा था उसे आज परायी समझने लगा। उसने कहा—मैं इसका नाथ नहीं हूँ। मैं सम्पत्ति छिन जाने के भय से राजा को अपना नहीं मानूँगा। राजा रूठ जायगा तो सम्पत्ति छीन लेगा। वह भले छीन ले, इस पर मुझे मोह ही नहीं है। राजा की इच्छा हो तो मैं स्वयं सारी सम्पत्ति उसे दे सकता हूँ। सम्पत्ति देने में मुझे आनन्द ही होगा—लेशमात्र भी विषाद न होगा। हाँ, इसे रखकर अनाथ बनने से मुझे आनन्द नहीं है।

आप गुलाम के भी गुलाम बनना स्वीकार कर लेंगे पर अपने दाम नहीं छोड़ेंगे। जरा विचार कीजिए कि अनाथता खादी में अधिक है या मैनचेस्टर के कपड़ों में?

'मैनचेस्टर के कपड़ों में।'

विस्कुट और हलवाई की दुकान की मिठाई में अधिक अनाथता है अथवा घर की रोटी में?

'विस्कुट और हलवाई की चीज़ों में।'

आप जानते तो सभी कुछ हैं फिर भी अधिक अनाथ बनाने वाली चीज़ें नहीं छोड़ सकते। बल्कि हलवाई की दुकान की बनी चीज़ें मिल जाने पर बहिनें तो यही समझेंगी कि चलो ठीक हुआ, चूल्हे-चक्की खटखट मिटी और

आरंभ-समारंभ से बचाव हुआ । मै अगर आशा अधिक न करूँ तो क्या इतनी भी आशा नहीं कर सकता कि आप गुलामी के यह बन्धन तोड़ फेंकेंगे। शालिभद्र, राजा की आन न मानने के लिए सारी सम्पत्ति छोड़ देने को तैयार है, लेकिन यह समाज आज इतना अनाथ बन रहा है कि घोर पराधीनता में डालने वाली चीज़ें भी नहीं त्याग सकता।

मित्रो ! आत्मा पर विजय प्राप्त करो। जिन कामों से कम पाप लगेंगे वे कम अनाथता पैदा करने वाले होंगे और जिन कार्यों के करने से अधिक पाप का बंध होता है. उनसे उतनी ही अधिक अनाथता बढ़ेगी। अगर समस्त पापों का परित्याग कर सको तो अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऐसा संभव न हो तो बड़े पापों का तो त्याग करो।

शालिभद्र कहता है—यह संसार नाशवान् है। ऋद्धि, परिवार और मनुष्यशरीर भी नश्वर हैं। मै इन अनित्य वस्तुओं के लिए नित्य की स्वतन्त्रता का घात नहीं करूँगा। श्वास का विश्वास ही क्या? यह तो पवन है। जब तक आता है, आता है, सहसा बन्द हो जायगा तो फिर नहीं आयेगा! फिर संसार पर रीझने का कारण ही क्या है? विषयभोग विष के समान है. यह बात मै समझ गया हूँ। ज्ञानहीन जन भले इन्हे अमृत मानें. लेकिन ज्ञान प्राप्त होने पर इनमें अनुराग रखना बुद्धिमत्ता नहीं है। जो अपने पाँव दृढ़ कर लेता है उसे इन्द्र भी नहीं डिगा सकता! जब मैं

आत्मा से स्वतन्त्र बन जाऊँगा तो राजा या कोई और मेरे सामने क्या चीज़ ठहरेगा ?

माता ने मुझे राजा के भय से ऐसा भयभीत कर दिया है जैसे बालक को हौआ का डर दिखला कर रोने से रोक दिया जाता है। बालक हौआ से तभी तक डरता है जब तक वह उसे जान नही लेता। यह जान लेने पर कि हौआ नाम की कोई चीज़ ही नहीं है, भय नही रहता इसी प्रकार जो आत्मा की स्वतन्त्रता को नहीं पहिचानता होगा वह भले ही राजा से डरता रहे, जिसने उस स्वतन्त्रता को समझ लिया है, वह क्यों डरेगा ? राजा नाराज़ होकर करेगा क्या ? यही कि इस सम्पत्ति को ले जायगा। मगर मैं तो इसे तिनके की तरह त्यागने को तैयार ही हूँ। जैसे भग्गू पुरोहित ने सम्पत्ति त्याग दी थी और राजा ले गया था, उसी प्रकार मैंने भी इस सम्पत्ति को वमन कर दिया है। अब कोई भी ले जाए। मुझे सम्पत्ति के जाने की तनिक भी चिन्ता नहीं है।

इसके बाद शालिभद्र की विचारधारा नवीन दिशा की की ओर बह चली। उसने विचार किया—माता का मुझ पर असीम उपकार है। माता ने आज तक कभी किसी काम के लिए आदेश नहीं दिया। उनका सिर्फ यही पहला आदेश है। अगर मै इसका पालन नहीं करूँगा और टाल दूँगा तो उनके हृदय को गहरी चोट पहुँचेगी। अतएव माताजी की प्रसन्नता

के लिए एक बार राजा के समक्ष उपस्थित होने में किसी प्रकार की हानि नहीं है।

माता का विनय करना पुत्र का परम कर्त्तव्य है। जब तक पुत्र गृहस्थजीवन से पृथक् होकर साधु नहीं बना है तब तक माता उसके लिए देवता है। उसकी आज्ञा को भङ्ग करना पुत्र के लिए उचित नहीं। ऐसा करने से मेरा जीवन दूषित होगा। अविनय का पाठ सिखाने वाला बन जायगा। मेरी दृष्टि में आत्मधर्म ऊँचा है परन्तु माता का विनय करना भी आवश्यक है।

इस प्रकार विचार कर शालिभद्र उठा और अपनी बत्तीसों पत्नियों को साथ लेकर, इन्द्रानियों सहित इन्द्र की भाँति राजा के सामने जाने को तैयार हुआ।

प्रश्न हो सकता है कि उस समय क्या पर्दे की प्रथा नहीं थी? अगर थी तो शालिभद्र की स्त्रियाँ, उसके साथ राजा के पास कैसे जा रही हैं? आज के रिवाज को देखते हुए तो यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। पर आपको मैं पहले बता चुका हूँ कि भारतवर्ष में पहले पर्दे की प्रथा नहीं थी। मुगल-काल में इस रिवाज का जन्म हुआ है। जब उस समय बादशाहों के जुल्म के कारण इज्जत बचाना कठिन हो गया तो पर्दा करने का उपाय निकाला गया था। आज वही उपाय रिवाज बन गया है। रिवाज किस प्रकार पैदा हो जाते हैं, इस सम्बंध में एक उदाहरण लीजिए।

किसी सेठ के घर विवाह था। उन्हीं दिनों सेठ के घर में बिल्ली ब्याई थी। घर के लोग काम-काज के लिए इधर-उधर घूमते तो बिल्ली के बच्चे सामने आ जाते थे। बिल्ली रास्ता काट दे तो अपशकुन समझा जाता है। अतएव सेठ के घर वालों ने इस अपसकुन से बचने का उपाय सोचा। सेठ दयालु था। बिल्ली के बच्चों को कोई मार डालेगा। इस विचार से वह उन्हें घर से बाहर नहीं निकलवा सकता था। अतएव यह तय किया कि बच्चों के सामने खाने-पीने की चीज़ रखकर उन्हें एक टोकरे से ढँक दिया जाय। यही किया गया। जिस जगह विवाह होने वाला था, उसी के पास बच्चे ढाँके गये थे। यद्यपि यह सिर्फ सामयिक आवश्यकता के कारण ही किया गया था, लेकिन पीछे से वह रिवाज़ बन गया। सेठ के लड़कों ने इसे रिवाज़ बना लिया और ऐसा रिवाज़ कि बिल्ली के बच्चों को ढँके बिना उनके घर विवाह ही नहीं होने लगा। जब विवाह होने को होता तो बिल्ली के बच्चों की खोज की जाती। उन्हें घर ले आया जाता। दूध पिलाया जाता। टोकरे में ढँका जाता। तब कहीं विवाह हो सकता।

जिस प्रकार विवाह में बिल्ली के बच्चों का होना आवश्यक मान लिया गया था। उसी प्रकार पर्दे की प्रथा भी आवश्यक मान ली गई है। नतीजा यह हुआ है कि आजकल स्त्रियाँ आवश्यक बात कहने के समय तो टच्-टच् करती हैं, मानो

ढोर हाँक रही हों और गालियाँ गाने के समय सारी लाज-शर्म को तरफ में रख देती हैं। मगर शालिभद्र के जीवन-चरित से इनकी आँख खुल जानी चाहिए।

शालिभद्र अपनी पत्नियों के साथ राजा से मिलने चला। राजा की दृष्टि ऊपर की ओर लग रही थी। स्त्रियों के आभूषणों की झंकार उसके कानों में पड़ी। अभयकुमार और राजा श्रेणिक ने उस ओर नज़र फेरी और उसी समय शालिभद्र पत्नियों के साथ इस प्रकार आकर खड़ा हो गया, जैसे बादलों को फाड़ कर सूर्य निकल आया हो।

शालिभद्र को देखकर राजा चकित रह गया। अभयकुमार से कहने लगा—क्या यह शालिभद्र है ? इसे मनुष्य कहें या देव ? जान पड़ता है, कोई देव आकाश से उतरा है

शालिभद्र का रूपसौन्दर्य देखकर राजा श्रेणिक की आँखे की प्यास ही न बुझी और उसकी आंखों की पुतलियाँ स्थिर हो गई। इसी समय शालिभद्र ने राजा को प्रणाम किया। राजा प्रेम से विह्वल हो गया। उसने शालिभद्र को अपनी ओर खींचकर छाती से लगाया और फिर गोद में बिठा लिया। गोद में बिठाकर राजा शालिभद्र के ऊपर इस प्रकार हाथ फेरने लगा, जैसे माता अपने नन्हें-से बालक पर हाथ फेरती है।

इधर शालिभद्र पर हाथ फिरा कर राजा अपना हार्दिक प्रेम प्रकट कर रहे हैं उधर शालिभद्र सोचते हैं—राजा

मुझे खिलौना समझ रक्खा है ! मुझे देख-देखकर चकित हो रहे हैं, मानों मै गुड़िया हूँ ! यह मेरे नाथ बनना चाहते हैं। मगर मैं स्वयं अनाथ को नाथ नहीं बनाना चाहता। फिर हाथ फेर कर राजा मुझे घोड़ा क्यों बनाना चाहते हैं ?

लोग घोड़े पर तो हाथ फेरते हैं मगर कभी किसी को सिंह पर हाथ फेरते भी देखा है ?

'नहीं।'

सिंह कभी हाथ नहीं फेरने देता। शालिभद्र भी सिंह-प्रकृति का पुरुष है। वह सोचता है—मैं परमपुरुष के सिवाय और किसी को अपना नाथ नहीं बना सकता। शालिभद्र के हृदय में राजा के प्रति प्रेमभाव नहीं था। अतएव राजा का करस्पर्श उसे आनन्ददायक नहीं लगा। इसके अतिरिक्त शालिभद्र का शरीर मक्खन की भाँति अत्यन्त कोमल था और राजा की हथेली कठोर थी। मक्खन जैसे आग के हल्के स्पर्श से भी मानों पिघलने लगा। उसके समस्त वस्त्र पसीने से गीले हो गये।

भद्रा वहीं मौजूद थी। उसने कहा—महाराज, इस जन्म में शालिभद्र ने किसी की सेवा नहीं की है। ऐसी अवस्था में वह आपकी सेवा भी कैसे कर सकता है ? इसकी ओर से मैं आपको किस प्रकार संतुष्ट करूँ ?

अभयकुमार ने कहा—पिताजी, इस फूल को तो डाली पर ही रहने देना ठीक है। यहाँ यह कुम्हला जायगा।

अभयकुमार के कथन का आशय राजा समझ गया और उसने ठीक है, ठीक है, कहकर शालिभद्र को छोड़ दिया। शालिभद्र राजा की गोदी में से उठा और सीधा अपने महल की ओर चल दिया। उसने राजा की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। राजा उसकी ओर बराबर ताकता रहा कि वह भी एक बार इधर मुँह फेरेगा। मगर वह बिना मुँह मोड़े सीधा चला गया। राजा को कुछ निराशा हुई।

१७
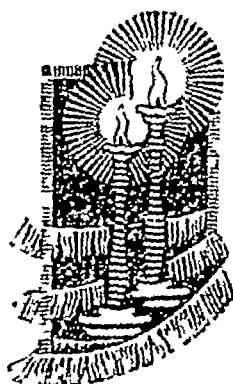
श्रेणिक का सत्कार ।

——:··()::——

शालिभद्र के चले जाने पर भद्रा ने राजा श्रेणिक और अभयकुमार की अभ्यर्थना करते हुए कहा—'महाराज ! आज यहीं भोजन करने का अनुग्रह कीजिए। यद्यपि यह घर आपका सत्कार करने योग्य नहीं है, आपके योग्य भोजन-सामग्री भी यहाँ नही है, फिर भी मेरी भक्ति रुकती नहीं है। मेरा दासभाव आज आपकी सेवकाई चाहता है। इस कारण मै आपकी सेवा करना चाहती हूँ।'

शालिभद्र इस सम्पत्ति-शक्ति का गुलाम नहीं था। मगर भद्रा में वह जागृति नहीं आई थी। जिसे संसार में रह कर दूसरे के आश्रय से अपना जीवन व्यतीत करना है, उसे भद्रा की भाँति राजा की या राज्याधिकारियों की खुशामद करनी ही पड़ती है। राजा को रुष्ट न करके उचित सत्कार करना गृहस्थ का व्यवहार भी है। भद्रा इस ऋद्धि को छोड़ना नहीं चाहती और ऋद्धि की रक्षा राजा के द्वारा ही

हो सकती है, इस कारण खुशामद करना स्वाभाविक है लेकिन शालिभद्र इसे त्यागने को तैयार बैठा है। वह क्यों राजा की खुशामद करे ?

आज बहुत-से लोग ऐसे मिलेंगे जो कहते हैं-हम शालिभद्र की तरह स्वतंत्र हैं। अगर वे शालिभद्र की तरह माया के पाश से मुक्त हो जाएँ, निस्पृह बन जाएँ और सम्पत्ति को अनाथ बनाने वाली समझकर त्याग करने को तैयार हो जाएँ तो उनका दावा कदाचित् ठीक माना जा सकता है। मगर जिनकी रग-रग में माया के प्रति ममता रम रही है, जो धन के लिए छल-कपट करने से भी नहीं चूकते, वे अगर माता-पिता आदि गुरुजनों के विनय का त्याग कर दें तो समझना चाहिए कि वे स्वतन्त्र नहीं किन्तु उच्छृंखल बने हैं। उनमें सच्चा स्वाधीनभाव नहीं आया है, उद्दंडता आई है। ऐसे लोगों का जीवन आगे नहीं बढ़ता, ऊँचा नहीं चढ़ता। उनका पतन होता है।

भद्रा की नम्र वाणी सुनकर राजा ने विचार किया—ऐसा यह घर है फिर भी मेरी भक्ति नहीं हो सकती ? वास्तव में लक्ष्मी का निवास वहीं होता है जहाँ नम्रता होती है।

पर कर मेरु समान, आप रहे रजकण जिसा।

जिनका वैभव मेरु-सा है, फिर भी जो रजकण बनकर रहते हैं, वे मनुष्यलोक में भी देव हैं। भद्रा के घर वैभव बिखरा पड़ा है, फिर भी वह कितनी नम्र है ! इस चरित्र में आत्मिक शिक्षा के साथ व्यावहारिक शिक्षा भी दी गई है और

अहंकार दूर करने का आदर्श उपस्थित किया गया है।

राजा ने सोचा—इन्द्र के वैभव की होड़ करने वाला वैभव इस घर में बिखरा पड़ा है, फिर भी भद्रा दासभाव दिखा रही है ! धन्य है इसकी सज्जनता !

अहंकार का त्याग करके नम्रता रखने वाले मनुष्य रूप में देव हैं चाहे वे कितने ही गरीब हों। जिसके सिर पर अहंकार का भूत सवार रहता है, वह धनवान् होकर भी तुच्छ है, नगण्य है। वह किसी योग्य नहीं।

भद्रा ने जिस नम्रता के साथ भोजन करने की प्रार्थना की थी, उसे देखते हुए राजा अस्वीकार कैसे कर सकता था ? उसने प्रार्थना स्वीकार कर ली।

राजा की स्वीकृति पाकर भद्रा ने सहस्रपाक आदि तेल मँगवाकर राजा तथा अभयकुमार की मालिश करवाई। राजा उस सुगंधित तेल के सौरभ से दङ्ग रह गया। सोचने लगा—वाह ! यह कितना उत्तम तेल है !

मालिश हो जाने के बाद राजा श्रेणिक को स्नानमण्डप में रत्नों की चौकी पर बिठलाया गया। राजा स्नानमण्डप की शोभा देखकर और भी मुग्ध हो गया।

स्नान कर लेने और शरीर पोंछ लेने के बाद राजा को देवप्रदत्त वस्त्र पहिनने के लिए दिये गये। राजा उन अपूर्व दिव्य वस्त्रों को देखकर कहने लगा—यह वस्त्र हमारे काम के नहीं हैं। आज इन वस्त्रों को पहिन लेंगे तो कल क्या

पहिनेंगे ? अतएव अपने ही वस्त्र पहिनना उचित है। इन वस्त्रों से तो हमारी लाज नहीं रहेगी। इस प्रकार कह कर राजा ने अपने ही वस्त्र धारण किये।

इसके बाद राजा की दृष्टि अचानक अपनी उंगलियों की ओर चली गई और तुरंत ही उसके चेहरे पर उदासी दौड़ गई। बात यों हुई। राजा की उंगलीमें एक अत्यन्त मूल्यवान् अगूठी थी। माणिक जड़ी वह अगूठी सारे राज्य का सार थी। माणिक ऊँची कीमत का होता ही है। शास्त्रों में भी कहा है कि माणिक सब मणियों का सार है। स्नान करते समय वह अगूठी किसी तरह निकल गई और पानी के साथ किसी ओर बह गई। राजा अपने हाथ में वह अगूठी न देखकर अत्यन्त उदास हुआ। वह सोचने लगा—मैंने आज राज्य का सार खो दिया।

राजा देश का स्वामी है, फिर भी अँगूठी गुम जाने से उसे चिन्ता हो गई। उसकी उँगली अँगूठी से खाली हो गई। राजा ने अपनी उँगली की सगाई अँगूठी से की थी और उसे ब्याह भी दिया था। लेकिन वह 'परणी' हुई अँगूठी भी उसे छोड़कर चली गई। वह तो गई सो गई ही, साथ ही राजा का अपमान भी कर गई। इसीलिए मीरां ने कहा है—

संसारी नो सुख काचो,
परणीने रंडावूं पाछो।
तेने घेर सिद जइए रे मोहन प्यारा॥

जो परणेगी उसे कभी न कभी रांड़ बनना ही पड़ेगा। मगर कुँवारी रहने वाली रांड़ क्यों बनेगी? यही बात मुदरी के लिए भी है। उंगली को पहले से ही अगर नखरे में न रखते तो आज वह खाली क्यों दीखती? और चिन्ता काहे को करनी पड़ती? हिम्मत वाला मर्द हानि होने पर प्रकट मे तो नहीं रोता, मगर चित्त तो उसका भी उदास हो जाता है। राजा का मुँह उतर गया।

लोग गहने पहिन कर टेढ़े-टेढ़ चलते हैं, मगर सचाई देखी जाय तो गहनों से कभी किसी को शांति नहीं मिलती।

राजा के मुँह की उदासी और खाली उंगली देखकर भद्रा ताड़ गई। उसने अपनी दासियों से कहा—स्नान करते समय महाराज की मुदरी गिर गई है। जाओ, ढूँढ़ तो लाओ।

दासियाँ गई। मगर अँगूठी न मालूम किस ओर वह गई थी। बहुत खोजने पर भी कहीं नहीं दिखाई दी। भद्रा ने दासियों को एक खास इशारा करते हुए फिर खोज करने की ताकीद की। अब की बार दासियाँ भद्रा का अभिप्राय समझ गई और एक थाल भरकर अगूठियाँ और दूसरे आभूषण ले आईं। भद्रा ने थाल श्रेणिक के सामने रख दिया और कहा— महाराज, यह सभी आपकी ही तो हैं। आपको जो पसंद हो, रख लीजिए।

श्रेणिक के विस्मय का पार न रहा। उसने विचार किया— मै एक अगूठी के लिए रोता था और यहाँ उनकी गिनती ही

नहीं है ! मेरी क़ीमती अगूठी इन अगूठियों के सामने कुछ भी नहीं है ! और यहाँ वैसी अगूठी की कोई परवाह ही नहीं है ! सचमुच आज मुझे सच्चे बाग लगे हैं। आज मैं संसार की सच्ची स्थिति समझ पाया हूँ। वह अँगूठी उँगली से क्या गिरी, मुझे वैराग्य दे गई !

भद्रा ने राजा की उँगली में अंगूठा पहिना दी और गले में हार डाल दिया। इसके अनन्तर कंचन के पाट बिछाकर सामने रत्नों की चौकियों पर रत्नजटित थाल रख दिये गये। राजा यह सब देखकर दङ्ग था। मन ही मन वह सोचता था—मेरी अंगूठी की कई गुनी क़ीमत के तो यहाँ थाल ही मौजूद हैं ! अब कौन सेवक है और कौन स्वामी है ? यह दिव्य संपत्ति इनके यहाँ है और राजा मैं कहलाता हूँ ! और यह दास कहलाते हैं !

सच पूछो तो भद्रा भी दास है और राजा भी दास है। नाथ तो शालिभद्र बना है। अलबत्ता भद्रा का विनय और राजा का तत्त्वचिन्तन गज़ब का है ! राजा की नीयत खराब होती तो झगड़ा पैदा कर सकता था कि तुम्हारे पास यह संपत्ति आई कहाँ से ? लेकिन शालिभद्र, भद्रा और राजा-तीनों धर्मप्रिय हैं। शालिभद्र की संपत्ति देखकर भी राजा के हृदय में डाह नहीं हुई। उसे पुण्य का यह फल देखकर आन्तरिक हर्ष हो रहा है।

मित्रो ! आप लोगों को दुःख क्यों है ? अगर खाने-पीने

का दुःख हो तब तो सिर्फ आध सेर आटे की ही बात है और उसकी पूर्ति होना कठिन नहीं है। मगर असली दुःख यह नहीं है। असली दुःख ईर्षा का है। उसके पास अमुक वस्तु है और मेरे पास नही है, इस भावना की पूर्ति के लिए जितना भी हो, थोड़ा है। वास्तव में पराई वस्तु देखकर रोना पुण्य-पाप को न जानने का ही फल है।

राजा श्रेणिक न तो व्रतधारी श्रावक था और न सामायिक ही जानता था। सिर्फ समकितधारी दर्शनश्रावक था। उसने पूनिया श्रावक की एक सामायिक खरीदनी चाही थी पर वह भी उसे नही मिल सकी। लेकिन आप सामायिक जानते हैं और करते हैं। अतएव दूसरे के धन को देखकर हृदय मे होली न जलाओ। पुण्य-पाप को समझो।

राजा अभयकुमार से कहता है—अभय, पुण्य के फल को देखो तो सही। इस घर की स्त्रियाँ एक दिन पहिने गहनो को दूसरे दिन ऐसे फेंक देती हैं जैसे कोई फूल को दूसरे दिन फैंक देता है और फिर उसकी ओर देखता भी नहीं। मै अपनी अगूठी के लिए ही सूखा जा रहा था, मगर इस घर मे कोई एक दिन का गहना दूसरे दिन पहिनता ही नहीं है।

राजा इस प्रकार कह रहा था, उसी समय भद्रा अपनी देखरेख में तैयार हुई रसोई लेकर आ पहुँची। रसोई देख कर राजा दंग रह गया। उसने सोचा—हम तो अभी तक इतना भी नहीं जानते थे कि भोजन क्या होता है! इसे कहते

है भोजन !

भद्रा ने राजा को मेवा और मिष्टान्न परोसा।

प्रश्न होता है—मेवा बड़ा या मिष्टान्न ?

'मेवा !'

फिर आप बादामों को बिगाड़ कर बरफी क्यों बनाते हैं ? वास्तव में आप यह जानते ही नहीं कि मेवा क्या है ? और मिष्टान्न क्या है ?

वस्तु का मिठास उसकी स्वाभाविकता में है। मेवे में जो मीठापन है, वह उसी में है। कई लोग दूध में शक्कर डालकर उसे मीठा करते हैं, यह अज्ञान है, कुरुचि है। वस्तु को किस प्रकार मीठा बनाना चाहिए, यह बात लोग समझते नहीं हैं, फिर भी उसे मीठा बनाने का प्रयत्न करते हैं। अच्छी गाय के दूध में जो स्वाभाविक मिठास होगी वह मिठास शक्कर डालने से आ सकती है ? नहीं। बहुतेरे लोग आम के रस में शक्कर डालकर उसे मीठा बनाते हैं मगर जो आम-रस खट्टा है उसे शक्कर डालकर मीठा बनाना तो उसमें विकृति पैदा करना है। लोग अपनी विकृत रुचि के कारण वस्तुओं को विकृत कर डालते हैं।

वस्तु की परीक्षा पहले आँखें करती हैं। एक कटोरा दूध का और एक रक्त का भरा हुआ हो तो दोनों में से कौन सा कटोरा आँखों को प्रिय लगेगा ? निस्संदेह दूध का कटोरा प्रिय लगेगा और रक्त देखकर घृणा होगी।

आँखों के बाद नाक की बारी आती है। नाक सूंघ कर बतलाती है कि वस्तु कैसी है? प्याज को सूंघकर ही नाक बतला देती है कि यह तामसिक वस्तु है। फिर भी लोग उसे खा जाते हैं। सूखी मछली बड़ी बदबू देती है फिर भी खाने वाले उसे भी नहीं छोड़ते। यह सब चीजें आपके लिए हानिकर हैं। मैं आपसे ऐसी चीज़ त्यागने के लिए नहीं कहता, जिससे आपका निर्वाह ही न हो। परन्तु जो वस्तु शरीर को और बुद्धि को हानि पहुँचाती है उसका त्याग अवश्य कर देना चाहिए।*

तो आँख और नाक के बाद जीभ परीक्षा करती है। मिर्च को अगर आप हाथ पर मलें तो हाथ जलने लगेगा। जीभ पर रखते हैं तो जीभ जलने लगती है। प्रतिदिन मिर्च का व्यवहार करने से कई लोगों को उसका तीखापन खटकता नहीं है, फिर भी उसमें तीखापन तो है ही। कुछ दिनों तक आप मिर्च खाना छोड़ दीजिए और फिर खाइए तो आपको पता लगेगा कि उसमें कैसा तिखापन है। फिर भी भोजन-शूर लोग यह सब नहीं देखते। उनका भोजन जीभ के लिए ही होता है। शरीर चाहे बिगड़े चाहे सुधरे, इसकी उन्हें परवाह नहीं है।

जीभ भोजन के विषय में पूरी जानकार है। सादे भोजन

---

* इस व्याख्यान से बहुत से श्रोताओं ने कांदा लहसुन खाने का त्याग किया था।

के सहारे सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है, बादाम की कतली पर दो महीने निकालना भी कठिन है। कहावत है—'जो रुचे सो पचे।' लेकिन अधिकांश लोग जबर्दस्ती पेट में भोजन ठूंसने के उद्देश्य से दस तरह के शाक और चटनी—आचार आदि का आसरा लेते हैं। इतना करके भी क्या आप अकेले जंगल को पार कर सकते हैं ? नहीं सिर्फ खाने में ही शूर हैं! शूर तो वे हैं जो कड़ाके की भूख लगने पर चने चबाकर मस्त रहते हैं और जिन्हें आपके समान चोचले नहीं आते।

श्रेणिक सोचते हैं—भोजन की क्रिया आज़ मेरी समझ में आई। भद्रा भोजन परोस कर ऐसी मीठी बोली कि उसका चित्त प्रसन्न हो गया। वह कहने लगा—वास्तव में इस घर के लोग बड़े समझदार हैं। सब देव के समान मालूम होते हैं। दरअसल देव के समान वही कहलाते हैं, जिनकी खाने-पीने आदि की क्रिया उच्च श्रेणी की है।

भोजन के पश्चात् तरह-तरहकी बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार में देकर भद्रा ने राजा श्रेणिक को विदा किया। भद्रा के घर आकर यद्यपि श्रेणिक ने बहुमूल्य वस्तुएँ पाईं, लेकिन उनसे भी अधिक मूल्यवान् जो वस्तु उसे मिली, वह थी हृदय की जागृति। पुण्य का प्रभाव प्रत्यक्ष देखकर मगध-सम्राट के हृदय में एक अपूर्व जागृति उत्पन्न हुई। नवीन भावना लेकर वह भद्रा के घर से रवाना हुआ।

१८

शालिभद्र की विरक्ति।

——::::():::——

राजा श्रेणिक के पास से हट कर शालिभद्र अपनी पत्नियों के साथ ऊपर चला गया। वह अपने स्थान पर इस प्रकार बैठा जैसे कोई योगी परमात्मा के साथ आत्मा की भेंट करा रहा हो। उसकी पत्नियाँ उसका चेहरा देख कर चिंतित हो गई। आपस में कहने लगीं—आज स्वामी में बड़ा परिवर्त्तन दिखाई दे रहा है। आज इनका रूप भी कुछ निराला है।

आज प्रायः सर्वत्र गुलामी की उपासना हो रही है। लोगों ने परतन्त्रता को ही जीवन समझ रक्खा है। ऐसे लोगों को शालिभद्र का चरित खेद पैदा कर सकता है। अशक्त आदमी सूर्य के ताप को नहीं सह सकता। वह सूर्य को दोष देता है और चाहता है कि सूरज अस्त हो जाय तो अच्छा। इसी प्रकार आज लोगों की आत्मा कायरता के बंधनों में ऐसी बुरी तरह अकड़ गई है कि वह इस चरित को सहन नहीं कर

देना उचित नहीं। मानव-जीवन ही आत्मा के श्रेयस् का सर्वोत्तम साधन है। अतएव प्रत्येक मनुष्य को यथाशक्ति आत्मोन्नति के कार्य में लग जाना चाहिए। और अगर उच्चतम जीवन व्यतीत करने की शक्ति न हो तो भी कम से कम उसे बिताने की भावना तो रखनी ही चाहिए। रायचन्द्रजी कहते हैं—

> अपूर्व अवसर एहवो क्यारे आवशे,
> क्यारे थईशुं बाह्यभ्यन्तर निर्ग्रन्थ जो।
> सर्व संबन्धनुं बंधन तीक्ष्ण छेदिने,
> विचरशुं क्यारे महद्‌पुरुषना पंथ जो ॥अपूर्व०॥

श्रावकों की यह भावना होती है कि वह अवसर कब आवेगा जब मै निर्ग्रन्थ बनूँगा। ठाणांग सूत्र में श्रावकों की भावनाएँ बतलाई गई है। उनमें एक भावना यह भी है कि कब मै बाहर से धन-धाम आदि को और भीतर से काम क्रोध आदि को त्याग करके महापुरुष के पथ पर विचरण करता हुआ आत्मरमण करूँगा।

शालिभद्र के अन्तःकरण में आज यही भावना जागृत हुई है। शालिभद्र के लिए देवलोक से सम्पत्ति आती थी, फिर भी वह विचार करता है कि सांसारिक भोगोपभोगों की सामग्री मुझे नाथ नहीं बनाती है; बल्कि अनाथ बनाती है। इस सम्पत्ति की अपेक्षा, स्वतन्त्रता देने वाली गरीबी ही मेरे लिए भली है।

मित्रो ! आपको त्याग की मेरी यह बातें पसंद न होंगी, फिर भी मै आपको सुनाये जा रहा हूँ। मै मानता हूँ कि इस पथ का अनुसरण किये विना आपका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। कोई पराधीन होकर सुखी नहीं बन सकता।

पराधीन सपने हु सुख नाहीं।

पराधीनता में सुख मानना आत्मा की गिरी हुई दशा की सूचना है। अगर आपने इस सत्य को समझ लिया हो तो आप यह बारीक और मुलायम वस्त्र, जो आत्मा को गिराने वाले हैं, कभी धारण न करें।

शालिभद्र ने स्वाधीनता का मार्ग समझा था। इसी कारण वह कहता है—मै अपने पर किसी दूसरे को नाथ नहीं रख सकता। मै दूसरे की आज्ञा अपने पर नहीं चलने दूँगा। अष्टापद का छोटा बालक भी मेघ के गरजने पर अभिमान करके कहता है कि मेरे सामने कौन गरजता है ? वह अपने पराक्रम से पर्वत में सिर लगाकर कहता है—मैं इतना पराक्रमी हूँ; फिर मेरे सामने गर्जना करने वाला यह कौन है ? जब एक जानवर भी दूसरे की गर्जना नहीं सह सकता तो मैं मनुष्य होकर अपने ऊपर नाथ का होना कैसे स्वीकार करूँ ? मै अनाथ रहूँ और राजा मेरा नाथ हो, यह न सह सकना मेरे आत्मा की स्वाभाविकता है।

शालिभद्र अपने ऊपर नाथ न होने देना स्वाभाविकता

बतलाता है, तो क्या वह अष्टापद के बालक की तरह पर्वत से सिर टकराएगा? अगर शालिभद्र, श्रेणिक राजा को राज्य से च्युत करके आप राजा बनना चाहता तब तो यह कहना ठीक भी होता। मगर उसने अपने लिए जो रास्ता चुना है, वह सिर टकराए बिना ही स्वयं नाथ बनने का रास्ता है।

शालिभद्र सोचता है—संयम ग्रहण करने से दो लाभ हैं। प्रथम तो परलोक के लिए अविचल राज्य स्थापित हो जाता है, दूसरे इस भव में कोई नाथ नही रहता, वरन् स्वतन्त्रता मिलती है। यह एक पंथ दो काज हैं।

आज लोग समझते हैं कि देव और गुरु तो परलोक के लिए हैं और भैरों-भवानी इस लोक के लिए हैं। लेकिन भगवान् में क्या भैरों जितनी भी करामात नहीं है? अगर है तो इस लोक के भैरोंजी को नाथ बनाने की क्यों आवश्यकता पड़ती है।

शालिभद्र जब राजा के पास से अपने स्थान पर पहुँचा तो उसके हृदय में इसी प्रकार का मंथन हो रहा था। जब हृदय-मंथन गहराई तक पहुँचता है तब चेहरे पर उसकी छाप पड़े बिना नहीं रहती और दूसरी चेष्टाएँ भी बदल जाती हैं। शालिभद्र अपनी जगह आकर विचार में मग्न हो गया। उसके चेहरे पर गम्भीरता छा गई। वह सोच रहा था—संयम के सिवाय दूसरा कोई नाथ बनाने वाला नहीं है। राजा के आने से आज मुझे संसार की ठीक-ठीक स्थिति का भान हो गया। अब तक इस सम्पत्ति के कारण मैं अपने को नाथ समझता था, आज मालूम हुआ कि यही सम्पत्ति तो अनाथ बनाने वाली है।

१६

पत्नियों का परिताप।

——:::()::——

ध्यानस्थ शालिभद्र को मूर्त्ति की तरह अचल बैठा देखकर बत्तीसों स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं—आज क्या कारण है कि पतिदेव न हँसते हैं, न बोलते है! नीचे से ऊपर आते ही मन में न जाने क्या परिवर्त्तन हो गया है!

दूसरी ने कहा—आज स्वामी की गम्भीर मुखमुद्रा के सामने देखने की भी हिम्मत नहीं होती। आज उनकी आँखों से हमारे प्रति स्नेह नहीं टपकता। आँखों में एक प्रकार का रूखापन आ गया है। कारण समझ में नहीं आता!

तीसरी बोली—आज तक हम में से कोई भी जब-जब स्वामी के सामने जाती तो स्वामी सत्कार करके बात करते थे, बिठलाते थे और प्रेम के साथ विदा करते थे। इस मर्यादा को उन्होंने कभी भङ्ग नहीं किया। लेकिन आज तो बोलते भी नहीं है!

चौथी पूछने लगी—क्या किसी को इसका भेद मिला

है ? मुझे तो कोई कारण समझ में नहीं आया। सिर्फ इतना ही देखती हूँ कि आज उनके सामने हाथ जोड़कर चार पहर तक खड़ी रहो तो भी वे न पूछेंगे कि तुम क्यों खड़ी हो ? क्या करोगी ? कहाँ जाओगी ? आज उन्होंने अपने नेत्रों को और वचनों को भी वश में कर लिया है। वे न देखते हैं, न बोलते हैं। आज उन्होंने मन पर भी पूरा काबू कर लिया जान पड़ता है।

नेत्र मन की बात बाहर प्रकट कर देते हैं। जब नेत्र स्थिर हों तो समझा जाता है कि मन भी स्थिर है और जब नेत्र चञ्चल होते हैं तब मन भी चञ्चल समझा जाता है।

पाँचवीं ने कहा—वास्तव में ही आज पति में अद्भुत परिवर्त्तन दिखाई दे रहा है। यह मत समझना कि रंग दिखाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। आज कोई न कोई गंभीर बात अवश्य है। देखो न, उनकी चित्तवृत्ति कितनी स्थिर मालूम होती है।

मन की एकाग्रता ही योग की सिद्धि है। चित्तवृत्ति को रोकना ही योग कहलाता है। मन की एकाग्रता प्राणायाम आदि की साधना से होती है। मगर जिन महापुरुषों ने पहले सुपात्रदान आदि किसी ऊँचे कर्त्तव्य का पालन किया है, वे किसी निमित्त को देखने मात्र से ही यह सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। उनका चित्त अनायास ही इहलोक की बातों से निकल कर परलोक की बातों में चला जाता है।

छठी स्त्री ने कहा—सखियो, इन सुन्दर, सुकुमार, रसिक और आँखों के इशारों में समझने वाले पतिदेव की हममें से किसी ने आसातना तो नहीं की है?

सातवीं—ऐसा होता तो हमें देखकर कम से कम मुँह तो बिगाड़ते! चेहरे पर क्रोध तो दिखाई देता! पर न मुँह बिगड़ा दीखता है, न क्रोध ही दिखाई देता है! हमारे प्रयत्न करने पर भी उनके चेहरे पर कोई बात नहीं मालूम होती।

इधर शालिभद्र बैठा हुआ चिन्तन कर रहा है। वह सोच रहा है—जिस वस्तु से आत्मा अनाथ बनती है, उसे अपनी न समझना ही श्रेयस्कर है।

कहावत है—जो अपना-विराना न समझे वह मनुष्य नहीं। ज्ञानी पुरुष इस कहावत को दूर तक ले जाते हैं। शालिभद्र ने भी अपने-विराने की समस्या को अपने विचार का केन्द्र बनाया।

उधर आठवीं स्त्री कहने लगी—पति का ऐसा रूठना तो कभी नहीं देखा। आज हमारा अभाग्य है कि उन्होंने अपना तिरस्कार कर दिया। न मालूम हमसे क्या चूक हो गई है, अपने में उन्हें कौन-सा दुर्गुण दिखाई दिया है? ऐसा क्या अपराध बन गया है कि प्राणनाथ आज अपनी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखते। अपराध होता भी तो एक का होता, दो का होता। सबका तो हो नहीं सकता। और बिना ही किसी अपराध के ऐसा रूखा मन धारण करना कहाँ तक

उचित है ?

नौवीं बोली—क्रोध का तो लेश भी उनके चेहरे पर नहीं जान पड़ता। स्वामी की मुखमुद्रा तो योगियों की तरह गम्भीर है।

दसवीं—भले ही क्रोध न हो वहिन, अगर वे सहज रीति से अपनी ओर न देखें, न बोलें, तो क्रोध न होने पर भी अपना जीवन तो निस्सार ही हो जाएगा !

पतिव्रता की जैसी भावना पति के प्रति होती है, वैसी ही भावना भक्तों की भगवान् के प्रति होती है। कहा भी है—

ज्यों पनिहारी कुंभ न विसरे, नटवो वृत्त निधान।
पलक न विसरे हो पदमणी पिउ भणी, चकवी विसरे न भान ॥

यह भावना योगियों की है। शालिभद्र की स्त्रियाँ केवल 'पिउ' तक ही पहुँची हैं, शालिभद्र ऊँचा पहुँच गया है। उसका संदेश है—जैसे तुम मुझे प्रेम करती हो वैसे ही मैं भी अपने पति से प्रेम करता हूँ।

पतिव्रता शृंगार-आभूषण आदि के प्रलोभनों से भी पर-पुरुष की ओर ध्यान नहीं देती। सीता को रावण ने कितने ही प्रलोभन दिये, मगर वह अपने निश्चय पर अचल रही। तिल भर भी अपने संकल्प से नहीं डिग सकी।

सीता, राम में ही तल्लीन थी। उसे पर पुरुष की खबर ही नहीं थी। इसी प्रकार शालिभद्र भी अपने संयम के विचार में ऐसा निमग्न है कि उसे यह मालूम ही नहीं कि मेरी चेष्टा

की मेरी पत्नियों पर क्या प्रतिक्रिया हो रही है !! स्त्रियों की दृष्टि शालिभद्र पर है और शालिभद्र की दृष्टि परमात्मा पर। उसकी स्त्रियाँ उसे हावभाव दिखलाकर प्रसन्न करना चाहती हैं। यह देखकर शालिभद्र सोचता कभी है—यद्यपि मै इनका नाथ नहीं हूँ, फिर भी यह मुझे नाथ मानकर कल्पित नाथ से इतना प्रेम करती हैं तो मुझे अकृत्रिम नाथ से कैसा प्रेम होना चाहिए ?

देखा जाय तो एक बात में शालिभद्र की उत्कृष्टता है और दूसरी में उसकी पत्नियों की। पति से प्रेम वही करेगी जो सती होगी। असती पति से प्रेम नहीं करती। जैसे सीता राम में मग्न थी। उसी प्रकार यह बत्तीस स्त्रियाँ शालिभद्र में मग्न हैं। इन सब का जीवन एक मात्र शालिभद्र ही है। इसी कारण शालिभद्र के न बोलने पर भी वे हावभाव दिखला रही हैं।

वह सब स्त्रियाँ आपस मे विचार करती है—मन के मुर्झा जाने से काम नहीं चलता। छिलका सहित चावल स्वाद नहीं दे सकते। इसी तरह मन में अगर गुढ़ी रह गई तो जीवन का स्वाद मारा जायगा। आज पतिदेव आसन जमाकर योगी बन रहे है। मगर बिना बतलाए कैसे पता चले कि इस समाधि का कारण क्या है ? कौन जाने, हमसे रूठ गये हैं या वैराग्य लिये बैठे हैं ? रूठने का कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ है और वैराग्य की भी संभावना नहीं है।

न यहाँ कोई आया है और न यह किसी के पास गये हैं कि किसी का उपदेश सुनकर वैराग्य हो गया हो ! अतः इस उदासीनता का कारण इन्हीं से पूछना चाहिए। अगर यों पूछने पर न बोले तो हाथ लगाकर उनका ध्यान भंग करना और पूछना चाहिए कि हमारी किस चूक के कारण आप इस तरह उदास बैठे हैं ? कहना चाहिए कि अगर हमारी कोई भूल हुई है और उसीसे आपको कष्ट पहुँचा है तो हम आग में जलकर, पानी में डूबकर या अपनी जीभ खींचकर मरने को तैयार हैं। अगर हमारी कोई भूल नहीं है तो आपको इस प्रकार निठुर नही बनना चाहिए। वास्तव में पति का रूठना हमारे लिए ऐसा है जैसे मछली के लिए पानी का सूख जाना या भ्रमर के लिए केतकी का सूख जाना।

पतिव्रता स्त्री की भावना पति के प्रति कैसी होनी चाहिए, यह यहाँ बतलाया गया है। पतिव्रता के इस उदाहरण को ज्ञानी जन ऊपर तक ले जाते हैं और यही बात परमात्मा की भक्ति के लिए मानते हैं। पत्नी का पति के प्रति जो गहरा अनुराग होता है, उसी अनुराग को अगर आगे बढ़ाकर परमात्मा के साथ जोड़ दिया जाय तो वह वीतरागता के रूप मे परिणत हो जाता है और आत्मा को तार देता है।

शालिभद्र की पत्नियाँ उससे कहने लगीं—प्राणनाथ ! प्रियतम ! हमारी ओर आँख उठाकर देखिए तो सही। आप गुणवान्, विवेकवान् हैं। अगर हमारी कोई चूक हुई हो और

वह क्षमा करने योग्य न हो तो आपको हमारी अवज्ञा करने का अधिकार है। मगर बहुत विचार करने पर भी हमें अपना अपराध दिखाई नही देता। फिर आप महापुरुष होकर इस तरह क्यों रूठे हैं ? आपने हमारा हाथ पकड़ा है। हम तो आपसे रूठती नही, उल्टे आप हमसे रूठ रहे हैं !

मित्रो ! हथलेवा क्या चीज़ है ? भले आदमी जीभ से कही बात भी नही बदलते तो जिन्होंने पाणिग्रहण किया है, वे किस प्रकार बदल सकते हैं ?

बांह बदल वाटी बदल, वचन बदल वे सूर।
यारी कर ख्वारी करें, तिनके मुँह में धूर ॥

शालिभद्र की पत्नियाँ कहती हैं—'अकारण ही हम अबलाओं की अवज्ञा करना क्या आपके लिए उचित है ? हम तो चिउँटी की तरह हैं, फिर हमारे ऊपर इतना कोप क्यों ? अगर कोई भूल हो गई है तो उसे कृपा करके प्रकट तो कर दीजिये ? यह मंदिर—महल, शय्या और आप हम सब वे ही हैं जो पहले थे। लेकिन आज आप और हम दो दीखते हैं। इसका कारण क्या है ? आज आपके नेत्रों में सदा जैसा प्रेम दिखाई नहीं देता। इसलिए हमें सर्वत्र सूनापन नज़र आता है।

शालिभद्र की पत्नियाँ कह रही है कि प्राणनाथ की कृपा-दृष्टि के बिना हमें सर्वत्र सूनापना दिखाई देता है। इसका कुछ मर्म समझे ? आपका भी कोई प्राणनाथ है या नही ?

धर्म जिनेश्वर ! मुझ हिवडे बसो,
प्यारा प्राण समान,
पलक न विसरे हो पद्मणि पिउ भणी,
चकवी विसरे न भान। धर्म जिनेश्वर०।

क्या आप परमात्मा को ऐसा भी नहीं समझते, जैसा शालिभद्र की पत्नियाँ शालिभद्र को समझ रही हैं? यदि इससे अधिक समझते हैं तो क्या परमात्मा की कृपा बिना आपको संसार सूना दीखता है ?

व्रत-नियमों का यथावत् पालन होता रहे, यह परमात्मा की कृपा है। जहाँ परमात्मा की यह कृपा न हो वहाँ मिलने वाले राज्य को भी सम्यग्दृष्टि पुरुष त्याग देने में संकोच नहीं करेगा ? ऐसा हो तभी समझना चाहिए कि आप में परमात्मा के प्रति पतिव्रता की सी भक्ति है, अन्यथा आप भी गहनों के लिए पति का आदर करने वाली स्त्रियों के समान समझे जाएँगे।

सुदर्शन सेठ को नियम भङ्ग करने से राज्य मिलता था और नियम न भङ्ग करने से शूली पर चढ़ना पड़ता था। एक ओर सांसारिक सुख और राज्य था तथा दूसरी ओर शूली थी। दोनों में से एक चीज सुदर्शन को पसंद करनी थी। सुदर्शन सेठ ने राज्य पसंद नहीं किया—शूली पसंद की, पर अपना व्रत नहीं तोड़ा। व्रत पर दृढ़ रहने से अन्त में शूली भी सिंहासन बन गई। सारांश यह है कि ईश्वर

की कृपा प्राप्त करने के लिए अगर विश्व की समस्त वस्तुओं को तुच्छ न समझा तो समझना चाहिए कि अभी हृदय में परमात्मा की भक्ति नहीं है।

शालिभद्र की पत्नियाँ बोलीं—अगर आप बिना अपराध ही हमारे प्रति निष्ठुर बने रहेंगे तो सच समझिये कि हम उसी प्रकार प्राण त्याग देंगी, जैसे पानी से निकली हुई मछली प्राण त्याग देती है।'

इतना कहने पर भी शालिभद्र की ओर से कोई उत्तर नही मिला। इतना अनुनय-विनय भी शालिभद्र का हृदय नही डिगा सका। इसका क्या कारण है? क्या शालिभद्र इतना हठी है कि वह निष्कारण ही अपनी पत्नियों को दुखी बना रहा है? नहीं, यह बात नहीं है। वह पूर्ण कृपाभाव प्रकट कर रहा है। वह सोचता है—यह स्त्रियाँ मुझसे इतना प्रेम रखती हैं कि प्राण त्यागने को तैयार हैं तो हे आत्मन्! तू अपने स्वामी से प्रेम करने में कहीं कच्चा तो नहीं है? ये जिस तरह मुझे चाहती है, उसी प्रकार तू परमात्मा को चाहता है या नहीं? इतना अनुनय-विनय करने पर भी मैं इनका दुःख दूर नहीं कर सकता। यही तो मेरी अनाथता है। मुझे यह अनाथता हटाकर नाथ बनता है। इस प्रकार स्त्रियों की बातें शालिभद्र के विचार रूपी अग्नि में घी की आहुति का काम कर रही हैं।

इधर स्त्रियाँ कहती हैं—'अगर आप हम से हँसी करते

हों तो बस कीजिए। यह समय हँसी का नहीं है। पतली छाछ में अधिक पानी नहीं समा सकता। अधिक पानी डालने से वह बेस्वाद हो जाती है। हम यह संताप सहती-सहती पतली छाछ के समान तो हो गईं। अब हममें और ज्यादा दुःख सहने की शक्ति नहीं रही है। बस, हमें जो कुछ कहना था, कह दिया है। अब कुछ कहना शेष नहीं रहा। अब कृपा करके पतली छाछ में पानी मत डालिए।'

यह सुनकर शालिभद्र विचारने लगा—'वास्तव में पतली छाछ में पानी का निभाव नहीं हो सकता। अधिक पानी डालना छाछ खराब करना है। राजा श्रेणिक के आने से और उनके संबंध की बातें सुनकर मैं पतली छाछ-सा तो हो ही गया था, अब इन स्त्रियों की बातों के पानी के लिए गुंजाइश नहीं रही।'

उधर स्त्रियाँ कहती हैं—'नाथ ! जिसने अपराध किया हो, उसे दंड दीजिए, परन्तु हम अबलाओं के दिल पर क्यों घाव करते हैं ? सुगुण ! आज तक हम आपके साथ आनन्दपूर्वक विलास करती रहीं, मगर यकायक क्या हो गया ? आपका वह बोलना, देखना और विलास करना कहाँ चला गया ? आपको ऐसा ही करना था तो पहले प्रीति जोड़ी ही क्यों थी ? आपने हमारे साथ विधिपूर्वक लग्न किया है। क्या लग्नविधि की मर्यादा का आज लोप कर देंगे ? हमारी कोई चूक होती तो भी आपको उदारता के वश होकर हमारा निर्वाह करना

उचित था। मगर बिना ही किसी अपराध के ऐसा व्यवहार करना कहाँ तक उचित है ?'

शालिभद्र सोचता है—'अब तक मैं जानता था कि संसार का सुख सच्चा और स्थायी है परन्तु यह तो झूठा और अस्थायी निकला। इसलिए सांसारिक प्रेम को ईश्वर तक ले जाकर समाप्त कर देने में ही जीवन की सार्थकता है। इसी में मेरा कल्याण है।

शालिभद्र की स्त्रियों का कथन चालू ही था—'अगर हमसे कोई भूल हुई होती तो भी उसे सहन कर लेना आपका धर्म था। लेकिन हम यह भी नहीं कहतीं। हमारा कथन तो यह है कि आप हमारी भूल बतला दें तो हम उसके लिए यथोचित प्रायश्चित्त कर लें। आपका ऐसा व्यापार भी नहीं है जिसमें घाटा लग गया हो और न घर में ही कोई काम बिगड़ा है। स्वर्ग की पेटियाँ भी प्रतिदिन आ रही हैं। घर का सारा काम-काज माताजी ही करती हैं। वह भी आपको नहीं करना पड़ता। आपके पास अधिक लोग आते-जाते भी नहीं हैं। हमीं आती हैं। ऐसी अवस्था में सिवाय इसके कि हमसे ही कोई अपराध हो गया हो, दूसरा चिन्ता का क्या कारण हो सकता है ?'

शालिभद्र सोचता है—'मेरा काम कैसा-क्या बिगड़ा है, इस बात की खबर ही इन्हें नहीं है। लेकिन मेरा जैसा काम बिगड़ा है वैसा शायद ही किसी का बिगड़ा होगा! मेरी सब

आवश्यकताएँ देवलोक से पूरी होती हैं, फिर भी मेरे सिर पर नाथ क्यों ? यह कहती हैं—हमारा क्या अपराध है ? मगर वास्तव में अपराध इनका भी है। मैं इनका नाथ न होता तो मेरा नाथ कोई क्यों बनता ? मै चाहता हूँ, इनका नाथ बनकर मै अनाथ न बनूँ और न इन्हें ही अनाथ रक्खूँ।'

.शालिभद्र की स्त्रियाँ अपना ही दोष देख रही हैं और उसके लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं। आजकल की स्त्रियाँ भी क्या ऐसा ही करती हैं ? वास्तव में पतिव्रता स्त्री और भक्तजन अपना ही दोष देखते हैं, दूसरों का नहीं। अन्यथा कहावत है—

अमल पानी में कंतजी यों कहे।
रांढली रावड़ क्यों करयो खारो ॥
रांडला कंतजी पीस लो पोय लो।
आप ही हाथ सुधार लो सारो ॥
धिक्क तू पापिनी शंखिनी जन्मनी।
धिक्क तेरो बाप पापी हत्यारो ॥
ऊ खेंचे चोटली वा खेंचे मूछड़ी।
ऐसा-ऐसा स्वांग को धिक्क जमारो ॥

ऐसी स्त्रियों के लिए पतिव्रता का उदाहरण कैसे दिया जाय ? शालिभद्र की स्त्रियाँ कहती हैं—'अपराध दूसरे का नहीं, हमारा ही होगा। हम यही चाहती हैं कि आप हमारा अपराध बता दें और हम उसके लिए प्रायश्चित्त कर लें।'

जो पुरुष शालिभद्र की स्त्रियों की तरह अपने ही अपराध देखता है और कहता है—'प्रभो ! अपराध मेरा ही है, इसी कारण मुझसे आपका ध्यान करते नहीं बनता', उसी का कल्याण होता है।

शालिभद्र की स्त्रियाँ ज्ञानशून्य नहीं थीं। अगर वे अशिक्षिता होतीं तो इतना अनुनय-विनय न करतीं। वे स्वयं रूठ कर बैठ जातीं। पर उन्हें शिकायत यह है कि शालिभद्र ने उनका कोई अपराध नहीं बतलाया और उनकी ओर से अचानक ही मन खींच लिया है। उन्हें यही व्यथा है। इसी व्यथा के कारण वे व्याकुल हैं। वे कहती हैं—अगर हम सबका या हममें से किसी का अपराध है तो हमारा मस्तक चाहे काट लें, हम यह सहन कर लेंगी, मगर अपराध बतलाये बिना रूठना हमें सह्य नहीं है। वास्तव में भक्त और पतिव्रता की बात सरीखी होती है। ऐसे-ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने परमात्मा के लिए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया है। वे कहते थे—परमात्मा मिले अर्थात् ध्यान में आवे, यदि ऐसा नहीं होता—परमात्मा का ध्यान नहीं बनता तो इस जीवन की आवश्यकता ही नहीं है। शालिभद्र की स्त्रियाँ भी ऐसा ही कह रही हैं।

पति के असंतुष्ट हो जाने पर पतिव्रता के लिए यही अंतिम मार्ग रह जाता है। मगर शालिभद्र विचार करता है—यह स्त्रियाँ अपनी चूक के लिए सिर कटाने को तैयार

हैं तो मैं अपने पति (परमात्मा) को प्रसन्न करने के लिए क्या करने को तैयार हूँ? मैंने परमात्मा का क्या अपराध किया है, जिससे श्रेणिक मेरा नाथ बना हुआ है? मैं भी अपने मस्तक पर किसी को नाथ बनकर नहीं बैठने दूंगा। मेरी पत्नियाँ मेरे जैसे झूठे और अनाथ नाथ के लिए भी प्राण देने को तैयार हैं तो मैं अपने सच्चे त्रिभुवननाथ के लिए जीवन देने मे क्यों संकोच करूँ?

इस प्रकार शालिभद्र अपने विचार में मग्न है और उसकी पत्नियाँ उससे प्रार्थना कर रही है। शालिभद्र और उसकी स्त्रियाँ अपने-अपने लक्ष्य पर पूर्ण है। बत्तीसों स्त्रियाँ तो अपने पतिप्रेम में निमग्न है और शालिभद्र परमात्मप्रेम में मग्न है।

शालिभद्र की स्त्रियां अपना अपराध जानने के लिए उत्सुक हैं। वास्तव में भक्ति वह नहीं है जो अपने गुण पूछती फिरे। सच्ची भक्ति वही है जो अपने दोष देखती है। भक्ति सीखना हो तो शालिभद्र की स्त्रियों से सीखो। आज के लोग अपने दोष नहीं पूछते, गुण पूछते हैं। बल्कि अपने गुणों का स्मरण कराकर दोषों को ढँकने का प्रयत्न करते हैं। मगर भक्ति ऐसी नहीं है। वह तो सदा ही कोमल और नम्र है।

एक विद्वान् ने भक्ति और ज्ञान की तुलना करके बतलाया है कि दोनों में बड़ा कौन है? उसका कथन है कि ज्ञान बड़ा है और कल्याणकारी है; लेकिन पुरुष है। भक्ति स्त्री है। ज्ञान और

भक्ति के बीच में माया नाम की एक स्त्री और है। पुरुष को तो स्त्री छल सकती है, लेकिन स्त्री को स्त्री नहीं छल सकती। अगर ज्ञान माया द्वारा न छला जाय तो ज्ञान, भक्ति से ऊँचा है। अगर छला गया तो वह गिर जाता है। मगर भक्ति तो पहले से ही नम्र है और स्त्री है। माया, भक्ति को नहीं छल सकती। इसलिए ज्ञान और भक्ति में भक्ति ही बड़ी है।

भक्त अपने गुण नहीं देखता, दुर्गुण देखता है। आप अगर ज्ञानी न बन सकें और भक्त ही बन जाएँ—हृदय से भक्ति को अपना लें तो भी आपका कल्याण हो जायगा। तिलक-टीका लगाने वाले या मुँहपत्ती बाँधने से ही कोई भक्त नहीं हो जाता। भक्त बनने के लिए यह देखना पड़ता है कि मुझ में कौन-कौन से दुर्गुण भरे हुए हैं। मैं कहाँ-कहाँ त्रुटि कर रहा हूँ? इस प्रकार अपने दुर्गुण और त्रुटि को दूर करने की चेष्टा करने वाला ही सच्चा भक्त कहलाता है।

शालिभद्र और उसकी पत्नियों का अपने-अपने दोष देखने का प्रयत्न हो रहा है। उसकी पत्नियाँ कहती हैं—आप हमारा अपराध हमें बतलाइए और उसके प्रतीकार के लिए उचित प्रायश्चित्त दीजिए। शालिभद्र सोचता है—इनका कथन भी मेरे लिए उपदेश बन रहा है। यह कहती है—हमारा क्या अपराध है? और मैं भी परमात्मा से पूछता हूँ—नाथ! मेरा क्या दोष है, जिससे मुझे अनाथ बनना पड़ा? और राजा श्रेणिक मेरा नाथ बनने आया? इन स्त्रियों को

मेरी उदासी का कारण मालूम ही नहीं है। मैं इनके अवगुणों के कारण नहीं वरन् अपने ही अवगुणों के कारण उदास हूँ। मैं सोचता हूँ—प्रभु मेरे प्रति उदास क्यों है? मेरी आत्मा, परमात्मा के अनुकूल नहीं है, यही मेरे दुख का कारण है। मगर अज्ञान के कारण यह स्त्रियाँ अपने को मेरे दुख का कारण समझ रही हैं।

शालिभद्र की स्त्रियाँ अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाएँ शालिभद्र के समक्ष रख चुकीं। जितना संभव था, अनुनय-विनय कर चुकीं। अपनी दीनता प्रगट करने में भी उन्होंने कसर नहीं रक्खी। मगर अन्त तक शालिभद्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे भैंस के सींग पर मच्छर के डंक का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और काले कंबल पर दूसरे रंग का प्रभाव नहीं पड़ता; उसी प्रकार शालिभद्र के अन्तःकरण पर उसकी स्त्रियों के निहोरों का प्रभाव नहीं पड़ा।

स्त्रियाँ अत्यन्त निराश हुई। उनकी समझ में ही न आया कि वास्तव मे इनकी उदासीनता का कारण क्या है? मगर निराशा अकेली नहीं आई। निराशा के साथ उसकी सहेलियाँ चिन्ता और व्यग्रता भी आ धमकीं। उन्हे किसी गंभीर दुर्घटना की आशंका होने लगी। अन्त में उन्होने कहा—स्वामी, आज किस कारण आपका फूल-सा कोमल हृदय वज्र के समान कठोर हो गया है? आपकी प्रसन्नता प्राप्त करने के हेतु हमने अपने पेट की सब बातें कह दी हैं, फिर भी आपके मुख

से एक बोल नहीं निकलता। न तो आप हमारा दोष बतलाते हैं, न हमें निर्दोष ही कहते हैं! फिर भी यह दंड क्यों दे रहे हैं? यह न्याय नहीं है, अन्याय है। अगर आपके न्यायालय मे न्याय अन्याय का विचार नही है, आरोपी को अपराध बताये बिना ही दंड दिया जाता है तो हमें अपील करनी होगी। अब सासूजी के पास जाने के सिवाय कोई चारा नहीं रहा। आपका विचार न मालूम किन उलझनों मे उलझा है और नहीं कहा जा सकता कि इससे क्या अनर्थ हो सकता है! अगर आप अपने मन की बात कह दें तो अच्छा है, अन्यथा हमें सासूजी के पास जाना पड़ेगा।'

शालिभद्र की स्त्रियों ने यह कह कर प्रकट कर दिया कि हम सासूजी के पास जा रही है। फिर यह न कहिएगा कि, माता से यह हाल कहने की क्या आवश्यकता थी? जब आप नहीं सुनते तो माताजी को पंच बनाकर ही फैसला कराना होगा। यह नहीं हो सकता कि निर्दोष होने पर भी आप हमें त्याग दे।

प्राचीन काल में पति-पत्नी का प्रेम बहुत प्रगाढ़ होता था। कदाचित् कभी कलह हो जाता तो सासू तक को भी पता नहीं चल पाता था। स्त्रियों में खूब गंभीरता होती थी। लेकिन आज-कल वह बात नहीं रही। आज-कल दाम्पत्य प्रेम में छिछलापन आ गया है। घर में लड़ाई हुई तो बाहर नमक-मिर्च मिलाकर उसका समाचार पहुँचाये बिना औरतों

को चैन नहीं पड़ता। इसी कारण कहावत प्रचलित है—कुत्ते के पेट में खीर ठहरे तो स्त्रियों के पेट मे बात ठहरे! यद्यपि सभी स्त्रियाँ कभी समान नहीं होतीं, फिर भी आज अधिकांश मे यह बात सुनी जाती है।

एक पिता ने अपनी पुत्री को ससुराल जाते समय शिक्षा दी थी—बेटी, घर की आग बाहर मत निकालना। यह सीख बड़ी सुन्दर है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कोई आग माँगने आवे तो देने से मना कर देना। अर्थ यह है कि घर में कभी कलह-क्लेश हो भी जाय तो उसे दूसरों के सामने प्रकट मत करना। जहाँ की बात तहाँ दवा देने से वह बढ़ती नहीं है।

प्रेममय जीवन और कलहमय जीवन में कितना अन्तर है, इस बात पर गहराई से विचार करो। वाल्मीकि-रामायण मे लिखा है कि राम को सीता के खिलाये वन-फलों में जो आनन्द मिलता था, वह आनन्द उन्हें जनक के घर नाना प्रकार के पकवान खाने मे भी नहीं मिला था। इसका कारण सीता का प्रेम था। राम को भीलनी ने जंगली और वे भी जूठे बेर खिलाये थे। लेकिन प्रेम के आधिक्य के कारण राम कहने लगे—लक्ष्मण, ये बेर हैं या अमृत!

मतलब यह है कि अधिकांश लोग आज स्नेह की मधुरता का स्वाद नहीं जानते। बहिनें संवर और सामायिक तो करती हैं, लेकिन मीठे बोल मुख से निकालना कम जानती

होंगी। संवर और सामायिक करना भी अच्छा है, परन्तु यदि मीठी बोली हो तो उनमें बहुत गुण आ जाए।

शालिभद्र की स्त्रियों ने सासू के पास जाने की सूचना शालिभद्र को इसी कारण दी है कि पति-पत्नी की लड़ाई सासू को मालूम हो, यह बात उन्हें लज्जास्पद मालूम होती थी। वास्तव में पति द्वारा पत्नी की बात और पत्नी द्वारा पति की बात का प्रकट होना सभ्यता की दृष्टि से भी अनुचित समझा जाता है। जिन लोगों को यह बीमारी हो, उन्हें शालिभद्र की स्त्रियों से दवा लेनी चाहिए।

घर का कलह बाहर जाना ठीक नहीं है, लेकिन आपस में न निबटने पर बाहर न जाना भी ठीक नहीं है। जब आपस मे समझौता न हो सकता हो तब किसी हितैषी मध्यस्थ के द्वारा बात को निबटा लेना ही उचित होता है। ठाणांगसूत्र में कहा है—सहधर्मी में कलह होने पर, जो किसी का पक्षपात न करके, तटस्थभाव से कलह को शान्त करने की चेष्टा करता है, उसे महानिर्जरा होती है।

शालिभद्र की स्त्रियों ने जब समझ लिया कि यह मामला अपने से तय नहीं हो सकता तब उन्होंने सासू को मध्यस्थ बनाने का विचार किया।

मित्रो! आप लोग भी परमात्मा को मना लो। आप स्वयं मना लो तो सर्वोत्तम है। अगर आप से न मने तो साधु को बीच में रखकर उन्हें मना लो।

आखिर शालिभद्र की स्त्रियाँ उदासचित्त और आँखों से आँसू बहाती हुई भद्रा माता के महल की ओर चलीं।

भद्रा के समक्ष पहुँचकर सबने उन्हें यथायोग्य प्रणाम किया और बिना कुछ बोले चुपचाप खड़ी हो गईं।

भद्रा ने बहुओं की हालत देखी तो उसके आश्चर्य का पार न रहा। सोचा-आज तक मैंने कभी इनकी आँखों में आँसू नहीं देखे। आज आँसू क्यों? और इनकी उदासी का क्या कारण है? क्या मेरा दुर्भाग्य उदय आया है कि मेरी बहुओं के नेत्र आँसुओं से भरे हैं?

आखिर भद्रा ने पूछा—'बेटियो, आज क्या कारण है कि तुम इस स्थिति में मेरे पास आई हो? तुम्हारे ससुर भेजते है और तुम खाती—पीती हो। दास—दासियाँ सब तुम्हारी आज्ञा में हैं। फिर दुःख का क्या कारण है? शालिभद्र की ओर से कोई बात हुई जान पड़ती है। जो हो, साफ़-साफ़ बतला दो।

ज्यों-ज्यों भद्रा बहुओं को आश्वासन देती थी, त्यों-त्यों उनका दुःख अधिकाधिक उमड़ता जाता था। उन्हें संकोच भी होता था कि आज पति की फरियाद लेकर उन्हें सास के पास आना पड़ा है। इस कारण पहले तो वे चुपचाप खड़ी रहीं; मगर कई बार पूछने और समझाने पर उन्होंने धैर्य धारण करके कहा—'माताजी, आज वह (शालिभद्र) न ज़ाने क्यों उदास है! उदासी का कारण न

वह बतलाते हैं और न हमारी कल्पना में ही आ रहा है।
राजा श्रेणिक के आने पर जब आप उनके पास पहुँचीं, तभी
वह उदास हो रहे थे। लेकिन लौटने के बाद तो पूछिए ही
नहीं। अब वह मन ही नहीं रहा है जो पहले था। न
बोलते हैं और न आँख उठाकर सामने देखते ही हैं। हम
सब कह-कह कर थक गईं। जब कुछ भी फल न निकला
तो आपके पास आना पड़ा है।'

बहुओं की बात से भद्रा को विस्मय होना स्वाभाविक था।
एकदम अपूर्व घटना थी। फिर भी भद्रा ने सान्त्वना देकर
कहा—अच्छा, चलो। मै साथ चलती हूँ। देखूँ, क्या बात है।

२०
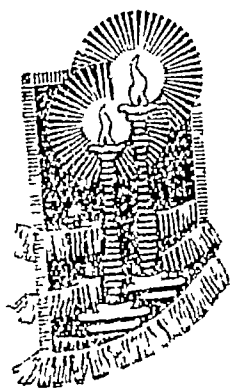
माता का संबोधन ।

——::::():::——

भद्रा चिन्ता करती हुई वहाँ पहुँची जहाँ शालिभद्र ध्यान में मग्न बैठा था। शालिभद्र की अपूर्व मुद्रा देखकर भद्रा ने साश्चर्य विचार किया—आज यह किस ध्यान में डूबा है? जान पड़ता है, आज सुआ पींजरे में नहीं है। मगर कारण क्या हो सकता है? खान-पान और परिधान में तो कोई त्रुटि होने की संभावना है नहीं। कोई गड़बड़ हुई होगी तो बहुओं की तरफ से ही हुई होगी।

इस प्रकार विचार कर भद्रा ने कहा—बेटा शालिभद्र! क्या आज मेरा सत्कार करना भी भूल गये? ऐसे कैसे बैठे हो? यह बत्तीसों हाथ जोड़ कर खड़ी हैं। इनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते? यह नम्र हैं, विनीत हैं और क्षमाशील हैं। कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करतीं। मैंने कई बार इनकी परीक्षा की है और उसके बाद तुम्हें इनके भरोसे छोड़ा है। यह तुम्हारे मन के अनुसार चलती हैं।

रूपवान् हैं, कुलवान् हैं, सहज सलोनी हैं। तुम्हारे ऊपर इनका प्रेम दिखावटी-बनावटी नहीं है। ऐसी हालत में आज यह दुःखी क्यों हैं? आँसू क्यों बहा रही हैं? यह घर की लक्ष्मी हैं। लक्ष्मी को अप्रसन्न करना विचारशील पुरुष को योग्य नहीं है।

माता भद्रा की बात सुनकर शालिभद्र को कुछ उत्तर तो देना ही चाहिए था; फिर भी वह मौन है। उसके हृदय में क्या भावना उत्पन्न हुई होगी, यह बात तो कोई योगी ही जान सकता है, फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहना योग्य है।

शालिभद्र जानता है कि माता का अविनय करना ठीक नहीं है। माता के उपकारों से वह दबा है। फिर भी वह बोला नहीं। इसका कारण यही जान पड़ता है कि विनय की भी सीमा होती है। शिष्य, गुरु के आने पर अगर बैठा रहे—खड़ा न हो तो अविनीत समझा जायगा। हाँ, अगर वह कायोत्सर्ग करके ध्यान में लीन हो तो बैठा रहने पर भी अविनीत नहीं कहलाएगा। शालिभद्र अपनी माता का जी नहीं दुखाना चाहता। इसीलिए तो इच्छा न होने पर भी वह राजा श्रेणिक के पास गया था। मगर इस समय वह लोकोत्तर विचार में डूबा है।

शालिभद्र सोचने लगा—माता! यह स्त्रियां ठीक वैसी ही हैं, जैसी तुम समझती और कहती हो। पर मैं नहीं

जानना, इनके दुःख का क्या कारण है ? न मैंने इनसे कुछ कहा है, न इनका कुछ छीना है। अगर मेरी उदासी के कारण ही यह उदास हैं तो इसका अर्थ हुआ कि अपने सुख में बाधा पड़ने से यह उदास हैं। यह कहती हैं—निष्कारण हमारा त्याग करना उचित नहीं है। सो अगर मै इन्हें त्याग कर दूसरी स्त्री से विवाह करता तो यह कहना ठीक होता। मै तो सच्चे नाथ की खोज करना चाहता हूँ· फिर भी मैं उलहने का पात्र कैसे ? जब यह मुझे नाथ मानती हैं तो फिर भय क्यों मानती हैं ? नाथ मान लेने पर भी भय बना हुआ है, तो समझ लेना चाहिए कि मै इनका सच्चा नाथ नहीं हूँ। इसी घटना से संसार की असली स्थिति का पता चल जाता है।

भद्रा कहती है—शालिभद्र ! यह स्त्रियाँ तुम्हारे पसीने के बदले अपना खून बहाने को तैयार हैं। सदा तुम्हारे साथ रहती हैं। तुम्हारे कहने पर चलती हैं। फिर इनकी इतनी उपेक्षा करने का क्या कारण है ?

शालिभद्र सोचता है—अगर यह मेरे कहने पर चलती हैं तो मै कहता हूँ कि ये कभी वृद्धा न हों, कभी मरे नहीं, इनकी इन्द्रियाँ कभी शिथिल न हों, इन्हें कभी रोग-शोक न हो। क्या यह ऐसा कर सकेंगी ? मै चाहता हूँ, यह उदास न हों फिर भी यह उदास क्यों हुई है ? उदास होने के लिए क्या इन्होंने मुझसे आज्ञा ली है ? माताजी, व्यावहारिक

दृष्टि से तो इनमें वह सब गुण विद्यमान हैं, जो तुमने बतलाये हैं। संसार-व्यवहार में मैं इन्द्रानी को भी इनसे बढ़कर नहीं मानता। यह मेरा जितना विनय और सत्कार करती हैं, उतना शायद इन्द्रानी भी इन्द्र का न करती हो! वास्तव में स्त्री कहलाने की अधिकारिणी यही हैं। फिर भी यह आज उदास हैं, क्योंकि मै अपनी मूल और असली स्थिति पर आ गया हूँ। अब न मै इनका स्वामी हूँ और न यह मेरी पत्नी हैं। मै तो इनके आंसू भी नहीं पौंछ सकता। जो स्वयं अनाथ है वह किसी के आंसू कैसे पौंछ सकता है।

भद्रा कहती है—यह बेचारी तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा मे खड़ी हैं और तुम आँख उठाकर भी इनकी ओर नहीं देखते। तुम ऐसे बैठे हो जैसे कोई भक्त भगवान् का जप कर रहा हो और उसे किसी दूसरे विषय में जबान हिलाने का अधिकार न हो।

भक्त अपनी जीभ परमात्मा को समर्पित कर देते हैं। सिर जाने पर भी वे किसी और का गुण नहीं गाते।

कहते है—श्रीपति एक कवि था। वह परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे का गुणगान नहीं करता था। लोगों ने बादशाह अकबर से उसके विषय में कहा। बादशाह ने उसे अपने दरबार में बुलाया और एक समस्या पूर्ण करने को दी। समस्या थी—

'करो मिल आस अकब्बर की।'

इस समस्या की पूर्त्ति कवि श्रीपति ने इस प्रकार की—

प्रभु को यश छांडि औरनि को भजे,
जिम्या जो फटो उस लब्बर की।
अब की दुनिया गुनिया को रटे,
सिर बांधत पोट अटब्बर की॥
श्रीपति एक गोपाल रटे नहिं
मानत शक कौउ जब्बर की।
जिनको हरि की परतीति नहीं,
तो करो मिल आस अकब्बर की॥

श्रीपति के इस सवैया से अकबर उसकी भावनाओं को समझ गया और पारितोषिक देकर प्रसन्नता के साथ उसे विदा किया।

भद्रा कहती है—जैसे भक्त परमात्मा के सिवाय और किसी के गुण नहीं गाता, इसी तरह यह बत्तीसों तुम्हारे सिवाय किसी के गुण नहीं गातीं। यह तुम्हारी मधुर वाणी सुनने के लिए लालायित हैं। फिर तुम संकोच करके क्यों बैठे हो? मैंने तुम्हें पहले कभी उलाहना नहीं दिया था। राजा श्रेणिक के आने पर एक बार उलहना देना पड़ा था और अब दूसरी बार देना पड़ रहा है। मै समझती थी—तू बड़ा ही बुद्धिमान् है। आज मालूम होता है—तू विचार-शून्य है!

शालिभद्र सोचता है—वास्तव में मैं विचारवान् नहीं हूँ।

ऐसा होता तो श्रेणिक मेरा नाथ बन कर क्यों आता ? और यह बत्तीसों मेरे ही गुण गाती हैं सो यही तो इनका अज्ञान है ! इसी अज्ञान के कारण आज यह दुःखी हो रही हैं। इसमें मेरा क्या दोष है ! मैं स्वयं अनाथ हूँ तो दूसरों का नाथ कहलाने का दंभ क्यों करूँ ? पहले मैं भी अज्ञान में डूबा था। तब अपने को नाथ समझता था। श्रेणिक के आने पर मेरा भ्रम भंग हुआ। वह नाथ बनकर आया तो मैं समझ गया कि मैं अनाथ हूँ। इसलिए अब मैं उसी की शरण लूँगा जो वास्तव में नाथ है और जिसकी शरण ग्रहण करने पर मैं स्वयं नाथ बन सकता हूँ। मैं उसी नाथ की खोज करना चाहता हूँ। क्या यही मेरा अपराध है ? यही मेरी विचार-हीनता है ? ऐसा हो तो मेरी विचारहीनता मुझे मुबारिक है।

यहाँ एक बात ध्यान रखने योग्य है। भद्रा ने शालिभद्र को समझाने के उद्देश्य से जो कुछ भी कहा है, वह अपने को आगे करके नहीं, अपनी बहुओं को आगे करके कहा है। पुत्र के प्रति माता के उपकार असीम हैं, फिर भी भद्रा शालिभद्र के समक्ष अपने उपकारों का बखान नहीं करती। वह चाहती तो कह सकती थी—'मैं तेरी माता हूँ। मेरी कूख से तेरा जन्म हुआ है। तेरे लिए मैंने अनगिनते कष्ट सहन किये हैं। फिर भी तू मेरी बात नहीं सुनता। आज मुझसे बोलना भी नहीं चाहता !' मगर भद्रा ने ऐसा नहीं कहा। वह गंभीर है। उसका आशय महान् है। अपने किये का उपकार जतलाना

अपनी क्षुद्रता प्रकट करना ही है। महान् आशय वाले कभी ऐसा नहीं करते। वे समझते हैं—मैंने जो किया है, अपना कर्त्तव्य समझ कर किया है। इसमें किसी पर ऐहसान क्या! और फिर अपने किये उपकारों का अपने ही मुख से बखान करना उनका मूल्य घटा लेना है।

यह सोचकर भद्रा अपनी बहुओं की ओर से वकालत कर रही है। वह कहती है—'बेटा! इनके सामने देख। यह तेरी प्रसन्नता की भिखारिनें हैं। इन्हें अप्रसन्न मत कर। दिल खोल कर बात कह। इनके किसी व्यवहार से अगर तेरे दिल को चोट पहुँची हो तो उसे संभाल कर दिल में छिपा रखने से कोई लाभ नहीं होगा। मैं नहीं कहती कि ये निर्दोष हैं, मगर जो दोष हो उसे उन्हें बता दे। इसी में सब का कल्याण है।'

भद्रा कैसी आदर्श माता है! आज भद्रा सरीखी माता होती तो लोग देवी मानकर उसकी पूजा करते! शालिभद्र पर पिता की अपेक्षा भी माता का अधिक उपकार है। माता ने ही पुत्र के बिना अपना स्त्रीजन्म निष्फल समझा था और उसी की आशा पूर्ण करने के लिए गोभद्र सेठ के हृदय में तड़फ पैदा हुई थी। उसके बाद भी माता ने उस पर बड़े-बड़े उपकार किये हैं। आज उनका स्मरण करके वह गर्व कर सकती है। शालिभद्र के आगे उनका बखान कर सकती है। वह कह सकती है कि तुम बड़े-बड़े मौज करते हो, फिर

भी रूठने की हिमाक़त किये बिना नहीं रह सकते ? मगर नहीं, भद्रा ने ऐसा नहीं कहा। उसने सिर्फ यही कहा है कि इन बेचारी बहुओं को क्यों दुःखी कर रहा है !

मातृप्रेम के समान संसार में कोई प्रेम नहीं। मातृप्रेम इस संसार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है। इसी कारण शास्त्रों में माता को देव-गुरु के समान बतलाया है। फिर भी भद्रा अपना उपकार न जताकर यही कह रही है—'तुझे बड़े-बड़े सद्गृहस्थों ने अपनी-अपनी बेटियाँ दी हैं। उन्होंने अपनी बेटियाँ मुझे सौंपी हैं। उन्हें उदास न रहने देना तेरा और मेरा कर्त्तव्य है। आज यह सब उदास हैं। मैं कहती हूँ—तू मेरा पक्ष चाहे न ले, पर इन्हें उदास मत कर। यह सब छाया की भाँति तेरे साथ रहने वाली है। फिर इन पर कोप क्यों ? उठकर इन्हें संतोष दे। कदाचित् इनसे कोई अपराध हुआ हो तो भी तू अपने धर्म का स्मरण कर। तेरा धर्म यह है कि कभी इनकी त्रुटि प्रत्यक्ष देखी हो तो उस देखी को भी अनदेखी कर जा। नारीजाति को मत सता। यह बड़े घरों की लड़कियाँ अपने साथ लाखों का धन लाई और तेरी दासी बनी हुई हैं। इनपर इस प्रकार कोप करना उचित नहीं है।'

भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहाँ पत्नी, पति की दासी बनी रहती थी, किन्तु पति स्वयं स्वामी होता हुआ भी अपनी स्त्री को स्वामिनी मानता था। और देशों में यह बात नहीं देखी

जाती। यूरोप में स्त्रियाँ, पुरुषों की हर बात में बराबरी करना चाहती हैं, अपने अधिकारों के लिए लड़ाई करती हैं, मगर भारत की प्राचीन संस्कृति के अनुसार पति और पत्नी मिल-कर दम्पती हैं। दोनों में एकरूपता है! वहाँ अधिकारों को लेने की समस्या ही खड़ी नहीं होती वरन् समर्पण की भावना ही प्रधान है। यही कारण है कि प्राचीनकाल का भारतीय दाम्पत्य जीवन अतिशय मधुर होता था। मगर धीरे-धीरे दाम्पत्य जीवन का यह आदर्श नीचे गिरता गया और आज हालत यहाँ तक आ पहुँची है कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपना गुलाम समझ लिया है। अपने आधे अङ्ग को गुलाम बनाने का नतीजा पुरुषों को भी भोगना पड़ा। उन्हें स्वयं विदेशियों की गुलामी स्वीकार करनी पड़ी।

आज लोग स्त्री को गहने और कपड़े देकर ही अपने कर्त्तव्य की इति समझ लेते हैं और मानते हैं कि इससे अधिक और कुछ देने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन धर्मशास्त्र का कथन है कि स्त्री अर्धांगिनी है। धर्मपत्नी है। अगर स्त्री को धर्म न सिखाया और समय पर उसकी रक्षा न की तो समझना चाहिए कि अभी धर्म का स्वरूप ही नहीं समझा।

भद्रा, शालिभद्र से कहती है— स्त्री को इस प्रकार दुखी करना पुरुषों का धर्म नहीं है। भद्रा का यह कथन सिर्फ शालिभद्र के लिए नहीं है—सभी पुरुषों के लिए है। आप कभी अपनी पत्नी को सताते तो नहीं है? बहुत-से पुरुष

जाती। यूरोप में स्त्रियाँ, पुरुषों की हर बात में बराबरी करोहन
चाहती हैं, अपने अधिकारों के लिए लड़ाई करती हैं. मरहा
भारत की प्राचीन संस्कृति के अनुसार पति और पत्नी
कर दम्पती हैं। दोनों मे एकरूपता है! वहाँ अधिकलेश हो?
लेने की समस्या ही खड़ी नहीं होती वरन् समर्पण की
ही प्रधान है। यही कारण है कि प्राचीनकाल का ो ही बात
दाम्पत्य जीवन अतिशय मधुर होता था। मगर अनुकरणीय
दाम्पत्य जीवन का यह आदर्श नीचे गिरता गया। बेटी से भी
हालत यहाँ तक आ पहुची है कि पुरुषों ने स्त्रि
गुलाम समझ लिया है। अपने आधे अङ्ग कोह चाहता है कि
नतीजा पुरुषों को भी भोगना पड़ा। उन्हें ती हैं कि वह अपनी
गुलामी स्वीकार करनी पड़ी। _। भद्रा कहती है—तू

आज लोग स्त्री को गहने औ भद्र सोचता है—मैं इन्हें
की इति समझ लेते हैं और त्तीरनों स्त्रियाँ सुकुमारी है, सुबुद्धि
कुछ देने की आवश्यक कारिणी हैं, मेरे पसीने के बदले अपना
है कि स्त्री अ तयार हैं, माता-पिता को छोड़कर मेरे आश्रय
न सिखाय। फिर मैं इन्हें दुखी क्यों रखता हूँ? जब ये निर-
चाहिए है तो मैं इन्हें दासी बनाकर क्यों रक्खूँ? इन्हे दासी
ा रखने का मुझे क्या अधिकार है? मैं मर जाऊं तो ये विधवा
हो जाएँगी और रूठ जाऊँ तो तड़फड़ाएँगी। लेकिन विधवा
बनाने या तड़फाने का मुझे क्या अधिकार है? इनका अप-
राध ही क्या है! क्या मैं इन्हें विधवा बनाने के लिए नाथ

बना हूँ ? पति, पत रखने वाला है या पत गँवाने वाला ? मैं अगर नाथ हूँ तो इन्हें अखण्ड और अक्षय सौभाग्य प्रदान करना मेरा कर्त्तव्य है।

मित्रो ! शालिभद्र के इस मूक कथन पर आप विचार करें। आप लोगों को भी क्या यह अधिकार है कि आप स्त्रियों को दासी बनाकर रक्खें ? कदाचित् आपका यह खयाल हो कि हम खाने-पीने और पहिनने-ओढ़ने के साधनों की व्यवस्था करते हैं और हमारी बदौलत ही स्त्री मौज करती है तो क्या शालिभद्र ऐसा ही विचार नहीं कर सकता था ?

शालिभद्र आगे सोचता है—मोह राजा ने इन स्त्रियों को भी गुलाम बना रक्खा है और मुझे भी। मोह न होता तो ये जिस तरह मेरी सेवा करती है वैसे परमात्मा की सेवा क्यों न करतीं ? जैसे मेरी दासी बन रही हैं वैसे परमात्मा की दासी क्यों न बनतीं ? मगर मोह राजा ने परमात्मा से इन्हें मिलने ही नहीं दिया। मैं स्वयं मोह का मारा हूँ, फिर इन्हें किस मुँह से दोष दूँ ? वास्तव में मैं इन्हें दुखी नहीं कर रहा हूँ, मोह ही इन्हें सता रहा है।

आप किसे अच्छा मानते हैं—मोह राजा को या परमात्मा को ?

'परमात्मा को।'

अगर कोई मोह के पंजे से निकलकर ईश्वरभक्त बने तो आप प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न ?

'प्रसन्न !'

लेकिन कदाचित् आपका ही लड़का मोह त्याग कर साधु बनने को तैयार हो जाय तो आप क्या करेंगे ?

'गालियाँ देने लगेंगे !'

तभी तो कहते हैं कि आप लोग मोह में फँसे हुए हैं।

शालिभद्र मन ही मन सोचने लगा—'माता, इन सुशीला स्त्रियों ने मेरा कुछ भी अपराध नहीं किया है और न मैं इन्हें पीड़ा पहुँचाना चाहता हूँ। बात इतनी ही है कि मैं परमात्मा से मिलना चाहता हूँ और ये मोह के पाश में जकड़ी हैं तथा आगे भी जकड़ी रहना चाहती हैं। इसी कारण इन्होंने तुम्हारे सामने मेरी फरियाद की है। लेकिन न तो ये मुझे सुगति में पहुँचा सकती हैं, और न मैं इन्हें पहुँचा सकता हूँ। मोह का संबंध तो यहीं समाप्त हो जायगा. आगे जाने को नहीं है। यह सांसारिक सुख मोह की लीला है और हम सब भ्रम में पड़कर इन्हें सुख समझ लेते हैं।'

शालिभद्र ने आज भोगों की असलियत समझ ली है। वह जान गया है कि भोग तो मोह के हैं. मेरे नहीं। मैं बीच में पड़कर वृथा ही इनमें सुख मानता हूँ। भर्तृहरि कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता. ।

अर्थात्—भोगों को हमने नहीं भोगा वरन् भोगों ने ही हमें भोग लिया है।

शालिभद्र कहता है—मोह हमें भोग रहा है। उसने

इन्हें मेरा और मुझे इनका दास बना रक्खा है।

जो रक्षा करता है वही पति कहलाता है। आपकी स्त्री का सिर दुखने लगे तो क्या आपमें दर्द दूर कर देने की शक्ति है? अगर नहीं तो फिर आप पति कैसे?

शालिभद्र मन ही मन कहता है—माताजी! यह सब मोह का चमत्कार है। अज्ञान के वश होकर जीव मोह का पोषण करता है और फिर भी आनन्द मानता है। मगर यह संसार बढ़ाने का ही मार्ग है। माता! यद्यपि तू मेरा हित चाहती है लेकिन तुझे मेरे अतःकरण की बात मालूम नहीं है। तू नहीं जानती कि मैं क्या करना चाहता हूँ! मै इन स्त्रियों को रुला नहीं रहा हूँ, इनका असली स्वरूप इन्हे समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मै इन्हें अपनी ओर से स्वाधीनता दे रहा हूँ और कहता हूँ—गुलाम मत बनी रहो। परमात्मा के चरणों का आश्रय लो। वही आश्रय सच्चा आश्रय है। इनका और मेरा आत्मा समान है। फिर इन्हें गुलाम रहने की क्या आवश्यकता है?

अब शालिभद्र ने अपना ध्यान भंग किया। भद्रा फिर पूछने लगी—तूने यह क्या कर रक्खा है?

शालिभद्र—कुछ नहीं, आनन्द था।

भद्रा—लेकिन यह आनन्द तो अच्छा नहीं लगता।

शालिभद्र—क्यों?

भद्रा—इसलिए कि यह नया खेल है।

शालिभद्र—असली खेल यही है माँ, और सब तो इन्द्र-जाल है ।

भद्रा—सो कैसे ?

शालिभद्र—श्रेणिक के आने पर आपने कहा था—उठो, नाथ आया है ! वह चाहेगा तो तुम्हें तुच्छ बना देगा । माता, क्या तुम यह चाहती हो कि तुम्हारा बेटा ऐसा हो कि एक राजा भी उसे तुच्छ बना सके ! इसके अतिरिक्त मैं इन स्त्रियों को अपनी दासी कैसे बनाये रख सकता हूँ ? जो दूसरों को तुच्छ बनाएगा वह स्वयं तुच्छ है । मैं तुच्छ नहीं बनना चाहता ।

माता, मैं तो स्वयं अनाथ हूँ । मैंने मध्यलोक में रहकर देवलोक के भोग भोगे हैं । इससे मुझमें अनाथता आ गई है । जब मैं स्वयं अनाथ हूँ तो दूसरों का नाथ कैसे हो सकता हूँ ? मैं अपनी अनाथ अवस्था को त्यागना चाहता हूँ । इसी कारण तुम और तुम्हारी बहुएँ घबरा रही हैं । यह सब मोह का ही प्रताप है । क्या श्रेणिक के आने पर तुम्हीं ने नहीं कहा था कि चलो, नाथ आया है ! ऐसी अवस्था में मुझे अपना अनाथपन दूर करना होगा और वह तभी दूर होगा जब मैं स्वयं किसी का नाथ होने का दावा नहीं करूँगा ।

जननी, जब मनुष्य पर के पाश में बद्ध होता है तभी उसमें अनाथता आती है । और अनाथता दूर करने के लिए पर—पदार्थों के संयोग का त्याग करना आवश्यक है । मैंने ऐसा ही करने का निश्चय कर लिया है ।

———

२१

प्रभु का पदार्पण ।

——:::()::.——

शालिभद्र भद्रा से यह बातें कह ही रहा था कि इसी समय वहाँ वनपाल आ पहुँचा ।

प्रश्न हो सकता है—आज वनपाल क्यों आया ? अगर वह पहले कभी नहीं आया था तो आज ही उसके आने का क्या कारण है ?

जो लोग कथा के अलंकार को नहीं जानते, वे कथा का मर्म भी नही समझ सकते। लोग समझते हैं कि शालिभद्र भोग में ही डूबा रहता था। उसे दीन-दुनिया का कुछ पता ही नहीं था। मगर ऐसा होता तो आज वनपाल बधाई लेकर क्यों आता ? वास्तव में यह खयाल गलत है कि शालिभद्र भोग के सिवाय और कुछ समझता ही नहीं था। वह सब कुछ समझता था। धर्म की सब बातों से भी वह परिचित था। उसे यह भी मालूम था कि नगर में कौन बड़ा है और कौन छोटा है ।

आप कह सकते हैं—अगर शालिभद्र इतना जानकार था तो उसने श्रेणिक राजा को, जो प्रसिद्ध सम्राट् था और राजगृह ही जिसकी राजधानी थी, क्यों नहीं जाना ? इसका उत्तर यह है कि वह राजा श्रेणिक को भी जानता अवश्य था, मगर देवलोक के भोगोपभोग भोगने के कारण उसकी यह धारणा हो गई थी कि वह सर्वथा स्वाधीन है। उसे राजा से कोई वास्ता नहीं है। भद्रा ने जिस प्रकार से श्रेणिक का परिचय दिया उससे शालिभद्र की धारणा को अचानक ही चोट पहुँची। उसे यकायक अपनी अनाथता का बोध हुआ और बात उसके दिल में खटक गई। उसने सोचा—मध्यलोक की वस्तुएँ छोड़कर दिव्य लोक की वस्तुएँ भोगने पर भी अगर मै अनाथ ही बना रहा तो फिर भोग मात्र का त्याग करना ही योग्य है। जब मै भोग मात्र का त्याग कर दूँगा तो अनाथता के लिए कोई अवकाश ही न रह जाएगा। यह विचार उसके हृदय में उत्पन्न हुआ और तत्काल ही संकल्प के रूप में पलट गया।

वनपाल ने शालिभद्र से निवेदन किया—आप जिन नाथ के दर्शन करना चाहते हैं, वही महाप्रभु महावीर भगवान् आज उद्यान में पधारे है।

वनपाल की बात सुनते ही शालिभद्र अतिशय प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—'आज मेरा मन चाहा पांसा गिरा ! आज मेरे यहाँ अमृत की वर्षा हो गई !' शालिभद्र ने वनपाल की प्रशंसा

करते हुए कहा—'आज तू ने बहुत सुन्दर बधाई दी है। इस बधाई का बदला किसी भी वस्तु को देकर नहीं चुकाया जा सकता। परन्तु तुम संसारी हो और अभी मै भी संसारी हूँ। अतएव सिर्फ बातों में ही रख देना योग्य नहीं है।' इतना कहकर शालिभद्र ने अपने शरीर के समस्त आभूषण उतार कर उसे पारितोषिक में दे दिये।

वनपाल खुशी-खुशी लौटा। उसके चले जाने के बाद शालिभद्र ने अपनी माता से कहा— माताजी, आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकीं कि मै अनाथ कैसे बना ? मगर इसका सही उत्तर देने वाले का सौभाग्य से आगमन हुआ है। उनकी सेवा में मै भी चलता हूँ, तुम भी चलो और इन बत्तीसों को भी लेती चलो। उन्हीं से अपने प्रश्न का समाधान होगा और तब अनाथता मिटाने का उपाय भी विदित हो जायगा।

भद्रा गंभीर विचार में डूब गई। उसने समझ लिया कि पुत्र अब माया के जाल में फँसा नहीं रहेगा। अब पंछी उड़ना चाहता है। शालिभद्र सिंह है। यह अब तक अपने स्वरूप को भूल कर गाडरों में रहा आया है। अब इसे अपने असली स्वरूप का भान हो गया है। अब यह गाडरों में नही रहेगा। इसके पिता ने भी सिंहवृत्ति धारण की थी तो यह कैसे रुक सकता है ? इसे एक उदाहरण से समझो—

एक सिंह के बच्चे की मां मर गई। बच्चा बहुत छोटा था।

उस बच्चे को एक गडरिया उठा लाया। अपनी भेड़ों के साथ वह बच्चे का पालन करने लगा। सिंह का वह बच्चा भेड़ों का ही दूध पीता, भेड़ों में ही रहता और भेड़ों की ही तरह सिर नीचा करके चलता था। वह अपने को भेड़ ही समझता था और भेड़ों-को ही अपना परिवार मानता था।

एक बार की बात है। भेड़ें जंगल में चरने गईं। वहाँ अचानक सिंह की घोर गर्जना सुनाई दी। सिंह-गर्जना सुनते ही भेड़ों ने भागना आरंभ किया। उन्हीं के साथ वह शेर-बच्चा भी भागा। परन्तु उसने हिम्मत करके सिंह की ओर देख लिया और फिर भागकर भेड़ों के झुंड में मिल गया।

एक दिन भेड़ों के साथ वह पानी पीने गया। उसने स्वच्छ पानी में देखा तो उसे अपनी शकल दूसरी और भेड़ों की शकल दूसरी दिखाई दी। उसने सोचा—मेरी सूरत तो उस दिन के सिंह सरीखी है! मगर सिंह की पूँछ तो उसके सिर तक आ जाती थी। देखूँ, मेरी पूँछ आती है या नहीं? उसने देखा तो पूँछ सिर पर आ गई। पंजा भी सिंह के समान उठ गया। इसके बाद वह सोचने लगा—सिंह के गरजने से उस दिन भेड़ें भाग खड़ी हुई थीं। देखना चाहिए, मेरे गरजने से भी भागती हैं या नहीं? यह सोचकर शेर के बच्चे ने जो गर्जना की तो भेड़ें पानी पीना छोड़कर प्राण ले कर भागीं। वह समझ गया, मैं भेड़ नहीं सिंह हूँ।

भद्रा कहती है-शालिभद्र की स्थिति भी यही है। अब तक

अपने स्वरूप को भूल कर यह हमारे साथ रहा। अब उसने अपना स्वरूप समझ लिया है, इसलिए मुनि-सिंह के साथ ही रहेगा। अब यह हमारे साथ रहने का नहीं।

भद्रा ने प्रकट में कहा—' अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो चलो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी होने में विघ्न नहीं डालना चाहती।

शालिभद्र माता की स्वीकृति पाकर प्रसन्न हुआ। उसे संदेह था कि माता मुझे भगवान् के समीप जाने की आज्ञा देंगी या नहीं? मगर सस्ती स्वीकृति पाकर उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। शालिभद्र सोचने लगा—मैंने अपनी अनाथता को नष्ट करने का विचार तो पक्का कर लिया था, परन्तु उसके नाश का मार्ग निश्चित नहीं किया था। अब भगवान् के आगमन से यह समस्या सहज ही सुलझ जाएगी। भगवान् का इस समय आना ऐसा ही है जैसे बिल्ली के भाग्य से छींका टूटना।

शालिभद्र बड़ी सज-धज के साथ प्रभु के दर्शन करने के लिए रवाना हुआ। माता और पत्नियाँ साथ ही थीं। नगर में सर्वत्र खबर फैल गई कि जिस शालिभद्र को देखने के लिए राजा श्रेणिक स्वयं उसके घर गये थे, फिर भी जो अपना घर छोड़कर उनके सामने नहीं गया था, वही शालिभद्र भगवान् के समीप जा रहा है।

प्रश्न हो सकता है—भगवान् महावीर में ऐसा कौन—

सा आकर्षण था कि शालिभद्र उनकी ओर अनायास ही खिंचकर चला गया? जो पुरुष महान् मगधसम्राट् श्रेणिक के राजमहल तक नहीं जाना चाहता था और जिसने अपने घर पर भी उनसे मिलने में अपने गौरव की क्षति समझी, वह किस चुम्बकीय शक्ति से आकर्षित होकर चला जा रहा है? भगवान् के पास न भेंट देने को फूटी कौड़ी है, न राज-मुकुट है और न दर्शनीय वेशभूषा है। मुँडा हुआ सिर है, मलीन शरीर है और वह भी तपस्या से सूखा है। उनमें दर्शनीयता क्या है? इधर शालिभद्र स्वर्गीय सम्पत्ति का स्वामी है। असाधारण सौन्दर्य से सम्पन्न हैं। फिर भी वह भगवान् की शरण में जा रहा है!

लोग समझते हैं कि हम अपने से अधिक ठाटवाट वाले के पास जाएँगे तो लाभ होगा। आज के राजा लोग भी यही विचार करते है कि जिस साधु के पास हाथी-घोड़े चामर-छत्र आदि ठाट हो उसी के पास जाना अच्छा है। अनगार और भिक्षु के पास धरा ही क्या है? मगर ऐसा सोचने वाले भ्रम में हैं। न ऐसे भक्त भक्ति का मर्म समझते हैं और न ऐसे साधु साधुता के रहस्य को ही समझ पाये हैं।

शालिभद्र भलीभाँति समझता था कि जिसने जगत् के समस्त पदार्थों की मोह-ममता तज दी है और जो निस्पृह जीवन व्यतीत करता है, वही मेरा नाथ हो सकता है, बल्कि उसी की उपासना करके मैं नाथ बन सकता हूँ।

शालिभद्र उसी गुणशील उद्यान में पहुँचा, जहाँ भगवान् विराजमान थे। दूर से ही भगवान् को देखकर उसने पाँच अभिगमन किये। अभिगमन इस प्रकार हैं:—

*(१) सच्चित्ताइं दव्वाइं विउस्सरणियाए

(२) अचित्ताइं दव्वाइं अविउस्सरणियाए

(३) एगसाडी—उत्तरासंगं

(४) चक्खुफासे अंजलिपग्गहणं

(५) मणसा एगत्तीकरणं

एकपन्ने वस्त्र का उत्तरासंग करने का पहला कारण यह है कि ऐसा वस्त्र मांगलिक समझा जाता है। दूसरे, वस्त्र बुनने की कला तो प्राचीन है किन्तु वस्त्र सीने की कला प्राचीन नहीं है। प्राचीन काल के लोग सिला वस्त्र नहीं पहनते थे। वे बिना सिला एक वस्त्र पहन लेते थे और एक ओढ़ लेते थे। यही प्राचीन काल की परिपाटी थी। इसी परिपाटी के अनुसार एकपन्ने वस्त्र का उत्तरासंग बतलाया गया है।

शालिभद्र पाँचों अभिगमन करके विनीतभाव से भगवान् के निकट आकर बैठा। भगवान् ने धर्मदेशना देना आरंभ किया। धर्मदेशना में उन्होंने इसी प्रकार जागृति उत्पन्न

---

* आशय यह हैं:—

(१) सचित्त द्रव्यों को त्याग देना। (२) अचित्त द्रव्यों को नहीं छोड़ना। (३) एक पन्ने वस्त्र का उत्तरासंग करना। (४) दृष्टिगोचर होते ही हाथ जोड़ लेना। (५) मन को एकाग्र कर लेना।

करने वाले शब्द कहे होंगेः—

> थांने आई है अनादी नींद जरा टुक जोवो तो सही,
> जरा टुक जोवो तो सही चेतनजी जीवो तो सही।
> थांने सुमति कहै कर जोड़ सन्मुख होवो तो सही।

जरा आगे-पीछे का भी विचार करो। वर्त्तमान में ही मत भूले रहो। जब आत्मा अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा तो कहीं से अवश्य आया है और कहीं अवश्य जाएगा। इसलिए आत्मा की ओर देखो। सोचो-कहाँ से आये हो और कहाँ जाना है? यह मनुष्य-शरीर दीपक है और इसमें आयु रूपी तेल भरा है। इन्द्रियाँ इसकी बत्ती हैं। मगर ज्ञान रूपी अग्नि के संयोग के बिना दीपक के विद्यमान रहते हुए भी अंधकार नहीं मिटता। इसलिए ज्ञान प्राप्त कर लो तो भीतर बाहर का अंधकार दूर हो जायगा। किन्तु विलम्ब मत करो। तेलपात्र फूट जाने पर अथवा तेल या बत्ती के हट जाने पर ज्ञान-अग्नि का संयोग कैसे करोगे? जब तक मनुष्यशरीर रूपी दीपक, आयु रूपी तेल और इन्द्रिय रूप बत्ती है, तभी तक ज्ञान-अग्नि का मिलाप हो सकता है। इसलिए इस अवसर को हाथ से मत गँवाओ। कार्य उपयोगी और महत्वपूर्ण है। समय थोड़ा है। बीच में विघ्न हैं। जो क्षण मिला है, उसे अगले क्षण पर मत छोड़ो। 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।' आगे का भरोसा मत कर। अगर पश्चात्ताप से बचना है तो, हे भद्र जीव! अपने कल्याण के मार्ग को पह-

चान ले और उस पर चल दे। इसी में तेरा हित है। इसी में तेरा कल्याण है।

अरे प्राणी! सोता मत रह। जाग। उठ। भाग। भागने के समय पड़ा क्यों है? तीन भयानक लुटेरे तेरे पीछे पड़े हैं। जन्म, जरा और मरण तुझे अपना शिकार बनाना चाहते हैं। और तू अचेत पड़ा है! प्राणों के रहने पर ही चेष्टा की जा सकती है। जिस गाँव को जाना है, उसकी ओर जल्दी प्रस्थान कर दे। सामने श्मशान है। वहाँ भस्म होना है और यहाँ शृंगार सज रहा है! जो शरीर भस्म बनने वाला है उसे सजा रहा है और जो साथ जाने वाला है उसकी ओर ध्यान ही नहीं है।

गाफिल! किसके भरोसे बैठा है? कौन तेरी रक्षा करेगा? फौज? फौज रक्षा करने में समर्थ होती तो चक्रवर्त्ती क्यों उसे त्यागते? परिवार तेरी रक्षा करेगा? ऐसा होता तो कोई मरता ही क्यों? सभी के परिवार वाले मरने वाले को बचा न लेते? किला भी रक्षा नहीं कर सकता। सुन—

कोटि कोटि कर कोट ओट में उनकी तू छिप जाना,
पद-पद पर प्रहरी नियुक्त करके पहरा बिठलाना।
रक्षण हेतु सदा हो सेना सजी हुई चतुरंगी,
काल बली ले जायगा देखेंगे साथी संगी।

X X X

अक्षय धनपरिपूर्ण खजाने शरण जीव को होते,
तो अनादि के धनी सभी इस भूतल पर ही होते।

पर न कारगर धन होता है बन्धु ! मृत्यु की बेला,
राजपाट सब छोड़ चला जाता है जीव अकेला।

X X X

अम्बर में पाताल लोक में या समुद्र गहरे में,
इन्द्रभवन में शैलगुफा में सेना के पहरे में।
वज्रविनिर्मित गढ़ में या अन्यत्र कहीं छिप जाना,
पर भाई ! यम के फंदे में अन्त पड़ेगा आना।

X X X

देखो देखो खोजो अपनी दृष्टि जरा फैलाओ,
कण-कण अणु-अणु देख तर्क के तीखे तीर चलाओ।
ऊपर-नीचे दक्षिण उत्तर पश्चिम पूर्व निहारो,
यदि रक्षक हो कहीं शरण तो उसकी, मृत्यु निवारो।

तात्पर्य यह है कि संसार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो मनुष्य को मृत्यु का ग्रास होने से बचा सके। काल इतना बलवान् है कि लाख प्रबंध करने पर भी आ ही धमकता है। इसलिए निर्भय और अमर बनने का वास्तविक उपाय करो। ऐसा करो कि तुम्हें काल से न डरना पड़े वरन् काल ही तुम से डरे। अगर तुम चेत जाओगे और ज्ञान प्राप्त कर लोगे तो तुम्हारे अन्तःकरण में यह भावना उत्पन्न होगी।—

मरने से जग डरत है, मो मन परमानन्द।
कब मरिहौं कब भैंटिहौं, पूरन परमानन्द॥

हे भद्र पुरुष! काल के आने पर संसार का धन, जन

आदि कोई नहीं बचा सकता।

केवल ज्ञान ही अमरता प्रदान करता है। अतएव ज्ञान प्राप्त कर। ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर सन्मार्ग पर चलने की अभिरुचि उत्पन्न होगी और तब तू ऐसे स्थान पर पहुँच जायगा, जहाँ काल का वश नहीं चलता। इस प्रकार सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्आचरण ही तेरी रक्षा कर सकते हैं।

भगवान् की देशना सुनकर शालिभद्र को अतिशय संतोष हुआ। उसने कहा—'भंते ! अनुग्रह करके ऐसा मार्ग बतलाइए कि मेरे सिर पर कोई नाथ न रहे।'

भगवान् ने कहा—जब तक तुम संसार की किसी भी वस्तु के नाथ बने रहोगे तब तक तुम्हारे सिर पर भी नाथ रहेगा ही। अगर तुम्हारी इच्छा है कि कोई तुम्हारा नाथ न रहे तो तुम किसी के नाथ मत रहो। अर्थात् जगत की वस्तुओं से अपना स्वामित्व हटालो, ममत्व त्याग दो, यह समझ लो कि न तुम किसी के हो, न कोई तुम्हारा है। सब प्रकार के संयोग से मुक्त हो जाओ। यही स्वाधीन बनने का मार्ग है।

शालिभद्र—अर्थात् मुनि बने बिना यह संभव नहीं कि सिर पर नाथ न हो ?

भगवान्—हाँ, भद्र ! सत्य यही है।

२२
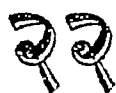
दीक्षा ।

——::::():::: ——

'मेरे भाई शालिभद्र को संसार से वैराग्य हो गया है और वह मेरी बत्तीसों भौजाइयों में से नित्य प्रति एक-एक को समझा कर त्यागता जा रहा है' यह समाचार शालिभद्र की बहिन सुभद्रा ने भी सुना। सुभद्रा को इससे बहुत दुःख हुआ। मेरे जिस भाई ने जीवन भर आनन्द ही आनन्द भोगा है, जो बहुत कोमल शरीर वाला है और जिसे यह भी मालूम नहीं है कि दुःख कैसा होता है, वह संयम में होने वाले कष्ट किस तरह सहेगा ? भिक्षा किस तरह करेगा ? आदि विचारों ने सुभद्रा के हृदय में उथल-पुथल मचा दी। इतने में ही उसका पति स्नान करने के लिए आया। अपने पति धन्ना को सुभद्रा अपने हाथ से ही स्नान कराया करती थी। धन्ना को स्नान करने के लिए आया देखकर सुभद्रा क्षण-भर के लिए अपने हृदय का दुःख दबाकर धन्ना को स्नान कराने गई।

सुभद्रा, धन्ना को स्नान कराने लगी, परन्तु उसके हृदय

में बन्धु-वियोग का दुःख उथल-पुथल मचा रहा था। सहसा उसे विचार आया कि मेरा भाई जब संयम ले ले लेगा तब मेरी भौजाइयों को कैसा भयङ्कर दुःख होगा! मेरी भौजाइयों को कभी एक दिन के लिए भी पति-वियोग का दुःख नहीं सहना पड़ा है। वे मेरे भाई के आसपास उसी तरह बनी रही हैं, जिस तरह जीभ के आसपास दाँत बने रहते हैं। ऐसी दशा में सहसा उन पर पति-वियोग का जो दुःख आ पड़ेगा उसे सहकर वे किस तरह जीवित रहेंगी! जिस तरह मुझे मेरे पति प्रिय हैं, उसी तरह उन्हें भी मेरा भाई प्रिय है।

इस प्रकार विचारती हुई सुभद्रा के हृदय का धैर्य छूट गया। दुःख के कारण उसकी आँखों से गरम-गरम आँसू निकल पड़े। उस समय सुभद्रा, धन्ना का शरीर मलती हुई शीतल जल से स्नान करा रही थी, इसलिए उसकी आँखों से निकले हुए गरम आँसू धन्ना के शरीर पर पड़े। अपने शरीर पर गरम-गरम बूँद गिरा जानकर, धन्ना चौंक उठा। ये गरम बूँद कहाँ से गिरे, यह जानने के लिए इधर-उधर देखते हुए धन्ना ने सुभद्रा के मुँह की ओर देखा, तो उसे सुभद्रा की आँखों से आंसू गिरते दीख पड़े। अपनी प्रिय पतिव्रता पत्नी की आँखों से आंसू गिरते देखकर धन्ना को आश्चर्य हुआ। वह निश्चय न कर सका कि आज सुभद्रा की आँखों से आंसू क्यों गिर रहे हैं!

धन्ना ने सुभद्रा से कहा—प्यारी सुभद्रा, आज तुम्हें ऐसा

क्या दुःख है कि आंसू बहा रही हो ? मैंने दुःख के समय भी तुम्हारी आँखों से आंसू नहीं देखे, फिर आज तुम्हारी आँखों में आंसू क्यों ? आज तुम्हें ऐसा क्या दुःख है ? जहाँ तक मैं समझता हूँ, तुम सब तरह से सुखी हो। तुम पितृगृह की ओर से भी सुखी हो, और मेरी ओर से भी। तुम धनिक-शिरोमणि शालिभद्र की अकेली तथा लाड़ली बहन हो और मेरी पत्नी हो। यद्यपि तुम्हारी सात सौतें हैं, परन्तु उन्होंने तुम्हें अपनी स्वामिनी मान रखा है, तथा वे स्वेच्छापूर्वक तुम्हारी दासियाँ बनी हुई हैं। फिर समझ में नहीं आता कि तुम्हें किस दुःख ने आ घेरा है, जिससे तुम आंसू बहा रही हो ! यदि अनुचित न तो तुम अपना दुःख मुझे भी सुनाओ।

धन्ना का कथन सुनकर सुभद्रा का हृदय दुःख से और भी उमड़ पड़ा। अपने दुःख का आवेग रोककर उसने करुण स्वर में कहा—नाथ, मेरा भाई शालिभद्र संसार से विरक्त हो रहा है। वह संयम लेने की तैयारी कर रहा है। वह मेरी एक एक भौजाई को एक दिन में समझाता और त्यागता जा रहा है। जब वह मेरी बत्तीसों भौजाइयों को समझा चुकेगा तब घर त्यागकर संयम ले लेगा। मेरा एकमात्र भाई-जिसने कभी कष्ट का नाम भी नहीं सुना है—संयम लेगा और पितृगृह की ओर से मैं भी सुखरहित हो जाऊँगी। इसी दुःख के कारण मेरी आंखों से आंसू निकल पड़े हैं।

सुभद्रा का कथन समाप्त होने पर धन्ना हँस पड़ा। उसने

सुभद्रा के कथन का उपहास करते हुए कहा—तुम्हारा भाई शालिभद्र वीर नहीं, कायर है। यदि वह कायर न होता तो अपनी एक-एक पत्नी को समझाने में एक-एक दिन क्यों लगाता? संसार में वैराग्य होने के पश्चात् स्त्रियों को समझाने के बहाने बत्तीस दिन रुकने की क्या आवश्यकता थी! क्या बत्तीसों पत्नियों को एक ही दिन में और कुछ ही समय में नहीं समझाया जा सकता? वैराग्य होते ही जो संसार-व्यवहारों से अलग नहीं हो गया वह वीर नहीं कायर है।

सुभद्रा को यह आशा थी, कि मेरे पति मेरे भाई को किसी प्रकार समझाकर संसार-व्यवहार में रोके रहने और इस प्रकार मुझे दुःखमुक्त करने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन उसको अपने पति की ओर से ऐसी बात सुनने को मिली, जो आशा के विरुद्ध होने में साथ ही भाई का अपमान करने वाली भी थी। सुभद्रा को पति के मुख से यह सुनकर बहुत ही दुःख हुआ, कि तुम्हारा भाई कायर है। यह बात सुभद्रा के हृदय में छिद गई। उसने धन्ना से कहा—नाथ! बत्तीस स्त्रियाँ एवं स्वर्गीय सम्पदा त्यागना क्या कायरता है? आप कहते हैं कि बत्तीस स्त्रियों को समझाने के बहाने बत्तीस दिन रुकने की क्या आवश्यकता है? लेकिन इस समय में ऐसी सम्पदा और बत्तीस स्त्रियाँ त्यागकर संयम लेने की तैयारी करने वाला, मेरे भाई के सिवा दूसरा कौन है! इस तरह की भोग-सामग्री वर्त्तमान में किसने त्यागी है! ऐसा त्याग सरल नहीं

है। अपन तो सांसारिक भोगों में ही पड़े रहें और जो त्यागता है उसे कायर कहकर उसकी निन्दा करें, यह उचित तो नहीं है। भोगियों को उन लोगों की निन्दा न करनी चाहिए, जो भोगों को त्याग चुके हैं अथवा धीरे-धीरे भी—त्याग रहे हैं।

सुभद्रा के इस कथन से धन्ना सहसा जागृत हो गया। वह सुभद्रा का कथन सुनता जाता था, और अपने हृदय में सोचता जाता था कि वास्तव में सुभद्रा का कथन ठीक है। मैं स्वयं तो विषयभोग में पड़ा रहूँ, और जो एकदम से नहीं परन्तु धीरे-धीरे भी भोगों को त्याग रहा है उसको कायर बताऊँ यह अनुचित ही है। शालिभद्र को कायर बताना तभी ठीक हो सकता है, जब मै एकदम से भोगों को त्याग दूँ, और यदि मै ऐसा न कर सकूँ तो फिर मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि शालिभद्र कायर नहीं किन्तु वीर है तथा मै कायर हूँ। मुझको सुभद्रा के कथन से बुरा नहीं मानना चाहिए किन्तु सुभद्रा के कथन को सदुपदेश रूप मान संसार-व्यवहार से निकलकर संयम स्वीकार करना चाहिए और सुभद्रा को यह बता देना चाहिए कि वीरता ऐसी होती है।

जिस प्रकार सोता हुआ सिंह बाण लगने से जागृत हो जाता है और आलस्य त्यागकर बाण मारने वाले की चुनौती स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार धन्ना भी सुभद्रा के वचनों से जागृत हो उठा, तथा संयम लेने के लिए तैयार हो गया। उसने सोचा कि मेरी प्रधान पत्नी ने मुझे अप्रत्यक्ष रूप से

संयम लेने की स्वीकृति दे दी है, इसलिए अब मुझे और किसी से स्वीकृति लेने की भी आवश्यकता नहीं रही है। इस प्रकार सोचकर धन्ना अपने शरीर पर से भद्रा का हाथ हटा-कर उठ खड़ा हुआ और बाहर जाने लगा। धन्ना का कथन सुनकर तथा उसे जाता देखकर, सुभद्रा हक्की-बक्की हो गई। वह दौड़कर धन्ना के सामने आ उसके पैरों पर गिर पड़ी, तथा हाथ जोड़कर कहने लगी—नाथ, आप कहाँ जा रहे है? बात ही बात में आप यह क्या करने के लिए तैयार हुए हैं? हो सकता है कि मैंने बन्धु-वियोग के दुःख में कोई अनुचित्त बात कह डाली हो, इसलिए अपने कथन के विषय में मुझे पश्चात्ताप है और मै आपसे बार-बार क्षमा मांगती हूं। आप मेरा अपराध क्षमा करिये। आप पुरुष हैं। आपको स्त्रियों की बात पर ध्यान देना उचित नहीं है। यदि आप भी स्त्रियों का अपराध क्षमा न करेंगे, स्त्रियों के प्रति उदारता न रखेंगे तो फिर पुरुष लोग किसका आदर्श सामने रखकर स्त्रियों का अपराध क्षमा करेंगे? मै भाई के विरक्त होने से पहले ही दुःखी हूँ। मै सोचती थी कि आप मेरे भाई को समझाकर मेरा दुःख मिटावेंगे, लेकिन आप तो मुझे और दुःख में डाल रहे हैं। जब कोई यह सुनेगा कि सुभद्रा की बातों के कारण उसके पति गृह-संसार त्याग कर संयम ले रहे हैं तब वह मुझे भी क्या कहेगा और आपको भी क्या कहेगा! यदि अपराध किया है तो मैंने, मेरी सात बहनों

ने कोई अपराध नहीं किया है। फिर आप उन्हें कैसे त्याग सकते हैं! यदि मैं अपराधिन हूँ तो मुझे त्याग दीजिये। मैं वह सब दण्ड सहने को तैयार हूँ जो आप मुझे देंगे, लेकिन मेरे अपराध के कारण मेरी सात बहनों को दण्ड मत दीजिए मेरे और मेरी सात बहनों के जीवन आप ही हैं। आप के सिवा हमारा कौन है! यदि आप भी हमें तुच्छ अपराध के कारण त्याग जावेंगे, तो फिर हमारे लिए किसका सहारा होगा? इसलिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए और गृह-त्याग का विचार छोड़ दीजिये। यह प्रार्थना करने के साथ ही मैं यह भी निवेदन कर देती हूँ, कि हम सब आपको किसी भी तरह न जाने देंगी। स्त्रियों का बल नम्रता एवं अनुभव—विनय करना है। हम आपको रोकने में अपना यह सारा बल लगा देंगी, लेकिन आपको कदापि न जाने देंगी।

सुभद्रा का कथन सुनकर धन्ना समझ गया, कि सुभद्रा मोह के कारण ही मुझे रोकना चाहती है और साथ ही यह भी सोचती है कि उसकी बातों से रुष्ट होकर मैं संयम ले रहा हूँ। उसने कहा—बहन सुभद्रा, तुम यह क्या कह रही हो! तुमने मुझे अभी अपने वीरतापूर्ण शब्दों द्वारा इस संसार-जाल से निकाला है और अब फिर उसी में फँसाने का प्रयत्न करती हो! तुम्हारे वचनों से ही मेरा आत्मा जागृत हुआ है और मैं संयम लेने को तैयार हुआ हूँ। इसका यह

अर्थ नहीं कि मैं तुम से रूठकर संयम ले रहा हूं। तुमने मेरा उपकार किया है, अपकार नहीं किया है। वास्तव में तुम मेरी गुरु बनी हो। तुमने मेरे आत्मा को घोर दुखमय संसार से निकालकर कल्याण-मार्ग पर आरूढ़ किया है। थोड़ी देर के लिए अपनी स्वार्थ-भावना अलग करके विचार करो, कि मेरा हित संसार त्याग कर संयम लेने मे है, या विषय-भोगों में फँसे रहने में हैं? क्या विषयभोगों मे फँसे रहने पर आत्मा का कल्याण हो सकता है? यदि नही, तो फिर मेरा संयम लेना क्या अनुचित है? आज मैं स्वेच्छा से संयम ले रहा हूँ, परन्तु यदि मेरी मृत्यु हो जावे तो उस दशा में तुम्हें पति-सेवा से वंचित रहना पड़ेगा या नहीं? तब मुझे कल्याण-मार्ग से रोकने का यही अर्थ हुआ कि तुम क्षणिक एवं नाशवान सुख के लिए मेरा अहित करना चाहती हो! सुभद्रा, जरा विचार करो। यदि तुम्हें मुझसे प्रेम है तो उसका बदला मेरे अहित के रूप में न दो। अपने स्वार्थ के लिए मुझे अवनति में न डालो। नीतिकारों ने कहा ही है कि—

> यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
> चंचलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥

अर्थात्—जवानी, जीवन, मन, शरीर की छाया धन और प्रभुता ये छहों चञ्चल हैं यह जानकर धर्म-रत होना चाहिए।

तुम्हारे कथन द्वारा इस बात को जानकर भी क्या मैं

इन्हीं में उलझा रहूँ ? धर्म में रत न होऊँ ? सांसारिक विषय-भोग चाहे जितने भोगो तृप्ति तो होती ही नहीं है और अन्त में छूटते ही हैं। फिर स्वेच्छा से उन्हें त्यागकर संयम द्वारा आत्म-कल्याण क्यों न किया जावे ! यह मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता। न मालूम कितने काल तक दुःख भोगने के पश्चात् यह मनुष्य भव मिला है। क्या इसको विषय-भोग में ही नष्ट कर देना बुद्धिमानी होगी ? क्या फिर ऐसा अवसर मिलेगा कि मैं स्वेच्छापूर्वक विषय-भोग से निवृत्त हो संयम द्वारा आत्मा का कल्याण करूँ ? यदि नहीं, तो फिर मेरा मार्ग क्यों रोक रही हो ? मुझे जाने दो। मैंने तुम्हें अपनी बहन कहा है। इस पवित्र सम्बन्ध को तोड़ कर फिर अपवित्र सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न मत करो। तुम नीतिज्ञों के इस कथन की ओर ध्यान दो—

> यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
> यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
> आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
> प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

अर्थात्—जब तक शरीर रूप गृह बिगड़ा नहीं है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियों की शक्ति मारी नहीं गई है, और आयुष्य नष्ट नहीं हुआ है, तब तक, बुद्धिमान् को आत्मा के कल्याण का पूरा प्रयत्न कर लेना चाहिए। जब ये सब बातें न रहेंगी, तब आत्मकल्याण के लिए प्रयत्न करना वैसा ही